CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र महाविज्ञान

[द्वितीय खण्ड]

(तंत्र साधना की प्रचीन पद्धति)

★

सम्पादक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य
तथा
डॉ० चमनलाल गौतम

★

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३(उ० प्र०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र-महाविज्ञान

[द्वितीय खण्ड]

(शक्ति-तत्व का वैज्ञानिक निरुपण और विधि-विधान)

□

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

★ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ
व १८ पुराणों

तथा

★ डॉ० चमनलाल गौतम

रचयिता : मन्त्र महाविज्ञान, योग महाविज्ञान, ओंकार सिद्धि
गायत्री रहस्य, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, मंत्र-
शक्ति से रोग निवारण-विपत्ति निवारण
कामना सिद्धि आदि।

फोन : २४०८५०
रत्न पुस्तक भण्डार
"ग्रीन हाउस"
२७१, माईतिघर
काठमाडौं, नेपाल

□

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब (वेदनगर), बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ४७४२४२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक :
□ डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली—२४३००३ (उ०प्र०)
फोन : ४७४२४२

●

लेखक :
□ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
डॉ० चमनलाल गौतम

●

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

●

संशोधित संस्करण
सन् १९९७

●

मुद्रक :
□ शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी
नवज्योति प्रेस,
सेठ भीकचन्द मार्ग, मथुरा
फोन : ४०३८९५

●

मूल्य :
पचास रुपये मात्र।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

'तन्त्र विज्ञान' के प्रथन खण्ड में भारतीय तन्त्र-शास्त्र की प्राचीनता और उसकी उपादेयता का परिचय दिया जा चुका है। उसमें बतलाया गया है कि वर्तमान समय में 'तन्त्र' के नाम पर सामान्य जनता में जिस जादू टोना का प्रचार हो रहा हैं वह वास्तविक तन्त्र नहीं है। और न बाजारू पुस्तकों में तन्त्र के नाम पर जिन अतर्गल सिद्धियों, धन वैभव की प्राप्ति, स्त्री-वशीकरण, शत्रुनाश आदि बहकाने वाली क्रियाओं का वर्णन किया गया है, वे ही तन्त्र विद्या के महत्वपूर्ण अंग माने जा सकते है। वस्तुत: तान्त्रिक साधना का उद्देश्य यह हैं कि सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी—सामान्य लोगों में पाई जाने वाली कुछ त्रुटियों के रहते हुए भी—मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर यथाशक्ति चलने की चेष्टा कर सके।

राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि साधनों में आरम्भ में ही यम, नियम, सत्य, अहिंसा, शौच, ब्रह्मचर्य आदि के इतने उच्च नियम बतला दिये गये हैं कि सामाया कोटि का सांसारिक मनुष्य अपने को उनके अयोग्य मान लेता हैं। वह सोचता है कि ये तो साधु महात्माओं के पालन करने योग्य बातें हैं। हमारे जैसे गृहस्थी के जंजाल में फँसे और चारों तरफ के दूषित वातावरण से प्रभावित व्यक्ति इस तरह के संयम नियम और त्याग-तपस्या के विधि-विधानों का कैसे पालन कर सकते हैं? इस प्रकार की परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के हितार्थ कुछ आचार्यों ने तन्त्र-शास्त्र का उद्भव करके ऐसी विधियों और कार्यक्रम की योजना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की कि जिसका साधन वे वर्तमान त्रुटिपूर्ण अवस्था में भी कर सकें और उन्हीं के सहारे उन्नति करके अध्यात्म मार्ग के उच्च स्तरों तक पहुँच जायें ।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार यह जगत त्रिगुणात्मक है। इनमें केवल सतोगुण रूप उच्च आध्यात्मिक प्रवृतियों की ही आशा रखना ठीक नहीं। सतोगुण के साथ सभी में रजोगुण और तमोगुण भी रहता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति वालों में सतोगुण की प्रधानता रहती है और भौतिक प्रवृत्ति वालों में रजोगुण तथा तमोगुण की अधिकता पायी जाती है। हम संसार में से रजोगुण या तमोगुण की प्रधानता वाले व्यक्तियों को पृथक तो कर नहीं सकते, इसलिये जहाँ तक संभव हो, उनके लिए इस प्रकार मार्ग-दर्शन करना चाहिये, जिससे उनके दोष सीमित रूप में ही रहें और क्रमशः उनको कम करते हुए उच्चस्तर की ओर बढ़ते रहें। तन्त्र में जो अनेक स्थानों पर मदिरा, माँस आदि की चर्चा आती है, उसमें यही योजना रखी गई है कि जिनमें उस प्रकार की अवांछनीय प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, वे अपनी भावनाओं में परिवर्तन करके अपने दोषों को कम करते जायें और तंत्र-शास्त्र के निर्देशानुसार अन्य हानि रहित वस्तुओं का व्यवहार करने लगें।

इस दूसरे खण्ड में बतलाया गया है कि अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण मन्त्र-साधना किसी समय भारत ही नहीं, भारत से दूर विदेशों में भी फैल गई थी। तिब्बत, चीन, लंका, वर्मा, कम्बोडिया, मिश्र, यूनान रोम आदि तक में कुछ परिवर्तित रूप में शक्ति (देवी) उपासना का प्रचार हो गया था और उसके साथ तांत्रिक क्रियायें भी की जाती थीं।

शक्ति-साधना केवल कल्पना या अपनी व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर नहीं है, वरन् वैज्ञानिक सिद्धान्तो के अनुसार है। इसका विस्तृत विवेचन भी आगामी पृष्ठों में किया गया है। अभी तक विज्ञान शक्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का प्रयोग स्थूल यन्त्रों द्वारा ही कर रहा है, पर वह दिन दूर नहीं जब मानसिक शक्ति द्वारा भी अनेक प्रत्यक्ष कार्य होते दिखाई पड़ेंगे। कारण यही है कि शक्ति वास्तव में एक सूक्ष्म तत्व है और उसका संचालन तथा प्रयोग जितनी अच्छी तरह सूक्ष्म प्रक्रियाओं से हो सकता है, वैसा स्थूल यन्त्रों से नहीं हो सकता।

अन्तिम भाग में तीनों महाशक्तियों और दशों दुर्गाओं की साधना तथा पूजन-विधि दी गई है। यह वास्तव में बहुत जटिल और रहस्य-पूर्ण है और इस पुस्तक के पाठको को उसकी रूप रेखा की ही जानकारी हो सकेगी। सामान्य पूजा-पाठ और उपासना तो इसके आधार पर भी की जा सकती है, पर यदि किसी विशेष प्रयोजन से कोई तान्त्रिक अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि करता हो, तो उसके लिये उसी कृत्य से सम्बन्धित विशेष ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये और उचित तो यही है कि किसी जानकार गुरु से मार्ग-दर्शन प्राप्त करके इस मार्ग में पैर रखा जाय। तन्त्र की कोई क्रिया जल्दबाजी अथवा हल्केपन से करने से नहीं होती, वैसा करने से लाभ के स्थान में हानि की संभावना अधिक रहती है। इसलिए तन्त्र साधन मार्ग में धैर्य और सावधानी से ही अग्रसर होना आवश्यक है। यदि साधक का प्रयत्न और भावना सत्य होगी तो महाशक्ति स्वयं उसे उचित मार्ग की ओर अग्रसर करती रहेगी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-सूची

१. भारत में शक्ति- उपासना का इतिहास ९

ऐतिहासिक साक्षी, वैदिककाल, पौराणिककाल, बौद्धकाल, नाथ व सिद्धि सम्प्रदाय पर शक्ति-उपासना का प्रभाव, जैन धर्म पर शक्ति-उपासना का प्रभाव ।

२. विश्व में शक्ति-उपासना का प्रसार २०

बेबीलोनिया-मिश्र-चीन-ग्रीस (यूनान) रोम-नेपाल-अन्य देशों में ।

३. शक्ति-विज्ञान ३१

४. शक्ति और आधुनिक विज्ञान ३७

वैज्ञानिक समर्थन - भौतिक ऊर्जाओं से अभिन्नता - मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ-मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ - गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी मूल ऊर्जा और आद्याशक्ति में अभिन्नता-विज्ञान और साधना में अन्तर ।

५. शक्ति का दार्शनिक रूप ४१

भारतीय दर्शन की आधार शिला-शिव और शक्ति की एकरूपता-अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अभेद-शिव और शक्ति की एकता के सूत्र - शक्ति उपासना का दार्शनिक आधार ।

६. शक्ति का तात्विक विवेचन ५७

शास्त्रों में शक्ति की महिमा-शक्ति के विभिन्न प्रकार-अर्थ-व्याख्या-वैज्ञानिक अर्थ - शक्ति का पर्याय प्रकृति - प्रकृति की सांख्य सम्मत व्याख्या - प्रकृति के विभिन्न रूप - परा प्रकृति - अपरा प्रकृति - परा और अपरा के विभिन्न पर्याय - प्रकृति और माया - शक्ति तत्व ।

७. शक्ति का स्वरूप ७७

८. शक्ति सत्य है ८५

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या का सिद्धान्त-जगत की सत्यता के सिद्धान्त के समर्थक - तन्त्र का अभिमत ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९. शक्ति—उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ९३

इच्छाशक्ति का विकास—भयंकर रूप का अभिप्राय—कुप्रवृत्तियों के त्याग की भावना-उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य-नवनिर्माण की प्रेरणा-परिवर्तन की क्षमता-दिव्यशक्तियों का संगठन—अनासक्त भावना—पारमार्थिक भावना—प्राणीमात्र में प्रेम का प्रसार-प्रेरणाओं का स्रोत—शक्ति उपासना का रहस्य।

१०. नारी रूप में शक्ति उपासना क्यों ? १०७

११. कुमारी पूजन का उद्देश्य १२०

साधार और उद्देश्य—शक्ति रूपिणी-कुमारी-लक्षण—माहात्म्य—कुमारी-पूजन विधि।

१२. विभिन्न शक्तियाँ और उनके वाहन १३७

ब्राह्मी-माहेश्वरी—कौमारी— वैष्णवी—वाराही-नारसिंही-ऐन्द्री।

१३. आचार्य शंकर और शाक्तमत १५३

१४. शक्ति और वेद १५९

१५. शक्ति और उपनिषद् १७०

१६. शक्ति का पुराण १८१

देवी भागवत पुराण-मार्कण्डेय पुराण-अग्निपुराण-कालिका पुराण विष्णु धर्मोत्तर पुराण—ब्रह्मवैवर्त पुराण—कूर्मपुराण शिवपुराण

१७. शक्ति और योगबासिष्ठ १९०

१८. शक्ति और महाभारत १९७

१९. शक्ति और वेदान्त दर्शन १९८

२०. शक्ति और सांख्य दर्शन २०२

२१. शक्ति और आरण्यक २०८

२२. गीता में शक्ति तत्व २०९

शक्ति विकासके दो साधन-यज्ञ और योग-योग-माया प्रकृति-शक्ति।

२३. दुर्गासप्तशती और गीता में अनुकूलता २२६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२४. दुर्गा-उपासना का बौद्धिक अध्ययन २३७

परिभाषा-प्राचीनता—अवतरण का उद्देश्य—विभिन्न नाम—महिमा—स्वरूप—सप्तती—कथा—कथा का आधिभौतिक अर्थ—कथा का आधिदैविक अर्थ—कथा का आध्यात्मिक अर्थ—देवी चरित्र की बौद्धिक व्याख्या—भ्रान्तियों का निराकरण—शक्ति की प्रतिभा-आठ भुजाएँ आठ शक्तियों का प्रतीक—स्वास्थ्य-विद्या—धन—व्यवस्था—संगठन—यश—शौर्य—सत्य अधिकार।

२५. दुर्गा-पूजन विधि २६४

मन्त्र—पद्धति—न्या—बहिर्मातृका न्यास—सृष्टि न्यास—स्थिति-न्यास—संहार न्यास-शक्तिकला न्यास-करन्यास—हृदयादि न्यास-द्वितीय न्यास—तृतीय न्यास—चतुर्थ न्यास—अक्षर न्यास—देवी-कवच—देवी सूक्त।

२६. त्रिशक्ति - रहस्य २९१

स्पष्टीकरण - यौगिक रूप - महासरस्वती - दश श्लोक - महा-सरस्वती-पूजन-विधि - महालक्ष्मी - महालक्ष्मी-पूजन-विधि-षोडशोपचार पूजन . पंच बीजन्यास - करान्यास - लक्ष्मी कवच-महाकाली - काली-पूजन-विधि - ऋष्यादिन्यास - करन्यास - षडंगन्यास - अन्तर्मातृका-न्यास - बहिर्मातृका-न्यास - सृष्टि-मातृकान्यास-स्थितिमातृका-न्यास-संहारमातृ का न्यास-कमलामातृका न्यास - श्रीकण्ठादिमातृका न्यास - वर्ण - न्यास - षोडा - न्यास - तत्वन्यास - बीजन्यास - विद्यान्यास - लघुषोडान्यास - पीठन्यास पूजा तन्त्र - जप, ध्यान, काली कवच।

२७. दस-महाविद्यायें

(१) काली—३७० (२) तारा—३७८ (३) षोडशी—२०५ (४) भुवनेश्वरी-४२५ (५) छिन्नमस्ता-४४२ (६) भैरवी-४५३ (७) धूमावती—४५६ (८) बगला मुखी-४५८ (९) मातंगी-४६३ (१०) कमला—४७०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तंत्र महाविज्ञान

भारत में शक्ति-उपासना का इतिहास

ऐतिहासिक साक्षी–

इतिहास वेत्ताओं ने अपनी खोजों के परिणामस्वरूप यह घोषणा की है कि भारत में शक्ति-उपासना प्राचीनकाल से चली आ रही हैं। मोहनजोदड़ों में जो खुदाई हुई है, उसमें मकानों की सात-सात तहें निकाली हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि वहाँ पर क्रमशः एक-एक करके सात नगर बसे और नष्ट हो गये। ऐतिहासिकों ने जो इन नगरों के बसने के समय का अनुमान लगाया है। उसमें सबसे नीचे के नगर को ईसा से पूर्व ४००० वर्ष बताया गया है। इस खुदाई में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं, जिनमें से लिंग शक्ति, स्वास्तिक, नन्दी के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी भारतवर्ष में शक्ति-उपासना की मान्यता थी। वैदिक काल से लेकर आज तक इस उपासना का भारतवर्ष में एक विशिष्ट स्थान रहा है। इसका हम क्रमशः अध्ययन करेंगे।

वैदिक काल–

भारतवर्ष में सदा से स्त्रियों का समुचित मान रहा है। उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता है। स्त्रियों को बहुधा 'देवी' के पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। नाम के पीछे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनकी जन्मजात उपाधि 'देवी' प्रायः जुड़ी रहती है। इसलिए धार्मिक, आध्यात्मिक और ईश्वर प्राप्ति सम्बन्धी कार्यों में नारी का सर्वत्र स्वागत किया गया हैं और उसको महानता के अनुरूप प्रतिष्ठा दी गई है। वेदों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के मन्त्रद्रष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक ऋषिकायें भी हैं। ईश्वरीय ज्ञान वेद महान् आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है। और उन्होंने उन मन्त्रों को प्रकट किया। इस प्रकार जिन पर वेद प्रकट हुए, उन मन्त्र-दृष्टाओं को ऋषि सहते हैं। ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन् अनेक नारियाँ हुई हैं। ईश्वर ने नारियों के अन्तःकरण में भी उसी प्रकार वेद-ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्त.करण में क्योंकि प्रभु के लिये दोनों सन्तान समान हैं। महान् दयालु, न्यायकारी और निष्पक्ष प्रभु भला अपनी ही सन्तान में नर-नारी का पक्षपात करके अनुचित भेद-भाव कैसे कर सकते हैं?

ऋग्वेद १०।७५ के सम्पूर्ण मन्त्रों की ऋषिका 'सूर्या सावित्री' हैं। ऋषि का अर्थ निरुक्ति में इस प्रकार विया है—ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्शेति ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः।' अर्थात् मन्त्रों का द्रष्टा उनके रहस्यों को समझकर प्रचार करने वाला ऋषि होता है।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म-देवता के २४ वें अध्याय में इस प्रकार हैं—

घोषा गाधा विश्ववारा, अपालोनिषच्च।
ब्रह्मजाया जुहुर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति॥
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती॥
श्रीलक्ष्मीः सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरितः॥

अर्थात् "घोषा" गोधा, विश्वहारा, अपाला, उपनिषद्, जुह,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी हैं।'

ऋग्वेद के १०-१३४, १०-३९, १०-४०, ८-९१, १०-९५, १०-१०७, १०-१०९, १०-१५४, १६-१५६, १०-१८९, ५-२८, ८-९ आदि सूक्तों की मन्त्रद्रष्टा यही ऋषिकायें हैं।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और कराती थीं। वे यज्ञ-विद्या और ब्रह्म-विद्या में पारंगत थीं। नई नारियाँ तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति का मार्ग दर्शन करती थीं।

तैत्तरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता-सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का विस्तार पूर्वक वर्णन आता है।

....त त्रयो वेदा अन्य सृऽयन्त अथह सीतां सावित्री सोम राजान चक्र में तस्या उहत्रीन प्रददौ।

तैत्तिरीय २।३।१०

इस मन्त्र में बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता-सावित्री को तीन वेद दिये।

मनु की पुत्री 'इडा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १।१।४ में उसे 'यज्ञानकाशिनी' बताया है। 'यज्ञानकाशिनी' का अर्थ सायणाचार्य ने 'यज्ञ-तत्व-प्रकाशन-समर्था, किया है। इडा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—

साऽब्रवीदिडा मनुम् । तथावाऽएँ तवाग्निमाधास्यामि। यथा प्रथमा पशुभिर्मिथुनजनिष्यसे। प्रव्यर्स्मिलोकेष्थायासि। सवर्ग लोके जेष्यसोति।

तैत्तिरीय ब्रा० १।४

इडा ने मनु से कहा—'तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हें पशु-भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग प्राप्त हो।'

इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में नारी को उच्च सम्मान प्राप्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था और उसके सम्मान की समुचित व्यवस्था थी, बल्कि नर से नारीको अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। आर्यों का समाज पुरुष-प्रधान था, फिर भी उनके यहाँ नारी को उच्च दृष्टि से देखा जाता था। यह सामाजिक सम्मान ही देवी-उपासना की आधारशिला बना। वैदिक देवताओं के साथ उनकी अर्द्धांगिनियों के नाम भी आते हैं। पत्नियों के नामों को पतियों से पहले सम्बोधित करने की यहाँ प्रथा थी। अतः जहाँ देवताओं की उपासना होती थी, वहाँ देवियों को भी श्रद्धास्पद माना जाने लगा। वेद का देवी-सूक्त इसका प्रमाण है जब इस सूक्त की रचना हुई होगी तब देवताओं की अपेक्षा देवी की उपासना अधिक प्रचलित हो चुकी होगी, तभी वाक् अपने आपको ब्रह्मवादिनी और परब्रह्मात्मिका कहती है और ग्यारह रुद्र, आठ वसु, धाता आदि द्वादश आदित्य, विश्वेदेवा, मित्रावरुण, इन्द्राग्नि, अश्विद्वय आदि को अपना रूप बताती है (ऋग्वेद १०।१२५।१)। यह विश्व की अधीश्वरी, आराधकों की ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली और यज्ञ-योग्य देवताओं में प्रमुख होने की घोषणा करती है (अथर्व० ४।३०।२) वह साधकों को ऐश्वर, सृष्टा और ऋषि बनाने की क्षमता रखती है (३)।

वेद में अदिति को देवमाता और विश्वमाता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दिति का भी यदा-कदा वर्णन है। उष्स् सरस्वती, द्यौः रात्रिः, वाणी, इला, इडा, राका-सिनीवाली, वृहद्दिवा सरयू, सूर्या, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, रुद्राणी, अश्विनी आदि देवियों के नाम आते हैं। इससे विदित होता है कि वैदिक काल में देवी-उपासना प्रचलित थी।

यहाँ इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि आर्य इस देश के मूल निवासी थे अथवा यह बाहर से आए और द्रविणों आदि पर विजय प्राप्त करके यहाँ के शासक बन बैठे। हमें तो केवल यह देखना है कि यहाँ निवास करने वाली जातियों में शक्ति-उपासना का क्या स्थान था ?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतिहास का परिशीलन करने पर प्रतीत होता है कि आर्यों और द्रविणों के धर्म, संस्कारों, भाव, विकारों और जीवन के विषय में उनके दृष्टिकोण में समानता दृष्टिगोचर होती है। द्रविड़ शिमला हिल्स से लेकर काठियावाड़ तक फैले हुये थे और उनमें शिव-शक्ति की पूजा एक प्रमुख उपासना के रूप में प्रचलित थी। द्रविड़ सभ्यता के जो अवशेष मिले हैं, उनमें कहीं शिव योग-मुद्रा में बैठे हैं तो कहीं देवी की नाभि से कमल का फूल उग रहा है और कहीं लिंग और योनि दिखाई दे रहे हैं। शिव द्रविणों के उपास्य देव थे, इसका प्रमाण इस तथ्य से भी मिलता है कि शिव का तामिल नाम 'सिवन' है, जिसका अर्थ लाल होता है। यह आर्य नाम 'नील लोहित' से मिलता है। संस्कृत का शम्भु तमिल में 'सेम्वु' बना, जिसका अर्थ ताम्बा या लाल धातु होता है। द्रविणों में ताम्र वर्ण के प्रतापी देवता शिव ही ही थे। आर्यों में इसकी 'रुद्र' से समानता की जा सकती है।

जहाँ शिव है, वहाँ शक्ति का होना आवश्यक है, क्योंकि शक्ति के बिना तो शिव, शव बन जाते हैं। ऐतिहासिकों का मत है कि सम्भवतः सती के देह-त्याग की कथा इसी काल की है जब सती के शरीर के टुकड़े जगह-जगह गिरते हैं और वहीं शक्ति-पीठों की स्थापना हो जाती है।

पौराणिक काल–

पौराणिक युग शक्ति-उपासना का यौवन काल कहा जाता है क्योंकि पुराण रचयिता और उनके व्यापक पचार से शक्ति-उपासना को इतना बल मिला कि वह घर-घर की उपस्थ बन गई। शिर और शक्ति का युगल प्रसिद्ध है। दोनों में कोई भेद नहीं है, दोनों एक हैं, जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति, पृथ्वी और उसकी गन्ध तथा क्षीर व उसकी धवलता में कोई भेद नहीं होता, उसी तरह शक्ति और शक्तिमान में अभेद सिद्ध होता है। पुराणों में 'शिव' वायु आदि शिव का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। शिव-चरित्र के साथ तो पार्वतीजी का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घनिष्ठ सम्बन्ध है। देवी भागवत, मार्कण्डेय और कालिका पुराण में देवी का माहात्म्य वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त में भी राधा के रूप का अच्छा निरूपण किया गया है।

पौराणिक शक्ति-उपासना के बीज हम वेद में भी देखते हैं, जहाँ वागाम्भृणी सूक्त (ऋग्वेद १०।१२५) में शक्ति-तत्व का प्रतिपादन किया गया है। पुराण निश्चय-रूप से वैदिक सिद्धान्तों का विस्तार मात्र है। उनकी रचना का उद्देश्य ही वेदार्थ का उपवृहण करना था। वैदिक युग से पुराण-युग तक शक्ति-उपासना को पहुँचाने के लिए उपनिषदों का भी योग प्राप्त हुआ। केनोपनिषद् में उमा को वैदिक प्रधान देवता इन्द्र को, ब्रह्म का उपदेश देने का श्रेय दिया गया और देवी गायत्री, सावित्री, सरस्वती, सौभाग्यलक्ष्मी, त्रिपुरा, सीता, राधा, भावना, वह वृचोपनिषदों में स्वतन्त्र रूप से मातृ-उपासना का विवेचन करके इस भावना को बल दिया। इसे पौराणिक शक्ति—उपासना की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है, जहाँ देवी को सर्वस्व माना गया है। उदाहरण के लिये सीतोपनिषद् में सीता के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'सीता' ही विश्व का कल्याण करने वाली हैं। वे ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वे सर्व देवतास्वरूपा, सर्व लोकमयी, सर्व आश्रयभूता, सर्व कीर्तिसम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सर्व देवगन्धर्व मनुष्य आदि प्राणियों की स्वरूपभूता हैं। वे सभी प्राणियों की देहरूपा हैं।'

जन-मानस में जब देवी ने इस भावना का रूप लिया, तब इसकी उपासना व्यापक रूप से की जाने लगी। देवी उपासना का अधिकांश इसके भय-निवारणी व शत्रु-विनाशनी गुणों से हुआ है। वैदिक युग में जो स्थान इन्द्र को प्राप्त था, पौराणिक युग में वही स्थान दुर्गा को मिला है। इन्द्र ने वृत्रासुर आदि असुरों को मारकर जो ख्याति पाई थी, उससे अधिक श्रेय दुर्गा को महिषासुर चण्ड-मुण्ड, शुभ-निशुम्भ, रक्तबीज आदि दैत्यों के वध से मिला था। स्वाभाविक भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था, क्योंकि दुर्गा का उद्भव भी देवताओं की संगठन शक्ति का परिणाम था। जिस शक्ति में समस्त देवताओं का तेज सम्मिलित हो, उसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि दुर्गा की उपासना में भी सभी देवताओं की उपासना आ जाती है। तभी मार्कण्डेय पुराण के सप्तशती प्रकरण में देवताओं से बार-बार देवी की स्तुति कराई गई है और देवी के सहयोग से ही देवताओं की विजय दिखाई गई है। यहाँ देवी को देवताओं की अपेक्षा अधिक सम्मानित पद दिया गया है। अतः उसकी उपासना का विकास स्वाभाविक ही था।

यदि वैदिक काल को इस उपासना का आरम्भ माना जाय, तो पौराणिक युग में इसका यौवन मांना जा सकता है।

बौद्ध काल—

बौद्ध धर्म पर शक्ति-प्रभाव स्पष्ट रूप ने परिलक्षित होता है। इनके साहित्य में शाक्तों से प्रभावित देवियों का वर्णन आता है। साधन-माला' को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। सेवकोद्देश टीका में वाराही, नारायण, ब्राह्मी, रौद्री, लक्ष्मी, ईश्वरी, परमेश्वरी आदि का नाम आता है। वज्रयान-साहित्य से प्रतीत होता है कि इन देवियों की उपासना मन्त्रों और मूर्ति सहित प्रचलित हो गई थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालन्दा में 'तारा' और 'हारीति' की उपासना होती थी। वागीश्वरी, वसुधारा आदि देवियों के भी वहाँ चित्र उपलब्ध होते थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में भी देवी-उपासना प्रचलित थी।

बौद्ध धर्म में शक्ति-तत्व के प्रवेश का श्रेय 'गुह्य-समाज-तन्त्र' ग्रन्थ को है, जिसमें पाँच ध्यानी बुद्धों की उपासना का निर्देश दिया गया है। इन ध्यानी बुद्धों की अलग-अलग शक्तियों का वर्णन आता है।

बौद्ध मत में—

'प्रज्ञापारमिता' की देवी के रूप में उपासना होती है, जिसके सम्बन्ध में मान्यता है कि वह ज्ञान और बुद्धि को प्रदान करने वाली हैं वह भी आद्याशक्ति ही है। बौद्धों में 'तारा' की उपासना भी शक्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की उपासना ही है। हिन्दू और बौद्ध तन्त्रों की शक्ति उपासना में साम्य है, केवल शब्दों का अन्तर है। हिन्दू धर्म में जिसे शक्ति के नाम से सम्बोधित किया है, उसे बौद्ध धर्म में 'शून्य' की संज्ञा दी गई है। उनकी मान्यता है कि यह शून्य ही विज्ञान और सुख-शान्ति का प्रदाता है। यही सृष्टि का कारण है और इसी में सब कुछ लय हो जाता है। ब्राह्मणों और बौद्धों के दर्शनशास्त्र व आचारशास्त्र में भी साम्य दृष्टि-गोचर होता है। ब्राह्मणों की 'वाराही' और 'दण्डिनी' के साथ 'वज्र-वाराही' मिलती-जुलती है। साधना-पद्धति भी एक जैसी ही है। ब्राह्मण और बौद्ध प्रणव ओंकार-साधना को 'तार' कहते हैं। इस देवता की पत्नी का नाम 'तारा' है। बौद्धों की इस तारा देवी के सम्वन्ध में काफ़ी साहित्य संस्कृत में लिखा गया है। तारा के सम्बन्ध में ३३ संस्कृत-ग्रन्थ उपलव्ध बताये जाते हैं, जिसमें तारा उपासना पद्धति के प्रत्येक अङ्ग पर विस्तृत विवेचन है। यह 'तारादेवी' महायान सम्प्रदाय की है। हीनयान सम्प्रदाय की 'मणिमेखला' देवी है। श्रीलंका और श्याम में इसकी उपासना होती है। वहाँ इसे समुद्र की देवी के रूप में मानते हैं, जो तूफानों से रक्षा करने वाली है। हिन्दू धर्म में जैसे शिव-शक्ति का जोड़ा है, वैसे ही बौद्ध-धर्म में तार-तारा का जोड़ा है, उनके गुण एक जैसे ही हैं।

यह साधना बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध थी परन्तु ऐसा लगता है कि बौद्ध साधक कठोर नियमों से तंग आचुके थे और वह किसी सरल मार्ग की खोज में थे जिसमें भौतिक सुखों को तिलांजलि न दी जाती हो और संसार के सभी कार्य करते हुए साधना का विकास किया जाये। 'गुह्य समाज तन्त्र ने इसी सिद्धान्त का आश्वासन दिया कि भौतिक आलम्बन के साथ बुद्धत्व की प्राप्ति की जा सकती है। इससे संघ में अन्य अनैतिक दोष भी उत्पन्न हो गये, जिससे साधना में विघ्न पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए उनका दिनोंदिन पतन होता गया।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाथ व सिद्ध सम्प्रदाय पर शक्ति उपासना का प्रभाव-

नाथों का प्रेरणा स्रोत वज्रयान सम्प्रदाय को माना जाता है । बौद्धों में ८४ सिद्धों के नाम आते हैं । उनमें प्रारम्भ के ६ नाम नाथों के हैं । कोई समय था जब नाथ सम्प्रदाय सारे उत्तरी भारत पर छाया हुआ था । ऐसा लगता है कि इसके व्यापक विचार ने वज्रयान को प्रभावहीन कर दिया और यही इसके लोप का कारण बना ।

बुद्ध- पुराण के अनुसार शिव ने ही मत्स्येन्द्र का रूप धारण किया था । मत्स्येन्द्र का कौल मत से विशेष सम्बन्ध लगता है । इसे नाथ-सम्प्रदाय का सर्व प्रथम आचार्य माना जाता है। यह गोरखनाथ के गुरु थे । जन-श्रुति है कि शिव-पुत्र स्वामी कीर्तिकेय ने 'कुलागमशास्त्र' को समुद्र में बहा दिया था । इसके उद्धार के उद्देश्य से शिवने मत्स्य रूप ग्रहण किया और जिस मत्स्य ने उस शास्त्र का भक्षण किया था, उसे मारकर 'कुलागमशास्त्र' का उद्धार किया । इसीलिए उस आगम का नाम पड़ा--'मत्स्यध्न' ।

ऐसी भी मान्यता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने 'कौल ज्ञान-निर्णय' ग्रन्थ की रचना की थी । वहाँ भैरव के मुख से यह शब्द कहलाये गये हैं कि 'वे ही त्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रम से महाकौल, सिद्धकौल और मत्स्योदर के रूप में अवतार धारण करते हैं ।

'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' में पाँच शिव और उनकी पाँच शक्तियों का नाम आता है-अपर-शिव, परम-शिव, शून्य-शिव, निरञ्जन शिव और परमात्मा शिव की क्रमशः शक्तियाँ हैं--विजा-शक्ति, परा-शक्ति, अपरा शक्ति, सूक्ष्मा-शक्ति और कुण्डलिनी-शक्ति। शास्त्रकारों ने इसका सम्बन्ध सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा से स्थापित किया है ।

'गोरक्ष-सिद्धांत-संग्रह पूर्णनाथ' के अनुसार सृष्टि रचना से पहले प्रलयावस्था में शिव को शक्ति से परे की मान्यता दी गई है । जब शिव के सृष्टि-रचना की इच्छा जाग्रत होती है,तो वह अपने को शक्ति से युक्त करते हैं, तभी यह कार्य सम्पन्न हो पाता है । शिव-संहिता की मान्यता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि माया ने अपने आवरण से ब्रह्म को ढक रखा है और वह अपनी विशेष शक्ति के माध्यम से ब्रह्म को विश्व-रूप में लाती है। यही माया जब तप से संयुक्त होती है, तो वह दुर्गा का रूप धारण करती है। सतोगुण से मिलने पर वही माया लक्ष्मी बन जाती है। रजोगुण से आलिंगन होने पर सरस्वती रूप में अवतरित होती है।

नाम-पन्थ में देवी को कुण्डलिनो शक्ति से रूप में मान्यता दी गई हैं और उसी की विशेष रूप से उपासना होती है।

९ वीं शती का मध्य ही नाथ-सम्प्रदाय का आरम्भ माना जाता है। इसका अन्त १२ वीं शती में हुआ। वैसे तो आज भी नाथ सम्प्रदाय कापालिक, औघड़, कानफटे और योगचारी उपासकों के रूप में तथा सुरत-शब्द-योगियों, दादू-पन्थी एव कबीर पन्थी के रूप में सारे भारत में मिलता है।

जैनधर्म पर शक्ति उपासकों का प्रभाव–

बौद्धधर्म की तरह जैन धर्म के साधकों ने भी इस सरल मार्ग को अपनाया और जैन धर्मके मूल सिद्धान्तों से न मिलने पर भी वह भक्ति-भावना, वरदान, चमत्कार, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि साधनाओं की ओर आकर्षित हुए, इनमें उन्हें भौतिक सुखों की कामनाओंकी पूर्ति की आशा थी अतः जैन-धर्म ने देवी-उपासना को स्थान दिया।

जैन धर्म में २४ तीर्थंकर माने जाते हैं। उनकी बांयें ओर एक यक्षिणी का निवास कहा गया है जिसे शासन-देवी कहते है। इन शासनदेवियों की संख्या भी स्वभावतः २४ है। इनमें चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धाविका प्रसिद्धहैं। पद्मावती २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की शासन देवी है। इनके स्वतन्त्र मन्दिर और पूजा विधान बताये गये हैं। इन्हें त्रिपुर भैरवी, त्रिपुरा, नित्या,तोतला, त्वरिता और कामसाधिनी नामसे भी पुकारा जाता है। इनकी विभिन्न प्रकार की मूर्तियां मिलती हैं, इनमें दो, चार, आठ, बारह, बाईस और चौबीस भुजायें प्रदर्शित की जाती हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अम्बिका नेमनाथ तीर्थंकर की शासन देवी है। जैन पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इनके भी अलग मन्दिर पूजा-विधान और स्तोत्र आदि उपलब्ध हैं। गौरी से इसकी तुलना की जा सकती है। इसके दो पुत्र-गणेश और कार्तिकेय है। अम्बिका के भी दो पुत्र बताये जाते हैं। दोनों का वाहन सिंह है।

चक्रेश्वरी आदिनाथ-ऋषभनाथ की शासन-देवी हैं। उसके वाहन, स्वरूप और आयुध में वह वैष्णवी और नारायणी देवी से मिलती-जुलती है।

सिद्धायिका चौवीसवें तीर्थंकर महावीर की शासन-देवी हैं। अपराजिता और कामचण्डालिनी भी इसी का नाम है। उसका श्याम वर्ण, दिगम्बर शरीर है चार भुजायें और खुले बाल है।

जैन पुराणों में इन चार शासन-देवियों को ही प्रमुखता दी गई है शेष की भी यदा-कदा पूजा होती रहती है।

जैन-धर्म ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता परन्तु चौबीस तीर्थंकरों की उपासना हिन्दू-धर्म के देवी-देवताओं की तरह ही करता है। उनके तीर्थोंमें देवी की मूर्तियों की प्रतिष्ठापना होती है। गुजरात में अम्बाजी माता के स्थान के पास 'कुम्भारिया' ग्राम में काफी संख्या में जैन-मन्दिर हैं। जैन-कवियों ने शक्ति-सम्प्रदाय के 'सारस्वत-कल्प' को माना है। सिद्ध सारस्वताचार्य श्री बालचन्द्र सूरिने अपने महाकाव्य 'वसन्त-विलास' के आरम्भ में शक्ति-पद्धति को स्वीकार किया है। वह अपनी दिव्य कवित्व शक्ति का श्रेय सरस्वती देवी की उपासना को ही देते हैं जैन-धर्म के दोनों सम्प्रदाओं-श्वेताम्बर और दिगम्बर में शक्ति की उपासना का प्रचलन है परन्तु उनकी मान्यता है कि पृथ्वी के नीचे और ऊपर देवी-देवताओं का निवासहै और उनकी अलग-अलग श्रेणियाँ हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि इसकी पूजा-उपासना से वरदान की प्राप्ति सम्भव है, जिससे सभी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति हो सकती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। हिन्दू-धर्म में तो ऐसा मानते ही हैं । जैन-धर्म में शक्ति-उपासना का प्रवेश इसके प्रभाव और महानता की ही साक्षी देता है ।

शक्ति उपासना का आरम्भ वैदिक कालसे हुआ । पौराणिक काल में यह फली-फूली । बौद्ध व जैन-धर्म जैसे इतर धर्मों ने इसे अपनाया नाथ व सिद्ध सम्प्रदायों पर भी इसका प्रभाव पड़ा । आज भी उत्तरसे लेकर दक्षिण तक व्यापक रूप से इसका प्रचार है ।

विश्व में शक्ति उप सना का प्रसार

भारतीय साहित्य के दो भाग हैं--निगम और आगम । निगम कहते हैं वेद को और आगम तन्त्र को । निगम के प्रति सारे विश्व ने उच्च सम्मान की भावना व्यक्त की है और मैक्समूलर जैसे उच्चकोटि के दार्शनिकों ने तो अपने जीवन का अधिकांश समय इसी की खोज व प्रचार-प्रसार में ही व्यतीत किया । आगम विश्वख्याति तो ग्रहण न कर सका, परन्तु सर जान वुडरफ जैसे विदेशी विद्वानों ने इससे उद्धार के लिए जी तोड़ प्रयत्न किए । तन्त्र के शक्ति-सम्प्रदाय की प्रमुख उपासना मातृ-साधना है । वैसे वैदिक साहित्य में इसके मूल को खोजा जा सकता है । वेद में अदिति, दिति, सरस्वती, उषा, इला, मही, सरमा, दक्षिण और आपोदेवी जैसी देवियों का वर्णन आता है । उपनिषदों ने भी मातृ-उपासना को स्वीकार करते हुए अनेक उपनिषद् इसके लिए अभिहित की हैं । वैदिक साहित्य की गूँज सारे विश्व में सुनाई दी । सम्भव है इसी से शक्ति-उपासना का बीज वहाँ अंकुरित हुआ हो । कुछ भी हो, विश्व के अधिकांश देशों में प्राचीनकाल से मातृ-उपासना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चली आ रही है और वहाँ भारत की तरह देवियों की प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं।

शक्ति-उपासना के दो विशेष कारण बताये जाते हैं। सभी सभ्यतायें इस मत से सहमत हैं कि प्रलय के समय केवल मातृ-सत्ता विद्यमान थी और उसी के सहयोग से सृष्टि की रचना हुई। दूसरे यह कि सभी ने इसको कृपा और दया का प्रतीक माना है। उन्होंने यह आशा रखी है कि उनकी भौतिक उलझनों का समाधान करने वाली वह एक विशेष शक्ति है। इस गुणके कारण जन समूह का ध्यान इधर आकर्षित होना भी स्वभाविक था। व्यवहारिक क्षेत्र में भी सच्चे प्रेम की प्रतिमा यदि किसी को कहा जा सकता है, तो वह माँ है–उसी से दुलार की आशा रखी जा सकती है। इसीलिए जहाँ भी मातृ-उपासना प्रचलित हुई वहाँ से उसे उपरोक्त गुणों के कारण पर्याप्त वल मिला। तभी सारे विश्व ने इसे अपनाने में कोई संकोच नहीं किया। हम यहाँ प्रांचीन काल से प्रचलित विभिन्न देशों की मातृ-उपासना का सक्षिप्त वर्णन करेंगे।

बेबीलोनिया–

भारतीय देवी उमा से मिलता-जुलवा नाम 'अमा' वेबीलोन में प्रसिद्ध था जो सम्पूर्ण सृष्टि की रचियता मानी जाती थी। इस देवीको 'तारा' और इश्तर कहते थे। इस तारा का दूसरा नाम 'निनसन' था, जिसका अभिप्राय नाशकर्त्री है। परन्तु 'इश्तर' को अधिकांशत: दया और करुणा की देवी माना जाता है। वह धरती और स्वर्ग की स्वामिनी मानी जाती थी। उनके कृपापात्र इसे अपना रक्षक और सम्पतिदाता के रूप में सम्मान करते थे। वह शान्ति प्रसन्नता की प्रतिमा स्वीकार की जाती थी। वह मानव-जाति से प्यार करने वाली थी। वेबीलोन में इश्तर देवी का सर्वोच्च स्थान था। इसकी महत्ता अपने देश तक ही सीमित नहीं वरन् सीरिया, मोआब दक्षिण अरब और अबीसीनिया में भी इसकी ख्याति फैली और यह वहाँ के स्थानीय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नामों से पूजी जाने लगी । सीरिया में 'अस्टेटं' नाम से 'मोआव' में 'अश्तर' के रूप मे, दक्षिण अरब आस्तर' और अबीसीनिया में 'आस्तर' के नाम से विख्यात हुई ।

इस देवी के सिर गाय के दो सींग देखे जा सकते हैं । 'अरविन्द' गाय का प्रतीक प्रकाश मानते है । यह देवी वहाँ के सभी देवताओं से विवाहिता है ।

बेबीलोन में आदि देव जो 'अप्सु' और उनकी पत्नी 'तियायत' के नाम से पुकारा जाता है । वहाँ की मान्यता है कि सर्वप्रथम वह समुद्रों के रूपमें विकसित हुए और तभी अन्य देवी देवताओं की उत्पत्ति हुई । यह कल्पना ऋग्वेद के 'अप्रकेतम् सलिलम्' की प्रेरणा से वनी प्रतीत होती है । वहाँ के तीन प्रमुख देवता हैं-इनतिल, दया और अनु, जो भारत के त्रिदेवों-ब्रह्मा, विष्णु और महेश से मिलते हैं । इन तीन देवताओं की शक्तियाँ हैं-तिललिलु (धरती की देवी) दामकिना(जलदेवी) और अनातु (स्वर्ग की अधिष्ठात्री) इस तरह से बेबीलोन ने मातृ-शक्ति के महत्व को स्वीकार किया ।

मिस्र-

मिस्र में आकाश की देवी 'नुट' मानी जाती थी, जिसके सम्बन्ध में धारणा थी कि वही सभी प्राणियों की रचना करती है । यह भी कथा प्रचलित है कि यहाँ के वायुदेव शु, ने देवी 'नुट' को अपने पैरों का सहारा दिया फिर उसके सहयोग से लाखों तारों को उत्पन्न किया । 'नुट' को देवमाता कहा जाता था । 'शु' को 'नुट' का पति माना जाता था, जो भारतीय 'इन्द्र' की तरह पृथ्वी और आकाश के अधिपति थे । 'नुट' भारतीय 'सुरभि' की तरह 'गौररूपिणी' थी ।

माता के सृजक और सहारक दोनों रूप भारत में प्रचलित हैं, वहाँ मिस्र की 'सोखित' और 'सेखित' देवियों का सिर सिंहनी का था उनके हाथ में खड्ग देखा जा सकता है । वहाँ की एक और देवी 'तेपनुतने' का रूप भी सिंहनी जैसा था ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसा प्रतीत होता हैं कि मिस्री देवताओं का नाम करण भारतीय देवताओं में थोड़े परिवर्तन से ही हुआ है। उदाहरण के लिए भारतीय नाम 'ओम' से आमन्' बन गया और विष्णु--'वेस' में परिवर्तित हो गया। 'ईश' का 'इसिन्' बन गया 'माता' का 'मत' शक्ति का 'सकित' 'विनेश' का 'दायनेशियस' हो गया और 'हर' का तो 'हर' ही रह गया मिस्री 'देवता' राय की कथा महर्षि दत्तात्रेय से मिलती-जुलती है। वहाँ दत्तात्रेय के पद-चिन्ह, मत्स्येन्द्रनाथ की मूर्ति व महाकाल का मन्दिरभी है। मिस्र की गोदेवी का नाम 'इरिस' था। भारत मे कच्छप व वराह आदि के भी अवतार माने गये हैं। मिस्र में हेक्टदेवी का रूप मेंढक का था।

मिस्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त देवी थी--'आइसिस' जो वहाँ की सहस्रनामा अन्नपूर्ण मानी जाती है। इसकी उत्पत्ति का इतिहास कुछ अच्छा नहीं है। देवी नुट का पति सूर्य देवता 'रा' था परन्तु उसने उस की उपेक्षाकी और देवता 'जेब' से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करके पाँच सन्तानें उत्पन्न की, जिनमें 'आइसिस' भी एक थी। फिर आइसिस ने अपने युवा भाई 'ओसिरिस' से विवाह कर लिया। 'रा' देवता से शक्ति प्राप्त करने के लिए उसे सर्प से डसवाने का षडयन्त्र रचा। यहाँ तक का इतिहास तो इसका काला है, परन्तु वहाँ की प्रजा के लिए वह देवी वरदान सिद्ध हुई। मानवीय नियमों की व्यवस्था और प्रथम सभ्यता का पाट 'आइसिस' द्वारा ही आरम्भ किया हुआ मानते हैं। वह खाद्य धान्यों के भण्डार भरने वाली देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

'आइसिस' अपने देश में इतनी लोकप्रिय हुई कि वह अन्य देशों में भी पूजित होने लगी। रोम में 'सेरस' और ग्रीस में 'डिमीटर के रूप में पूजी जाने लगी। मिस्र की देवियों में इसका प्रमुख स्थान था। मातृत्व और पत्नीत्व में वही आदर्श मानी जाती थी। इसे वहाँ कुमारी माँ की तरह पूजा जाता था। जब ईसाई धर्मका प्रचार बढ़ा तो इसीके नाम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की कुछ जातियों में 'मेनी के नाम से सम्मान दिया जाने लगा। 'आइ-सिस की पूजा 'मेरी के रूप में रूपान्तरित हो गई।

सात्विक देवियों में साइडर का प्रमुख स्थान है, जो सत्य, न्यास और बुद्धि की देवी मानी जाती है। मिस्र की आकाश देवी का नाम था--'हाथर'। संहारक-देवी के रूप में 'हेकार्ट' का उच्च स्थान है। वह विभिन्न प्रकार के अस्त्र धारण करती थी, वह छः भुजा वाली थी सिंहों और सर्पों में भी उसका सम्बन्ध था। कभी-कभी दिगम्बरवेष भी धारण करती थी। इस देवी की समानता भारतीय देवी कालीसे सुविधापूर्वक की जा सकती है।

मिस्री पुराणों में अनेक अन्य देवियों का भी वर्णन आता है। विश्व को यदि एक भवन मानें, तो उसके चारों द्वारों की द्वारपालिकायें भी देवी रूप में पूजी जाती थीं विभिन्न पशुओं को भी देवी का प्रतीक माना जाता था। सार यह है कि मिस्री मस्तिष्क पर मातृशक्ति की महत्ता की छाप अंकित थी और यह सभी प्रकार की समृद्धि और सौभाग्यों का अवतरण इसी महाशक्ति की उदारता से ही मानते थे।

चीन--

आज तो चीन में साम्यवाद का बोलवाला है, परन्तु प्राचीनकाल में यह एक आस्तिक देश था और यहाँ आस्तिक धर्म पुष्पित-पंल्लवित हुए थे, तब मातृ-उपासना का भी प्रचलन था।

चीन में नौ देवता माने जाते थे। उनकी जन्मदात्री का नाम 'नुची' था, जो आदिम जल-राशी अपस् देवी के नाम से विख्यात थी। इस 'अपस' से ही निखिल विश्व की सृष्टि मानी जाती थी। वहाँ की पौराणिक गाथाओं से ज्ञात होता है कि पश्चिम आकाश देवी व्याघ्र-रूपिणी थी।

भारतीय वेद की तरह प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ चीन में 'ई-चिंग (I-Ching) था। इसके अनुसार 'यांग' (Yong) और 'यिंग'(Ying)दो सिद्धान्त थे, जिनको सृष्टि-रचना का मूल माना जाता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था । इनका भारतीय रूपान्तर पुरुष और प्रकृति ही किया जा सकता है । माओवादी धर्म में योग के प्रतीक 'चिएन' (Chien)को अजगर या अश्व और 'यिंग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोड़ी या गाय के प्रतीक में देखते हैं । वैदिक परिभाषा में गाय को मातृ-चेतना की शक्ति और प्रकाश के रूप में समझा जाता है ।

चीनी 'कन्फ्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खिअन' और पृथ्वी को 'ख्यान' कहा जाता था । उनकी धर्म-पुस्तक में इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है--खिअन आकाश है वृत्ताकार है, मार्ग है, पिता है, धातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व .... वृक्षों का फल है । 'ख्वान' वस्त्र है, धन है, गौ पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उपजाऊ मिट्टी है ।' यह वर्णन Myths of China and Japan पुस्तक में दिया हुआ है । पृथ्वी माता ही काली है ।

जब चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ,तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप में रही । भारत में बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं । यह अवलोकितेश्वर चीन में पहुँचकर नारी रूप में परिणत हो गया--यह आश्चर्य है । वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किये गए थे । वहाँ की तीन नेत्रों और अष्टभुजाओं वाली देवी की समानता दुर्गा से की जा सकती है । चुनटी (Chun-ti) चण्डी से मिलती जुलती है । यह मातृशक्ति वहाँ सन्तानों की संरक्षिका, दुःख हर्ता, सुखदाता और विपत्तियों को दूर करने वाली मानी जाती थी । प्रसिद्ध लेखक 'प्रैत' ने अपनी पुस्तक'दि पिलग्रिमेज आफ बुद्ध' में लिखा है कि 'कैथोलिकों में जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन में इस देवी का है ।

ग्रीक—

यूनानी लोग भारतीयों की तरह मन्दिर बनाकर देवों की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थीं। इनमें सोने और हाथी-दांत की बनी एथेनी देवी की मूर्ति शिल्प-कला

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। इसे वहाँ प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत में।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है--यही एथेन्स नगर के नामकरण की कथा वहाँ प्रचलित है। बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पीसीडीन' दोनों की इच्छा थी उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण में दोनों में मतभेद था। दोनों अपना मुकद्दमा लेकर 'जियस' देवता के पास गये। जियस ने पूछा कि वह अपने नगर को क्या उत्तम भेंट करना चाहेंगे। पोसीडीन ने एक सुन्दर घोड़ा भेंट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने जैतून का पेड़ा जियस ने यह निर्णय किया कि घोड़ा युद्धका प्रेरक है और जैतून का पेड़ जन-कल्याण का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेंस' हुआ। बुद्धि की देवी के उपासकों को ही एथेंस को बुद्धि और विद्या का केन्द्र बनाने का श्रेय है -

काली चोरों ओर डाकुओं से रक्षा करती है। यून की 'लावर्न' का भी यही उद्देश्य है 'जूनो' देवी 'ओलम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली बताई जाती है। पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री बताई जाती है। पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताओं के सेनापति का गौरवपूर्ण पद मिलने का श्रेय प्राप्त है। उसके छह मुख और बारह नेत्र हैं। वह पार्वती की रक्षा करता है। जूनो का पुत्र 'आगर्स' भी ऐसे ही गुणों वाला है।

वहाँ पृथ्वी देवी को 'डीमीटर' के नाम से याद किया जाता है। हेरा, डानाप् और अर्तेमिस नामक देवियाँ भी वहाँ एक विशिष्ट स्थान रखती है। हेरा--मिलन की प्रतीक, विवाहों की अधिष्ठात्री और वहाँ सर्वोच्च देवता 'जीवस' की सलाहकार मानी जाती है। यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिधित्व करती है।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता,करुणा और पवित्रताकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीक है। जब आत्माएँ नवीन शरीर धारण करती हैं, तो यह उनकी रक्षा करती है।

'अहनो' वीरों की वीरता को प्रोत्साहित करती है। वह स्थापत्य और शिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग्य में आया है।

जैसे भारतीत प्रमुख देवता इन्द्र की माता अदिति है वैसेही यूनान के प्रमुख देवता 'जीयस' की माता 'रेआ' (Reha) मानी जाती है।

'अनोन्का, मातृशक्ति वहाँ परम्परा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक-परम्परा में मार्त-उपासना का एक उच्च स्थान रहा है।

रोम–

रोम में भी देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। 'एलियस' को देवी 'हेलेन' और देवता जुपीटर का युग्म माना जाता है। रोम के संस्थापक 'रेमस' और 'रोम्युलस' का पालन-पोषण का एक मादा भेड़िया ने किया। इसलिए उस देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी 'ओटस' मानी जाती थी।

भारत में सम्पत्ति 'श्री' है। रोममें इसका नाम 'सिरिस' है। गया के पास जो 'श्री' की मूर्ति उपलब्ध हुई है, तह इससे मिलती-जुलतीहैं। रोमन दुर्गा का नाम 'मिनर्वा' है। वह शास्त्र धारण करके राक्षसों का संहार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और बुद्धि की प्रतीक मानी जाती है और जिसके हाथ में एक वीणा रहती है। भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

काबुल–

भारतीय रति की तरह काबुल में 'मिलित्ता' देवी की आराधना होती थीं, जो प्रेम, दाम्पत्य और प्रणय का प्रतीक मानी जाती थी। नव-विवाहित युगल के लिए इसकी पूजा करना अनिवार्य होता था। पत्नी के लिए तो देवी को प्रसन्न करना अनिवार्य होता था। इस देवी की आराधना कुछ ऐसे विकृत ढंग से की जाती थी कि किसी भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वाभिमानी पति को इसे सहन नहीं करना चाहिए था क्योंकि नव-विवाहिता जब तक अपरिचित युवक के आकर्षण का केन्द्र नहीं बन जाती थी तब तक वह योग्य पत्नी कहलाने की अधिकारिणी नहीं बन सकती थी। अनुमान है कि वेश्यावृत्ति की नींव इसी कुप्रथा ने रखी। होगी।

'तियामत' काबुल की आसुरी देवी है। अथर्ववेद में इसे 'तंयात' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तिलक ने 'तियामत' को तैयात' सिद्ध किया था। काबुलमें यह 'अप्सू' देवताकी पत्नी मानी जाती थी ऋग्वेद में भी 'अप्सव' शब्द आया है, जिसका सम्बन्ध जल से है। तियामत अकाल की प्रतीक है। जल को सोखकर सुखा डालना ही उसका काम है। भारतीय इन्द्रकी तरह काबुल में 'मर्दु क' है, जो आसुरी शक्तियों ने संघर्षरत रहते हैं। 'तियामत' से भी वही युद्ध करतेहैं। जैसे इन्द्र अपने वज्र से वृत्र आदि का सिर काट डालता है, वैसे ही 'मदु क' तियामत का सिर काटता है। जैसे ऋग्वेदमें 'महोअर्णव' जल धाराओं की निर्दोष गति से चलने की बात आती है, वैसे ही तिवामत की मृत्यु पर होता है।

नेपाल—

नेपाल को एक मात्र हिन्दू राष्ट्र होने का श्रेय प्राप्त है। वहाँ पर हर क्षेत्र में हिन्दुत्व की सजीव मूर्ति होना स्वाभाविक ही है। वहाँ और हिन्दुओं का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। सरस्वती के मन्दिर में इसका व्यवहारिक उदाहरण देखा जा सकता है जिसे 'मन्जूश्वरी' भी कहा जाता है और जिनके चरण-चिन्ह भी वहाँ स्थापित हैं महाकाली के भी वहाँ दर्शन होते हैं। बौद्धों का विश्वास है कि यह देवी लोकेश्वरी पद्मपाणि की मूर्ति है। अन्नपूर्णा देवी पर नेपालवासियों की अच्छी आस्था है, क्योंकि वह अधिक अन्न उपजाने में सहायक सिद्ध होती है। राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी को भी नेपाली अभी भूले नहीं हैं अन्य देवियाँ तो भारत की तरह ही ज्यों-की-त्यों स्थित हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य देशों में–

उत्तरी अफ्रीका में देवी-उपासना का प्रचलन था। तियामत, मिलिता ईसिस, इश्तर, इनिन्ना नामक देवियों की आराधना वहां एक लम्बे समय तक होती रही।

मिस्र की 'ईसिस' की 'इश्तर' के नाम से 'असूरिया' में पूजा हुई, जहाँ इसके दूसरे नाम 'निना' तथा 'नना' और 'इनिन्ना' थे।

सुमेर में 'निन्नी' नन्ना अथवा नन्नर 'इनन्ना' देवी की पूजा के चिन्ह मिलते हैं। इस पर एक महाकाव्य की रचना भी हुई थी।

इश्तर देवी का आरम्भ ही सीरिया से माना जाता है।

ईसाई धर्म में कुमारी मेरी की उपासना सर्वोपरि मानी जाती है। १४ वीं शती तक वह देवमाता के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ईसा से चार सौ वर्ष बाद तक इसका नाम भी कोई नहीं जानता था। परन्तु ऐसा लगता है कि एशिया माइनर, सीरिया और दक्षिण योरोप में पहले विद्यमान मातृ-उपासना का प्रभाव अन्धविश्वासी ईसाई जगत् पर पड़ा और 'मेरी' को विपत्ति-निवारिणी माता के रूप में माना जाने लगा। तभी से फ्रांस, जर्मनी आदि में विशाल गिरिजाघरो की नींव रखी गई।

ईसाई जगत् में 'मेरी' के प्रति श्रद्धा ईसा के समान ही है। मेरी के सम्मान के रूप में मई मास में उत्सव मनाये जाते हैं। वह उपासकों के लिए आशाओं का केन्द्र है।

श्री जे० होम्स स्मिथके शब्दोंमें हम सभी विश्वमाता,धरती माता तथा मानव माताके गर्भ से उत्पन्न हुए है। भगवती माता तथा स्वर्गीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा अर्थ समाप्त हो जाता हैं, तो हम पुनः धरती माँ, विश्व माँ की ममता भरी गोदमें चले जाते हैं। आज संसार में लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रीट (Crete) में मातृ-उपासना रेआ (Rhea) के रूप में होती थी जिन्हें जीयस की माता कहा जाता था। उसका वाहन सिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इसी का नाम फायगिया (Phaygia) में साइबेल (Cyble) पड़ा। वह 'क्रोस' देवता की पत्नी थी इस देवी के सम्बन्ध में महाकवि होमर और पिण्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास वेत्ताओं का कहना है कि यहीं से देवी-पूजा रोम और ग्रीस में की गई क्योंकि इन देशों के साथ फायगिया के घनिष्ठा सांस्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और बाईबिल में सृष्टि-रचना के कारणों पर प्रकाश डालते हुए परमात्मा, श्वास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इसका अभिप्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचार्य रघुवीर ने तिब्बत और मंगोलिआ में से भारतीय देवी-देवताओं के रेखा-चित्रों का संग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओं के साथ काली देवी की उपासना तिब्बत, मंगोलिया और सुदूर उत्तर में स्थित मंचूरिया तक होती थी।

तिब्बत में भगवती का नाम--'सर्म्गिपास स्पियनमा' है। तिब्बत पर बौद्धों का स्पष्ट प्रभाव था। बौद्ध देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उसका नाम 'डलमा' था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की प्रतीक के रूप में पूजित माता का नाम वहाँ दाम, तिरांग, डलमा हैं। वैसे तारा की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी जो जहाँ के धर्म जीवन पर छाई हुई थी।

तिब्बत की तरह मंगोलिया में भी 'तारा' की उपासना होती थी। 'तारा' की मूर्तियाँ भी वहाँ प्रतिष्ठित थीं, जो सम्भवतः भारत से ही गई प्रतीत होती हैं।

यदि कहीं हिन्दुत्व पूर्ण रूपसे जीवित और जाग्रत स्थिति में है, तो वह बाली देश है, जहाँ की उपासनायें उपासना पद्धति, मान्यतायें और साहित्य उसी तरह श्रद्धा का पात्र है जैसा कि भारत में। बल्कि कुछ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंशों में भारत से अधिक 'Island of Boli नामक पुस्तक के अनुसार वाली द्वीप में देवी दानु देवी गंगा, गिरिपुथी, दुर्गा तथा उमा शिव की पत्नियाँ हैं।

काम्बुज में वैदिक-देवी देवताओं की उपासना प्रचलित थी। रामायण की व्यापकता के कारण सीता की वहाँ अच्छी लोकप्रियता थी हर्षवर्धन द्वितीय ने 'मेवन' में शिव और पार्वती के मन्दिर बनवायेथे।

जिस तरह यहाँ की जलदेवी गंगा मैया है इसी तरह थाई देश में जलदेवी को मैं खोंखा कहते हैं। उसके प्रति उनकी अपार श्रद्धाहै आज भी बैंकाकके उच्च न्यायालयमें सामने शिवकी मूर्ति स्थापित है जिसकी जटाओं में गंगा की धारा निकल रही है। वहाँ के ब्राडकास्टिग स्टेशन के मुख्य द्वार पर सरस्वती देवी का सुन्दर चित्र देखा जा सकता है।

जावा के कुञ्जर भाग में शैव-मन्दिर स्थापित है। श्री विलय साम्राज्य के शैलेन्द्र राजाओं द्वारा 'तारा' का मन्दिर बनवाया गयाथा (७०० तक) वहाँ की भाषा में 'चण्डी'-मन्दिर का नाम है। वहाँ पर 'सरस्वती-चण्डी, विष्णु चण्डी शिव-चण्डी आदि के मन्दिर मिलते हैं।

मलाया की उपासना-पद्धति भारतीय थी। अतः प्रत्येक देवता की मूर्ति का निर्माण किया गया था। वहाँ पर दुर्गा की मूर्तियाँ भी मिलती हैं। वर्मा के पगान नगर में अन्य भारतीय देवताओं के साथ तारा की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण है।

इस तरह से विश्व के अधिकांश देशों में शक्ति-उपासना के प्रति आस्था रही है।

शक्ति-विज्ञान

जगत दो प्रकार का है--जड़ और चेतन। जड़, चेतन पर आधारित रहता हैं। चेतन से ही जड़ में गति आती हैं। हम देखते हैं कि जड़ दिखाई देने वाली वस्तुओं में भी एक व्यवस्थित गति हैं, एक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नियमित प्रक्रिया के अनुसार वह कार्य करती रहती है। सर जगदीश चन्द्र वसु ने तो वृक्षोंमें जीवन-तत्व की विद्यमानता को सिद्ध कियाथा। प्लेटिनम का उदाहरण ले सकते हैं। वह विष से मर जाती है। उद्भिजों में तो स्पष्ट रूप से चेतना-शक्ति दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध में जो प्रयोग किये गये है उनमें यह निर्णय करना सरल हो जाता है कि उद्भिज में सोचने की शक्ति है उनमें गोचरता और इच्छा-शक्ति भी अवयव हैं। ज्ञान और कर्म-तन्तुओं के अभाव में इन गुणों का विकास कैसे सम्भव हो सकता है ?

मानव में तो इसके विविध रूप हैं। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, लज्जा भी और दया, क्षमा, करुणा, पपोपकार, नि:स्वार्थता, श्रद्धा विश्वास भी मस्तिष्क और इन्द्रियों की चेतना-शक्ति प्रत्यक्ष है। इनमें दोनों प्रकार विपरीत धारणाएं रहती हैं, भावों का आवागमन रहता हैं। मन तो एक अपूर्व चेतना-पिण्ड हैं, जिसकी क्रियाशीलता का अनुमान लगाना भी सम्भव नहीं है। मानव के हर अङ्गमें चेतना और स्फूर्ति है। इसी सृजन और संहार की दोनों प्रकार की प्रक्रियाएं संचालित होती हैं ऋतु आती है, दो प्राणियों में एक होने की इच्छा जाग्रत होती है। उनका मिलना सृष्टि प्रक्रिया का मूल बन जाता है। दोनों के संयोग से एक नया चेतन पिण्ड स्थापित हो जाता है,जिसके अणु-अणु में चेतना भरी रहती हैं विज्ञान ने भी इस क्रिया को समझने का प्रयत्न किया है। जीवन विज्ञान का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक का यह मतस्थिर हो गया है कि जीवोंमें जो जीवन-तत्व होता है उसका नास नहीं होता जीवन-अंकुर (cromosome) जीव के साथ रहते हैं और भौतिक शरीर के नष्ट होने पर संस्कार और चेतना-रूप में रहते हैं। इसलिये जीवन को अनादि और अनन्त कहने में कोई सन्देह नहीं रह गया।

विश्व में चेतना की प्रक्रिया व्यवस्थित है। जब सृजन होता हैं तो ऐसा लगता है कि हर वस्तु अन्दर से बाहर आ रही है, चाहे ग्रह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानव में हो, पशु-पक्षियों या पेड़-पौधों में हो। संहार के समय वह बाहर से अन्दर की ओर जाती है, क्योंकि उन्हें विश्व चेतना में लीन होना है। यह दोनों खेल एक ही चेतना के हैं। अंकुरों के आकाश की ओर उठने की प्रक्रिया में भी और उनकी पत्तियों के पृथ्वी पर गिरने पर मिट्टी में लीन होने की स्थिति में भी एक चेतना शक्ति काम करती है। वह सबमें व्याप्त है- किसी में सुप्तावस्था में और किसी में जाग्रता वस्था में। जाग्रतावस्था होने पर वह विशेष रूपसे क्रियाशील रहती है। परन्तु वह पक्ष-पात रहित है। उसे किसी से लगाव नहीं है। वह सब में एक ही प्रकार की अविरल गति से प्रवाहित होती है।

इसके प्रमाण चारों ओर देखे जा सकते हैं। अपने शरीर का ही उदाहरण ले। उसमें हृदय की गति बराबर चलती रहती है। इस गति का चलते रहना ही जीवन कहलाता है और रुकना ही मृत्यु। मन निरन्तर गतिशील रहता है। जो विचारों को गतिशील रखता है, वही व्यक्ति अलग-अलग क्षेत्रों में महान् प्रतिभाशाली बनते हैं। शरीर एक कारखाना है। उसके सभी अंग अपने आप कार्यरत रहते हैं। रक्त अविरल गति से प्रवाहित होता रहता है, भोजन करने पर पाचन-क्रिया होती रहती है, मलों का विसर्जन होता रहता है और श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया भी लम्बे समय तक संचालित होती रहती है। शरीर को गतिशील रखने से वह स्वस्थ व शक्ति-सम्पन्न रहता है। मालिश व अन्य व्यायाम करने से शरीर में एक प्रकार की विद्युत दौड़ती है जो उसकी शक्तियों का विकास करती है। जो इस विद्युतधारा को प्रवाहित करने में असमर्थ रहते हैं, वही अस्वस्थ और रोगी बने रहते हैं।

सूक्ष्म शक्तियों के विकास का आधार भी यही है। साधक व्रत, उपवास, जप, तप, हवन, पाठ, पूजा, योगिक क्रियाएँ, आसन, प्राणायाम, चिंतन, मनन, आदिके द्वारा सूक्ष्म शरीर के सुप्त शक्ति-केन्द्रों को जाग्रत करता है। इसमें गति की ही अपेक्षा है।

संसार की हर वस्तु गतिशील है। वायु गति का परिणाम है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शव्द गति से ही सुनते हैं। स्पर्श, रस और गन्ध की अनुभूति भी विभिन्न प्रकार की तरंगों से होती है। शरीर को सर्दी-गर्मी का अनुभव होना भी सूक्ष्म तरंगों से सम्पन्न होता है। विद्युत और चुम्बक का आकर्षण भी गति से ही होता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि,विद्युत और तारा मण्डल के तेज में भी तरंगों का विज्ञान निहित है।

विश्व की हर वस्तु गतिशील है। जिस धरती पर हम निवास करते हैं उसकी अनेक गतियाँ हैं। वह अपनी धुरी पर घूमती है, मँडराती है, सूर्य की परिक्रमा करती है तथा सूर्य के साथ कृत्तिका मण्डल की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी पर वह २४ घण्टों में घूम जाती है। सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में करती है । मंडलाने की गति २६ हजार वर्षों में पूर्ण होती है।

पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले हर प्राणी में गति है। गति से ही वह प्राणी कहलाता है। मनुष्य के अतिरिक्त पशु, पक्षी, कीट, पतंग और कीड़े-मकोड़े सभी गतिशील है। पेड़-पौधों में भी गति होती है तभी तो वह निरन्तर बढ़ते रहते हैं। मिट्टी और पत्थर में भी अव्यक्त गति रहती है। जब उन्हें ऊपर फेंका जाता है तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से वह नीचे आ जाते हैं।

वनस्पति जगत में भी इस असीम सक्रियता को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। यदि हम इस प्रकिया का निरीक्षण करें कि किस प्रकार पुष्प में रंग और गन्ध भरी जाती है और किस प्रकार भंवरों को आकर्षित किया जाता है--तो इसकी सत्यता सिद्ध हो जायगी । केवल फूलों में ही नहीं समस्त वनस्पतियों में यह सृजन क्रिया दृष्टि-गोचर यह बताती है कि अणु-अणु में, कण-कण में इसके दर्शन हो रहे हैं।

पदार्थ में गतिहीनता नहीं है, गतिशीलता है । उसे सृजन क्रिया में व्यस्त देखा जा सकता है। आधुनिक विज्ञान ने भी इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। विज्ञान बताता है कि पदार्थ और जीवन अभिन्न हैं, एक हैं। उनको अलग नहीं किया जा सकता। कुछ वैज्ञानिक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो जीवन को पदार्थ का एक गुण घोषित करते हैं। विश्व चेतना भी दोनों को एकता ही सिद्ध करती है, क्योंकि जब हम सृष्टि की हर जड़-चेतन वस्तु का निरीक्षण करते हैं, तो स्पष्ट विदित होता है कि हर वस्तु में सक्रियता है। यहाँ क्रियाहीन कोई पदार्थ है ही नहीं है, अणु-विज्ञान इलेक्ट्रोन को भौतिक इकाई नहीं मानते। वे इस विद्युत पुञ्ज में गतिशीलता और इच्छा-शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। अणु में इच्छा का होना वास्तव में वैज्ञानिकों के लिये आश्चर्य का विषय है परन्तु है यह अटूट सत्य। कुछ भी हो पदार्थ और जीवन एक अविभाज्य हैं।

वर्गसाँ इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं-- "पदार्थ में ही जीवन की इच्छा निहित है। यह इच्छा-शक्ति बाह्य नहीं, आंतरिक है जो प्रगति की ओर ऊर्ध्वमुखी है। मनुष्य में यही इच्छा चेतना के स्तर पर पहुँच गयी है। पर सभी रूप आकारों में यह इच्छा प्रगति-शील जीवन की जननी है। यही ब्रह्म का मातृरूप है।।"

इस विश्व का हर परमाणु तीव्र गति से अपना कार्य कर रहा है। पृथ्वी तो सूर्य की परिक्रमा साढ़े अठारह मील प्रति सैकिण्ड की गति से करती है परन्तु यहाँ हर एक परमाणु हजारों मील प्रति सैकिण्ड की गति से घूम रहे हैं। तभी तो परमाणु की शक्ति का मूल्यांकन करते हुए महान् वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने कहा था--"यदि एक परमाणु के अन्दर छिपी 'शक्ति' निकल पड़े, तो एक क्षण के अल्पांश में ही लन्दन जैसे घनी आबादी वाले तीन नगर ध्वस्त हो जाए यह उस परमाणु की विद्युत और गति के कारण ही है।"

सार यह है कि सारा विश्व गतिमय है--शक्तिमय है' किसी की शक्ति व्यक्त है और किसी की अव्यक्त। सारे ब्रह्माण्ड में शक्ति के खेत लहलहा रहे हैं। शक्ति के बीज बिखरे पड़े हैं। हमारे अंग-अंग में शक्ति के कोष भरे पड़े हैं, परन्तु हम उन्हें अनुभव नहीं कर पाते जो अनुभव करते हैं। वे शक्ति-सम्राट बन जाते हैं। सारा विश्व उनके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीत गाता है, उनकी उपासना करता है और उनसे सहायता की अपेक्षा रखता है। जब हम स्वयं में वह शक्ति और सामर्थ्य उपस्थित है तो हम दूर क्यों भागते हैं, अपने सुप्त शक्ति-केन्द्रों को क्यों नहीं जानते ? यह निश्चित है कि हममें भी वह शक्ति है,जो संसार के किसी भी प्राणी में है और हमारा भी उतना ही विकास सम्भव है जितना कि किसी प्राणी का हो पाया है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम शक्ति की उपासना उचित रीति से करें और अपने जीवन में गतिशीलता बनाए रखें। गति ही जीवन है, यही विकास और सफलता की आधार शिला है। इसी क्रियाशील इच्छा शक्ति को जगदम्बा, जगज्जननी, जगन्माता कहा जाता है। जगदम्बा की उपासना ही क्रियाशील जीवन है।

यही चेतना शक्ति साधनात्मक क्षेत्र में दुर्गा, भवानी देवी, शक्ति के रूप में पूजित है। हम अष्टभुजी दुर्गा के चित्र या प्रतिमा की उपासना करते हैं, तो निश्चय रूप से हम इस चेतना शक्ति का ही आवाहन करते हैं, क्योंकि वह सारे विश्व में अनन्त रूपों में व्याप्त है। शास्त्र में भी कहा है--

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।

अर्थात् "सबके स्वरूप वाले, सबके ईश और समस्त समन्वित में जो भी कुछ, कहीं पर भी वस्तु है, सत् अथवा असत्, उन सबके स्वरूप वाले में जो उसकी सबकी शक्ति है वही आप हैं।"

चेतना सर्वव्यापक है। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति जड़-चेतन में है, वह जीव अजीव सबमें है। सारा जगत् शक्तिमय है--'सर्वशक्ति मयं जगत।' यहाँ शक्ति के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। मार्कण्डेय पुराण देवी-माहात्म्य १।८२ में कहा है--

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं स्तूयसे मया॥

अर्थात् "और जो भी कुछ कहीं पर भी वस्तु है, वह चाहे सत् हो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या असत्, उन सबके आत्म-स्वरूप में उस सबकी शक्ति में जो शक्ति है, वही आप मेरे द्वारा स्तूयमान होती हैं।"

देवी भागवत (५।३१, ७७-७८) के अनुसार--

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तयै देव्यै नमो नमः॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमो नमः॥

व्यापक चेतना की अनुभूति और अपने जीवन को गतिशील बनाये रखना ही सच्ची शक्ति-साधना है।

शक्ति और अधिनिक विज्ञान

वैज्ञानिक समर्थन–

आधुनिक विज्ञान भी शक्ति-सिद्धान्त का समर्थन करता है। सर जान वुडरफ ने इस सम्बन्ध में लिखा है--जड़ प्रकृति की रचना के सम्बन्ध में जो शक्ति का सिद्धान्त प्रचलित है, जिसने प्रकृति को जड़ता से शून्य बना दिया है, जिस सिद्धांत के अनुसार प्रकृति के परमाणुओं में शक्तिका एक महान् खजाना भरा हुआ है जिस सिद्धांत के अनुसार उसे अनिर्वचनीय तत्व का यन्त्रों के ढंग से अवयवशः विश्लेषण करते-करते उसका एक अंश ऐसा बच जाता है, जिसका इस तरह विश्लेषण नहीं हो सकता। जिस सिद्धान्त के अनुसार रेडियो के आविष्कार ने भौतिक शक्तियों के क्षेत्र में--जो अब तक स्थिर एवम् सीमित मानी जाती थीं-एक नवीन एवं एक प्रकार से अनन्त शक्ति का संचार कर दिया है, उसने इस बात को भी प्रमाणित कर दिया है कि भौतिक विज्ञान शक्ति-सिद्धान्त के बहुत निकट पहुँच गया है। जिस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्त के अनुसार--(क) शक्ति ही सबका सार है (ख) प्रत्येक वस्तु के अन्दर अथवा यूँ कहिए कि समस्त विश्व के अन्दर वाली शक्ति की वास्तव में कोई थाह नहीं लगा सकता और (ग) प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में शक्ति का पूर्ण भण्डार भरा पड़ा है।"

भौतिक ऊर्जाओं में अभिन्नता–

विज्ञान हमें बताता है कि प्रकाश, ताप, चुम्बक आदि भौतिक शक्तियाँ मूलतः एक और अभिन्न हैं। समझने के लिए विद्युत को ही लीजिए--विद्युत् के चमत्कारों ने सारे संसार को मोह लिया है । यह अदृश्य भौतिक शक्ति है। इसे 'बल्ब' के माध्यम से प्रकाश में परिवर्तित करके अन्धेरे में उजाला किया जाता है 'हीटर' और लोहे की स्त्री की सहायता से यही विद्युत-ताप में रूपांतरित की जाती है। विद्युत-धारा को लोहे पर प्रवाहित करके चुम्बक बनता है जो दूसरी भौतिक शक्ति है। इससे यह सिद्ध है कि भौतिक शक्तियों को एक-दसरे में बदला जा सकता है। विज्ञान के इसी सर्वमान्य तथ्य पर जरा गम्भीरता के साथ विचार करे,तो हम निस्संकोच कह सकते हैं कि विद्युत्, प्रकाश, चुम्बक ऊष्मा आदि भौतिक शक्तियाँ विविध न होकर एक हैं। एक मूल-ऊर्जा के ही रूप-प्रतिरूप हैं। भौतिक शक्तियों में मूलतः कोई भेद नहीं है ।

मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ–

मूल ऊर्जा क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? भौतिक पदार्थों से उसका क्या सम्बन्ध है ? उसमें और भौतिक पदार्थों में क्या अन्तर है? इन प्रश्नोंका उत्तरभी आधुनिक विज्ञानकी उपलब्धियोंमें खोजना होगा।

विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने प्रयोगों द्वारा सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश को पदार्थ में बदला जा सकता है । जो बात प्रकाश के सम्बन्ध में है, वही अन्य भौतिक शक्तियों-चुम्बक,विद्युत् ताप, ध्वनि आदिके विषय में भी कही जा सकती है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ--जहाँ ऊष्मा-विद्युत आदि शक्तियाँ मूल रूप में एक हैं,वहाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगती के यावन्मात्र चर-अचर पदार्थ शक्तिरूप होने के कारण मूलऊर्जा के ही प्रतिरूप है। मूल ऊर्जा ही भौतिक शक्तियों में अनेक विधि परिवर्तित होकर इन्हीं के माध्यम से गैस, तरल और ठोस पदार्थों में घनीभूत हो रही है।

मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ–

समस्त स्थावर-जंगम पदार्थ अणु-परमाणुओं के संयोग से बने हैं। ये अणु-परमाणु निरन्तर गतिशील हैं। तत्व या यौगिक के अणु-परमाणु जब दूर-दूर तेजी से घूमते हैं, तो वह पदार्थ की गैसावस्था कहलाती है। जल अणु-परमाणुओं की गैस की अपेक्षा न्यून होता है, उसकी संज्ञा 'तरल' या 'द्रव' है। इसी प्रकार जब अणु-परमाणु की गति अत्यन्त सीमित हो, संकुचित हो, उसे ठोस पदार्थ कहा जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म इन्हीं अणु-परमाणुओं की जो गति गैस द्रव और ठोस को अनुस्यूत किए रहती है वही भौतिक शक्ति है और भौतिक शक्तियों की शक्ति 'मूल ऊर्जा' है।

गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी–

आधुनिक विज्ञान जहाँ स्थावर-जंगम पदार्थों तथा भौतिक शक्तियों को गतिशील बनाता है वहाँ पदार्थ नष्ट नहीं होता' ऐसा उद्घोष करके वह इनकी अविनाशिता को भी तुमुल ध्वनि से स्वीकारता है। इसका आशय यह हुआ कि मूल ऊर्जा वह 'सक्रिय तत्व है, जो कभी नष्ट नहीं होता। यह 'सक्रिय-गतिशीलता' ही उसकी प्रखर 'चैतन्यता' है।

मूल ऊर्जा की उत्पत्ति–

प्रश्न यह है कि वैज्ञानिकों की 'मूल-ऊर्जा' जो अविनाशी, शाश्वत, निरन्तर, स्पन्दशील, चैतन्य एवं भिन्न-भिन्न पदार्थों और शक्तियों में प्रतिरूपित है, किससे उत्पन्न हुई? भिन्न-भिन्न शक्तियोंको आकर्षण-विकर्षण में बाँधने वाली, उनका नियमन करने वाली होने के कारण वह उनसे तो उद्भूत हो नहीं सकती, तब क्या वह शून्य से पैदा हुई?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं, कदापि नहीं। सम्पूर्ण सृष्टि में 'शून्य कुछ नहीं है। सभी ओर सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों के रूप में मूल ऊर्जा ही व्याप्त है। अतः मूल ऊर्जा 'उत्पत्ति-रूप' नहीं है। यदि वह संभूत होती, उत्पत्ति का विषय होती, तो उसे 'मूल' विशेषण क्यों दिया जाता। फिर शून्य तो शून्य ठहरा। शून्य से निःशून्य का पैदा होना--चैतन्य का पैदा होना--वैसे भी युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। इसलिए कहना ही होगा कि वैज्ञानिकों की ऊर्जा 'स्वयं-भू' है।

मूल ऊर्जा और आद्याशक्ति में अभिन्नता–

निश्चय ही 'विज्ञान' की 'मूल ऊर्जा' वह चैतन्य धारा है, जिसे आस्तिक वर्ग 'आद्याशक्ति' के रूप में पूजता है । उपनिषद्-ग्रन्थों में 'आद्याशक्ति' के जो-जो गुण बताए हैं वे सब ही इसमें विद्यमान हैं।

वैज्ञानिकों की 'मूल ऊर्जा' सर्वगत है। वह समस्त पदार्थोंमें भौतिक शक्तियों में अणु-अणु में, परमाणु-परमाणु में अनस्यूत है। आद्याशक्ति भी सर्वगत है, सर्वव्यापक है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वह न हो। वैज्ञानिकों की मूल ऊर्जा ही समस्त विश्व का मूल कारण है। विश्व के यावन्मात्र परिवर्तन उसी के हैं। अध्यात्मवादियों की आद्याशक्ति भी जगज्जननी है। समस्त भौतिक शक्तियों का नियमन करने वाली है। वैज्ञानिकों की ऊर्जा गतिमय है, चैतन्य है,। आद्याशक्ति को भी परम चैतन्य के रूप में स्मरण किया जाता है। मूल ऊर्जा अविनाशी और शाश्वत है। आद्याशक्ति भी आदि-अन्त रहित है। मूल ऊर्जा उत्पत्ति-रहित है स्वयम्भू है। आद्याशक्ति भी आत्मरूप है स्वयम्भू और स्वयं प्रकाश्य है। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान भी आद्याशक्ति पर विश्वास करता है। संज्ञा शब्दों में ही, भेद है। विज्ञान जिसे 'मूल ऊर्जा' कहता है, हम उसे आद्याशक्ति। इसीलिए तो संसार-प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य आइन्स्टीन ने कहा है--"विज्ञान और धर्म में कोई भेद नहीं है। दोनों साथ-साथ चलते हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञान और साधना में अन्तर–

वैज्ञानिक और शाक्त दोनों शक्ति के सर्वव्यापक प्रभाव को स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है। विज्ञान तो शक्ति को एक अन्ध प्रवाह मानता है जिसका नियन्त्रण करके जैसा भी चाहे उपयोग कर सकता है। वह अपने को शक्ति का नियन्त्रक समझता है। वह उस असुर की तरह हैं, जो शक्ति के केश पकड़ कर उस पर अपने प्रभुत्व की घोषणा करता है। इसमें मानव--मूल्य का कोई भी स्थान नहीं है। उसका उद्देश्य केवल भौतिक स्थूल शक्तियों से काम लेना होता है। आध्यात्मिक शक्तियों में उसका कोई सम्बन्ध नहीं वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

शक्ति को माता के रूप में पूजने वाले का दृष्टिकोण अलग होता है। वह देवी को सर्वशक्तिमयी चेतना, स्ववश विहारिणी और सर्वेश्वरो मानता है। वह उसकी सगुण उपासना अवश्य करता है, परन्तु वह उसे पत्थर की प्रतिमा मात्र नहीं मानता, वह उसे चेतना का पुञ्ज मानकर उपासना करता है। उसके स्थूल विग्रह में सजीवता की अनुभूति करके करुण प्रार्थना करता है और भौतिक आत्मिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त कराने का आग्रह करता है और पाता भी है। विज्ञान की तरह यन्त्र एवं दासी की तरह नहीं, अपनी सर्वथा मानकर वह उसका द्वार खटखटाता है। भक्त के लिए वह विश्व-जनी है। वह अपनी सन्तान के साथ लाड़ और दुलार करती हैं उनकी सभी कामनाओं की पूति करती है, उसे सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है, उसके जीवन का काया--कल्प करके नव-निर्माण का उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। विज्ञान की शक्ति जड़ है, भक्त की चेतना। विज्ञान बाह्य जगत तक सीमित रहता है। शक्ति अर्न्तजगत् के विकाश का प्रयत्न करती है, दोनों के विधि विधान में भी बड़ा अन्तर है। जो भी हो, विज्ञान शक्ति–सिद्धान्त को मान्यता देता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति का दार्शनिक रूप

भारतीय दर्शन की आधार शिला–

भगवान की स्तुति करते हुए भक्त कहता है--"त्वमेव माता च पिता त्वमेव' गीता में कहा है--"माता धाता पितामह'। भगवान माता, पिता और पितामह है यही भारतीय दर्शन की आधार-शिला हैं। उनकी उपासना हम किसी भी रुचिकर रूप में कर लें, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसका कोई रूप नहीं, उसका कोई नाम नहीं। समझने की सुविधा के लिए ऋषियों ने कहा--'एकाकी न रमते, एकोऽहं बहुस्याम्"। सृष्टि-रचना के समय ऐसी प्रक्रिया हुई, इसे मूल-माया या आदि स्फूर्ति के नाम से सम्बोधित किया गया। वही ज्ञान-क्रिया शक्ति-रूप से द्वैत में आई और विश्व की रचना हुई है। वह ब्रह्म का ही व्यक्त-रूप है। जब अद्वैत द्वैत में परिणित हुआ, तो इस स्थिति को शिव-शक्ति, पुरुष-प्रकृति, राम-सीता, गणेश-रिद्धि, कृष्ण-रुक्मिणी आदि नामों से पुकारा जाने लगा। यह नाम अलग-अलग हैं और लोक में इनके शरीर भी भिन्न-भिन्न दिखाई दिये। इनकी लीलायें भी पृथक्-पृथक् रहीं, परन्तु वास्तव में सब एक है, इनमें कोई अन्तर नहीं--एक है। द्वैत तो केवल सृष्टि रचना के लिए ही ग्रहण करना पड़ता है।

दार्शनिक भाषा में इन दोनों की परिभाषा करें तो हम कह सकते हैं कि सारे संसार के अन्तर निवास करने वाली निर्विकार सत्ता का नाम शिव और उसकी क्रिया का नाम शक्ति है। शक्ति के अनेक रूप हैं, जिनमें प्रधान है--चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति। एक विद्वान् ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है--'यह जो स्फुरण या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रिया है, वह शिव का रूप है, और इस स्फुरण का जो आधारभूत अधिष्ठान है, वह शिव का रूप है। केवल सत्ता पुरुष हैं और समस्त क्रिया प्रकृति है।"

योग-वशिष्ठ (६।२८५।२५) में कहा है--

स परः प्रकृते प्रोक्तः पुरुष पवनाकृतिः ।
शिवरूपधरः शान्तः शरदाकाश शान्तिमान् ॥

"प्रकृति से परे दिखाई न देने वाला पुरुष है, जो कि सदैव ही शरद ऋतु के आकाश की तरह स्वच्छ, शान्त और शिवरूप है।"

इससे स्पष्ट है कि अद्वैत कारण है और द्वैत उसका परिणाम है। दोनों में कोई भेद नहीं।

शिव और शक्ति की एकरूपता-

देवी भागवत के अनुसार ब्रह्मा ने शक्ति से प्रश्न किया कि आप स्त्री हैं या पुरुष ? शक्ति ने उत्तर दिया--"पुरुष, और मैं हमेशा एक ही हूँ । मुझमें और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। जो पुरुष हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही पुरुष है।" इसीलिए नवरत्नेश्वर तन्त्र में निर्देश है कि "सच्चिदानन्दरूपिणी देवी की स्त्री, पुरुष और शुद्ध ब्रह्म रूप में उपासना करनी चाहिए।"

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने 'अमृतानुभव' के प्रथम प्रकरण (शिवशक्ति-समावेशन) में इस विषय का अच्छा स्पष्टीकरण किया है। वह कहते हैं कि 'उनका सम्बन्ध ऐसा है, जैसे डण्डे दो पर ध्वनि एक, पुरुष दो पर सुगन्ध एक, दीपक दो पर दीप्ति एक, होठ दो पर शब्द एक, नेत्र दो पर दृष्टि एक।"

ब्रह्म तो क्रियाविहीन है, शक्ति में क्रिया है, यह सारे जगत का विस्तार उसी के बल पर हुआ है। ऋग्वेद के १० वें सूक्त में देवी ने स्पष्ट कहा है--मैं राज्यों की अधिष्ठात्री और धन-प्रदात्री हूँ, जिसे मैं चाहूँ, वह मेरी कृपा से बलवान, मेधावी, स्तोता और कवि हो सकता है। मैंने आकाश को प्रकट किया है, इसलिए मैं उसके पिता के समान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हूँ। मैं सूर्य-चन्द्रादि नक्षत्रों की सञ्चालिका हूँ, लोकों की रचना करती हूँ, आकाश पृथ्वी में व्याप्त हूँ, समुद्र के जल में निवास करती हूँ।"

देवी-भागवत के सातवें स्कन्ध के ३२ वे अध्याय में देवी ने स्वयं अपने रूप का वर्णन किया है--मैं ही चिद्‌शक्ति, परब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ। मैं अग्निकी उष्णता, सूर्य की किरणों और कमल की शोभाके समान ब्रह्म से अभिन्न हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, ब्रह्माणी, वैष्णवी सूर्य, तारागण, चन्द्रमा, पशु, पक्षी, चाण्डाल, व्याध, क्रूरकर्मा, सत्यकम महाजन, स्त्रीलिंग, पुल्लिग, दृश्यादृश्य, श्रव्य, स्पर्शनीय सब कुछ हूँ।"

आध्यात्म–रामायण में सीता ने राम के सम्बन्ध में कहा है कि 'राम तो कुछ करते नहीं, उन्हें कोई इच्छा भी नहीं है, न आना जाना है। सब कुछ मैं ही हूँ।"

मार्कण्डेय--पुराण में देवी महामाया ने कहा है--'शिव की शक्ति उसके मुख पर अवस्थित थी,यम की शक्ति उसके केशों में प्रवाहित थी विष्णुका बल उसकी भुजाओं में था, उसके वक्ष-मण्डल चन्द्रमा की तरह सुडौल थे उसकी कटि में इन्द्र का तेज था, उसकी टांगों और जंघाओंमें वरुण का वेग था, ब्रह्मा उसके चरणों में थे और उसके पैर के अँगूठें में आग्नेय सूर्य चमक रहा था।"

इस तथ्य को भगवान विष्णु ने देवी-भागवत के चौथे अध्याय में स्वयं स्वीकार किया है। जब ब्रह्मा ने विष्णु से पूछा कि आप किसकी साधना करते हैं? उत्तर मिला–"बाह्य दृष्टि से तो आप जगत् के बनाने वाले हैं, परन्तु वेदज्ञ पुरुष हमारी इन सृजक, पालक और संहारक शक्तियों को पराशक्ति के आश्रित मानते हैं। शक्ति की कृपा से ही मेरी सारी गतिविधियां सञ्चालित होती हैं। इसीलिए मैं उसी आदिशक्ति की आराधना करता हूँ।" तभी समस्त भूतों में चेतनारूप से विद्यमान शक्ति को नमस्कार किया गया है--

या देवी सर्वभूतेषु चैतन्येत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकैव सा महाशक्तिः तया सर्वमिदं ततम् ।।

एक ही शक्ति अलग-अलग नामों और रूपों में व्यक्त होकर अलग-अलग कार्यों का संचालन करती है। जहाँ वह सृजनात्मक कार्य करती है वहाँ वह संहारक कार्यों का भी उत्तरदायित्व निभाती है, ताकि विश्व की व्यवस्था और नियन्त्रण को संभाल सके। जब वह सृजन क्रिया में व्यस्त रहती है, तो मातेश्वरी कहलाती है, परन्तु जब पालन-पोषण और रक्षा करती है, तो विश्वपिता के सम्माननीय पद से सुशोभित होती है। लक्ष्मी और अलक्ष्मी दोनों उसी के रूप हैं। भौतिक सुखों का सौभाग्य उन्हीं की कृपा से प्राप्त होता है और धन-ऐश्वर्यका दुरुपयोग करने वाले लोगों को उचित दण्ड देकर उन्हें सुमार्ग पर भी वही लाती है। भगवान, भगवती, महेश, माहेश्वरी ईश्वर और ब्रह्मशक्ति सब कुछ वही है।

समझने के लिए 'ब्रह्म' शब्द नपु सक लिंग और 'शक्ति' शब्द स्त्री-लिंग होता है, परन्तु ब्रह्मशक्ति में इनका आरोपण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए स्त्री-वाचक और पुरुष वाचक शब्दों को लें-पगड़ी, धोती, टोपी, साड़ी आदि स्त्री-वाचक हैं, परन्तु उनके मूलमें एक ही तरह का सूत है। यह सारी स्त्री वाचक व पुरुष वाचक वस्तुएं एक ही प्रकार के सूत से निर्मित हुई हैं,जिसमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व कुछ भी नहीं है। इससे यह परिणाम निकलता है कि एक ही चैतन्य अलग-अलग नाम रूप में हमें दृष्टिगोचर होता है, लौकिक दृष्टि से कुछ को स्त्री-वाचक और कुछ को पुरुष-वाचक घोषित किया जाता है, परन्तु वास्तव में वह दोनों इन संज्ञाओं से हीन होते हैं क्योंकि उस चैतन्य की कोई निश्चित संज्ञा नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए शास्त्र-कारों ने यह घोषणायें कीं--'त्वं हि माता च पिता त्वमेव' माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः' भगवान की माता और पिता दोनों रूपों में मान्यता है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और शक्ति के नाम-रूप तो अलग-अलग दिखाई देते हैं, परन्तु मूलतः वह एक ही हैं। उनमें कुछ भी भेद नहीं हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्र इस अभेद की पुष्टि करते हैं। योग-वाशिष्ठ ६।२।८४।३ में कहा है--

यथैक पवनस्पन्दमेकमोष्ण्यानलो यथा।
चिन्मात्रं स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥

"जिस तरह वायु और उसकी क्रिया, अग्नि और उष्णता सदैव एक ही होते हैं, उसी तरह चित्ति और स्पन्द-शक्ति एक ही है।"

अन्यत्र भी कहा है--

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः।

"जिस तरह पावक में गर्मी रहती है, सूर्य में किरण रहती है और चन्द्रमा में चन्द्रिका रहती है, उसी तरह शिव में उसकी सहज शक्ति का निवास है।"

विष्णु पुराण के अनुसार--

स एव क्षोभको ब्रह्मन्! क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तमः।
स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थिताः ॥
केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जड परे।
ज्ञानं मायाप्रधानञ्च प्रकृति शक्तिप्यजाम् ॥
सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्ति सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग! ययेदं निर्म्मंसं विभुः ॥

"वही पुरुषोत्तम भगवान क्षोभ्य और क्षोभक उभय रूप से प्रतिभास होते हैं एवं संकोच और विकास के द्वारा ब्रह्म और तच्छक्तिस्वरूपिणी प्रकृति व प्रधान रूप से विद्यमान रहते हैं। यह प्रकृति कहीं इच्छा-रूप से, कहीं माया रूप से और कहीं शक्ति रूप से वर्णित की गई है। यह शक्ति सदा-सदात्मिका है एवं चैतन्य रूप भगवान इसके द्वारा ही समस्त विश्व की रचना किया करते हैं।"

अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अभेद--

शिव और शक्ति के एक्य को अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा के सुन्दर रूप में प्रदर्शित किया गया है--जिसके आधे भाग में शिव और आधे में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पार्वती उत्कीर्ण की गई है। इसे विद्वानों द्वारा मानव-इतिहास की सुन्दरतम, कल्पना की संज्ञा दी गई है। अर्द्धनारीश्वर का शास्त्रीय अध्ययन व्यक्त भावों की पुष्टि करता है--

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौः वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ।।

"पुरुष से प्रकृति अलग कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसमें सम्मिलित रहती है और सनातन शक्ति कहलाती है ।"

विद्यापति ने अर्द्धनारीश्वर की इस प्रकार आराधनात्मक स्तुति की है जिसमें शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति के समन्वित रूप की अभिव्यक्ति की है--

जय जय शंकर जय त्रिपुरारि ।
जय अध पुरुष जयति अधनारी ।।
आध धवन तनु आधा गोरा ।
आध सहज कुच आध कठोरा ।।
आध हड़माल आध गज मोती ।
आध चन्दन सोहे आध भभूती ।।
आधा चेतन मति आधा भोरा ।
आध पटोर आध मुंज डोरा ।।
आध जोग अध भोग विलासा ।
आध विधान आध नगबासा ।।
आध चान अध सिंदूर शोभा ।
आध विरूप आध जग लोभा ।।
भने कवि रतन विधाता जाने ।
दुई कय वाटल एक पिराने ।।

इस सम्बन्ध में भृंगी ऋषि की कथा कम महत्वपूर्ण नहीं है, जिसमें शिव और पार्वती, पुरुष और प्रकृति, नर और नारी की एकता का बोध होता है। उसमें एक तरह से गम्भीर समस्या का समाधान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी किया गया है। कथावस्तु, इस प्रकार से है कि एक बार देवता और ऋषि शिव की स्तुति के लिए कैलाश पर गये । जैसे देव मन्दिरों में देव-दर्शन के साथ-स्तोत्रों का पाठ और मन्दिरों की प्रदक्षिणा आवश्यक मानी जाती है, उसी तरह शिव को ईश्वर की साक्षात् प्रतिमा मानकर देवताओं और ऋषियों ने शिव और पार्वती दोनों की श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा की परन्तु भृंगी ऋषि के मन में शिव के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं, उनकी श्रद्धा के पात्र केवल शिव ही थे । अतः उन्होंने केवल शिव की ही प्रदक्षिणा की । पार्वती ने इसे अपनी उपेक्षा समझी और भृंगी को कंकाल का शाप दिया । शाप प्रत्यक्ष हो गया । एक ओर भक्त है और दूसरी ओर पार्वती--दोनों को ही उन्हें सन्तुष्ट करना था । भृंगी को उन्होंने तीसरा चरण प्रदान किया जिससे वह प्रसन्नता से खिल उठा । यह शिव के महान अनुग्रह का प्रतीक था । भृंगी की प्रसन्नता से पार्वती की अप्रसन्नता स्वाभाविक थी । शिव को उन्हें भी रुष्ट नहीं करना था। उन्हें वरदान दिया कि तुम आधे अंग व रूप में सदैव मेरे साथ रहोगी । शरीर-रूप में भी मुझसे अलग न होगी जब पार्वती शिव का आधा अंग बन गईं और दोनों एक हो गये, तो भृंगी की समझ में आया कि शिव-पार्वती दोनों एक ही हैं अलग-अलग नहीं हैं । तब उससे उस-समन्वित रूप की प्रदक्षिणा की । इससे नर-नारी की वस्तु स्थिति का पता चलता है । यह प्रस्तर प्रतिमा बादामी की गुफा में उपलब्ध है ।

"जिस पुराण" (शत रुद्र संहिता) में अर्द्धनारीश्वर के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार वर्णित है--

"जिस समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नहीं देखी, तो वे दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर परम चिन्तित हुए । उस समय एक आकाशवाणी हुई कि अब तुम मैथुनी-सृष्टि की रचना करो ।" यह सुन ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी-सृष्टि के निर्माण करने का मन में निश्चय कर लिया । इसके पहले शिव से स्त्रियों के कुल का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राकट्य नहीं हुआ था। इसी कारण से विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य में समर्थ न हो सके। शिवजी के प्रभाव के विना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकेगी–ऐसा विचार कर ब्रह्मा, शिव को प्रसन्न करने के लिए तत्पर हुए। पार्वती-स्वरूपिणी परम शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय में ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक जप करने में ब्रह्माजी लीन हो गये। कठोरतम तपस्या में तत्पर ब्रह्माजी से शिव जी थोड़े ही समय में शीघ्र सन्तुष्ट हो गये। इसके अनन्तर पूर्ण विद्रूप ईश्वर ने अपनी काम-प्रदायिनी मूर्ति में प्रवेश करते हुए आधा नारी ओर आधा पुरुष का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप पदार्पण किया। तब ब्रह्मा ने भगवान शिव को अपनी शक्ति से संयुक्त देखकर दण्डवत्-प्रणाम करते हुए करवद्ध होकर उनकी स्तुति की। शिवजी ने अपने शरीर के अर्द्ध भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया तब उनका शिव से पृथक् स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा।

विष्णु पुराण अंश के चौथे अध्याय में लिखा है–

अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽति शरीरवान्।
विभजात्मानभित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधेततः॥

अर्थात्-सृष्टि के आरम्भ में रुद्र आधे शरीर से पुरुष और आधे से नारी हुए। यह जानकर ब्रह्मा-सन्तुष्ट हुए और उसका विभाजन की प्रेरणा दी, ताकि सृष्टि का संचालन किया जा सके।

शास्त्रों ने पुरुष को तभी पूर्ण माना है, जब उससे नारी संयुक्त हो जाती है। नारी के अभाव में वह अपूर्ण, अधूरा रहता है। भविष्य पुराण के सातवें अध्याय में लिखा है–

पुमावद्ध पुमांस्तावद्यावादभार्या।

अर्थात्–पुरुष का कलेवर तब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं करता, जब तक कि उसके आधे अङ्ग को आकर नारी नहीं भर देती।

वृहदारण्यकोपनिषद् (१४।१।३) में भी ऐसे ही भाव प्रदर्शित किए गये हैं–सर्वप्रथम सब कुछ ही आत्मा था। उसकी आकृति पुरुष

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसी थी। उसने चारों ओर नजर दौड़ाई तो उसे अपने अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया। उसे अकेलापन अच्छा नहीं लगा, आनन्द नहीं आया। उसने अपने को दो भागों में विभक्त किया। उसी से पति और पत्नी बने। इसीलिए दोनों में प्रत्येक अपने ही आधे अंश की तरह हैं।

शतपथ ब्राह्मण ५-२-३-२० में भी कहा है-

अर्धो ह्वा एष आत्मनो यज्जावेति।

जाया अपना आधा अंश ही है।

व्यास-संहिता २।१४ में भी कहा है-

यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान्।

जब तक स्त्री की प्राप्ति नहीं होती तब तक पुरुष आधा ही रहता है।

विवाह के समय पति पत्नी से कहता है-

यदेतद्हृदये तव तदस्तु हृदये ममायमेतद्हृदये मम तदस्तु हृदयं तव।

यह जो तुम्हारा हृदय है, सो मेरा हो जाय और जो मेरा हृदय हैं, सो तुम्हारा हो जाये।

ब्रह्मवैवर्त पुराणकार ने इस सुन्दर रूप का वर्णन इस प्रकार से किया है कि भगवान प्रकृति देवी की सहायना से ही शक्तिमान रहते हैं। यह नर और नारी, पुरुष और प्रकृति-दोनों अलग-अलग दृष्टि-गोचर होते हैं, परन्तु वस्तुतः वह एक ही हैं।

अर्द्धनारीश्वर की कल्पना में ब्रह्मवैवर्त पुराण में पुरुष को कृष्ण और नारी को राधा का रूप बनाया गया है। यह स्वाभाविक है क्यों-कि वह कृष्ण-प्रधान पुराण है। उसमें कृष्ण को ही सर्वस्व माना गया है। सृष्टि रचना का रूप बतलाते हुए कहा गया कि वह आरम्भ में केवल अकेले ही थे।

एक से अनेक होने की इच्छा उनके मन में उत्पन्न हुई। उन्होंने संकल्प किया और वह पुरुष और प्रकृति दो भागों में बँट गये। इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभाजन में दायाँ पक्ष पुरुष का और बायाँ नारी का हो गया। कृष्ण को प्रकृति और समान्तर भाया की संज्ञा दी जाती है।

शिव और पार्वती के इस सम्मिलित रूप को विश्व में सुन्दरतम रूप की संज्ञा दी जा सकती है क्योंकि इस कल्पना ने दो पक्षों को एक स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है। बाह्य दृष्टि से जो अलग-अलग दिखाई देते हैं, जिनके शरीर की बनावट में अन्तर है, जिनके गुणों में विभिन्नता है, जिनकी प्रकृति भिन्न दिशाओं में प्रस्फुटित होती है, उनको आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में, एकता के बन्धनों में बाँध दिया है। इसमें दिखाया है कि दोनों मिलकर ही एक इकाई बनते हैं। अलग-२ दोनों अधूरे है। शिव सर्वशक्तिमान हैं, परन्तु शक्ति के अभाव में वह गतिहीन है। पार्वती ही उनकी गति है, शक्ति है। यही क्रियाशीलता उत्पन्न करती है। पुराण-कथाओं में भी समझाया गया है कि पुरुष स्वयं सृष्टि रचना करने में असमर्थ थे। प्रकृति के सहयोग में ही वह अपने उद्देश्य में सफल हुए। प्रकृति से जब पुरुष का मिलन हुआ,तभी एक से अनेक होने की कल्पना पूर्ण हुई। उपनिषद्कार ने पुरुष और स्त्री को दो धाराओं के रूप में स्वीकार किया है जिनका मिलन ही शक्ति सृजन करता है।

शिव और शक्ति की एकता के सूत्र–

एक विद्वान के शब्दों में 'सृजक' और सृजनात्मक कारण के रूप एक शिव और शक्ति का सम्बन्ध भारतीय कल्पना में अमिटहै। उसका विचित्र परिवार जीवन की सामूहिक जीवधारी रचना का प्रतिनिधित्व करता है।

शिव का शक्ति से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह शिव-तत्व के आध्यात्मिक विश्लेषण से विदित होता है। शिव का त्रिनेत्र शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है, क्योंकि इससे वह सारे विश्व में काम-शक्ति को प्रवाहित करने वाले कामदेव को भस्म कर देते हैं। शिव के मस्तक पर शांति-स्तम्भ के रूप में अर्द्ध चन्द्र की स्थापना की गई है,जो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस तथ्य का प्रतीक हैं कि उसकी शांति-गंगा में कभी ज्वार-भाटा नहीं आता, आवेशरूपी लहरें शिवरूपी समुद्र में कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकतीं।

शिव का त्रिशूल संहारक शक्ति का प्रतीक है। वह त्रिगुणात्मक प्रकृति से युक्त होने की स्वाभाविक प्रक्रिया का प्रतिनिधत्व करता है। वृषभ और डमरू भी शिव की शक्ति के रूप हैं। वृषभ का अर्थ है--वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा। जो शक्ति सारे संसारमें अपने महा-प्राणों को बिखरे हुए हैं, वही शिव हैं, जो शक्ति अपने महाप्राणों द्वारा सृष्टि कीं उत्पत्ति का कारण वनती है, उसी को शिव कहते हैं, वही वृषभ वाहन है।

शिव के गले में सर्प लटके रहते हैं। सर्प तमोगुण का प्रतीक है। शिव तम को नियन्त्रण में रखते हैं। सर्प संहारक शक्ति है, वह काल का प्रतीक है। काल किसी को नहीं छोड़ता, पर शिव उससे मुक्त है। सर्प क्रोध का साक्षात रूप है, परन्तु मस्तिष्कजिसके में निरन्तर शांति गंगा का प्रवाह बना रहता है, वहाँ क्रोध शक्ति का क्या प्रभाव पड़ सकता है? सर्प ।मंगल रूप है, शिव अपने मंगलरूप से उन पर विजय का जयघोष करते हैं।

भस्म नाश का चिन्ह है। इसे वह अपने शरीर पर लगाते हैं। मुण्ड मृतकावस्था का बोधक है। शिव इन्हें अपने आभूषण बनाते हैं। इस अवस्था पर उसका नियन्त्रण है, क्योकि वह संसार के देवता हैं। वह कालरूप हैं-काल मृत्यु को अपने गले से लगाते हैं।

पिनाक शिव का धनुष है। यह उनका शक्तिशाली शस्त्र है, जिससे वह युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं। शिव व्याघ्र-चर्म ओढ़े रहते हैं--व्याघ्र शक्तिशाली सम्राटों को भी नहीं छोड़ता, फिर व्याघ्र की क्या बिसात है? यह भी शक्ति का प्रदर्शन है।

इससे स्पष्ट है कि शिव-तत्व की सभी क्रियायें शक्ति पर आधारित हैं। शक्ति के बिना तो शिव शव के समान हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिव का विराट व विश्वव्यापी रूप प्रसिद्ध है। शिव योग-तत्व के प्रथम आविष्कारक व प्रचारक माने जाते हैं। आयुर्वेदिक औषधियों के जन्मदाता भी वही हैं। स्वरों के जनक भी वही हैं। पशु जगत के स्वामी हैं, तभी पशुपति नाम पड़ा। वे समस्त ब्रह्मांड की शक्ति हैं।

मांडूक्योपनिषद् (७) में ऋषि ने शिव-तत्व का स्पष्टीकरण करते हुए कहा--जो भीतर-बाहर प्रज्ञा वाला नहीं है, जो दोनों ओर प्रज्ञा वाला भी नहीं, जो न जानने वाला है और न अज्ञान है, जो अदृष्ट, अव्यवहार्य और अग्राह्य है जो लक्षण रहित एवम् प्रज्ञानघन है जो न बतलाने में आ सकता है और न चिन्तन में, जो प्रपंच रहित, कल्याणकारी अद्वैत, सर्वथा शान्त है, उसे ब्रह्म का चतुर्थ चरण कहा गया है, वही शिव है, उसे जानना चाहिए।

शक्ति का रूप भी शिव की तरह विश्वव्यापी है। वह सृजन और विनाश की शक्तियों की अधिष्ठात्री है। शिव महाकाल के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, तो विनाशशक्ति का प्रतिनिधित्व करने वह काली के रूप में आते हैं। शिव, संयम और संहार की प्रतिमूर्ति हैं, या जिससे उत्थान की समस्त प्रक्रियायें सञ्चालित होती हैं तो उमा शिव-प्राप्ति के लिए मृत्यु को गले लगाने को तत्पर होती है, वह श्रद्धा की सजीव मूर्ति है। पार्वती के रूप में वह प्रेम और दया का आगार है। जब आसुरी शक्तियाँ अपना विस्तार करने लगती हैं तो इसे सहन नहीं होता और दिव्य शक्तियों के संगठित रूप में वह दुर्गा बनकर उनका विनाश करने के लिए अवतरित होती हैं। कुमार जैसे पुत्र को वह इसी लिए जन्म देती है, ताकि बढ़ते हुए अनीश्वरवाद, अचरवाद को रोके और उसके संगठन को ध्वस्त करें।

रामचरित-मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने भवानी को श्रद्धा और शिव को विश्वास का प्रतीक माना है। विश्वास वह शक्ति है जिसके आधार पर सभी साधनाएँ सफल होती हैं। इसके अभाव में साधनाएँ लड़खड़ाने लगती हैं। आत्म-विश्वास एक ऐसी महान शक्ति है जिसके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विना संसार की सभी प्रगति रुकी रहती हैं। आगे बढ़ने और तैयारी करने वाले से इसका सम्बन्ध आवश्यक है । शिव इसी महाशक्ति के प्रतीक हैं। कथा है कि राम ने लंका पर चढ़ाई करने के पूर्व रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना और शिव-उपासना की। इसका अभिप्राय यह है कि उन्होंने अपने आत्म-विश्वास को जगाया, तभी वह इतना महान कार्य सम्पादन करने के लिए आगे बढ़े ।

राम ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है--

दृष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम् ।
आह्लादिनीं परां शक्ति स्तूयाः सात्वतसम्मताम् ॥
तदाराध्यास्तदारामस्तदधीनस्तया विना ।
तिष्ठामि ना क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम ॥

--अगस्त्य संहिता

श्री रामजी ने कहा--हे शंभो ! अगर भावनास्पद रूप की देखने की इच्छा करते हो, तो भक्तजन समस्त मेरी आपलादिनी परा शक्ति की स्तुति करें। मैं उसी के सहित आराध्य हूँ, उसी में मुझे आराम है, मैं उसी के अधीन हूं। उसके विना मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता, क्योंकि वह मेरा परम जीवन है।

शक्ति उपासना का दार्शनिक आधार–

शिव और शक्ति में एकत्व है, अभेद है। वे दिखाई देते हैं, वास्तव में वे एक हैं। जब एक दूसरे से अलग होते हैं, तो विश्व की शक्तियों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए एक पुराण-घटना प्रसिद्ध है--जब सती दक्ष के यज्ञ में जलकर भस्म हो गई तो वे पागल से हो गये । उनकी उन्मत्त अवस्था का कारण शक्ति का शिव से अलग होना ही था। तारकासुर के नेतृत्व में आसुरी शक्तियों ने सिर उठाया। एक वरदान के अनुसार वह केवल एक नवजात शिशु शक्ति से मारा जाना था। सती ने उमा पार्वती के रूप में [illegible] के घर जन्म लिया । वह शिव प्राप्ति के लिए तप करने लगीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घोर तप के कारण उनका शरीर केवल मात्र ढाचा रह गया। देवताओं ने शिव की समाधि तोड़कर उनके मन में काम-वासना उत्पन्न करनेकी योजना बनाई और इस कार्य के लिए कामदेव को नियुक्त किया। शिव ने अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया। अन्त में शिव पार्वती की तपस्या से सन्तुष्ट हुए और विश्व नारी और विश्व पुरुष का विवाह हुआ। तभी स्कन्द का जन्म हुआ और तारकासुर का वध किया जा सका। इस तरह शिव सृष्टि के सर्वोपरि परित्राता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। समुद्र-मन्थन की घटना भी इसका प्रमाण है। समुद्र-मन्थन का अभिप्राय विकास की सनातन प्रक्रिया से है। एक विद्वान् के शब्दों में जैसे-जैसे समुद्र-मन्थन आगे बड़ा, अन्धकार की मां अराजकता से क्षुब्ध होकर पाप और मृत्यु का सारभूत विष पृथ्वी पर फेंका। इस विष को यदि मुक्त रहने दिया जाता, तो वह सृष्टि का विनाश कर देता। तब शिव सृष्टि के परिणाम के लिए आये और उन्होने उस विष को पी लिया सृष्टि की विकास योजना में अन्ततः अच्छाई ही इष्ट की विजय हो।

एक विद्वान् ने शिव और शक्ति के रूप को इस प्रकार व्यक्त किया है--

शिव और शक्ति के सम्मिलित स्वरूप को 'चणक' नाम से अभिहित किया गया है। एक चणक में दो दाने हैं लेकिन वे एक दूसरे के इतने करीब हैं कि एक मालूम पड़ते हैं और जो एक ही छिलके से घिरे हैं, यह दो दाने शिव और शक्ति हैं तथा छिलका माया है। इस संकेत को वैज्ञानिक शब्दों में यों कहा जा सकता है कि शिव धनात्मक आवेश है और शक्ति ऋणात्मक। इन आवेशों से उत्पन्न बल क्षेत्र ही माया का स्वरूप है, जो आदेशों को घेरता है। ध्यान रहे कि उपर्युक्त संकेत जगत प्रपंच के उद्भव की स्थित का है।

शक्ति शिव की सनातन साथी है। वह सृष्टि की आशा रचना मुक्ति है। वह सृष्टि और संहार की दोनों प्रक्रियों का सम्मान करने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की क्षमता रखतीहैं। शिव की तरह उसके भी अनेकों रूप है। वह तप की साक्षात् प्रतिमा है। आदर्श पत्नी के रूप में भी उनकी प्रसिद्धि है। सभी मनोवांछित वर प्राप्त करने के लिए गौरी की उपासना की जाती है। जहाँ पार्वती के रूप में वह नारी के भौतिक रूप का प्रदर्शन करती है, वही दुर्गा के रूप में, योद्धा के रूप में शक्तिशाली आसुरी संगठनों को विनष्ट करती है। जिस तरह शिव मंगलकारी और रौद्र दोनों रूप धारण करते हैं, उसी तरह दुर्गा के भी दोनों रूप हैं। हरिवंश पुराण के के अनुसार वह अन्धकार और प्रकाश दोनों हैं। मधुर और भयंकर दोनों रूप उसने धारण किये हैं। तभी तो शिव और शक्ति की एकता स्थापित हो सकी है, क्योंकि दोनों के गुण और क्रियायें एक जैसे हैं।

विश्व नारी और विश्व पुरुष का यह मिलन सदा से अमर रहा है। यह सृष्टि की स्वाभाविक प्रक्रिया है। युग-युगान्तर से भारतीय कल्पना और साहित्य इस तथ्य से प्रभावित है कि पुरुष और शक्ति का मिलन सृष्टि के लिए मंगलकारी है।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामाया में अभेद है। जिस तरह अग्नि में उसकी दाहिका शक्ति का निवास रहता है, उसी तरह ब्रह्मशक्ति रहती है। जैसे शिव शक्ति के अभाव में शव हो जाते हैं उसी तरह ज्ञान के विना ब्रह्म अज्ञानी, क्रिया शक्ति के विना अकर्मण्य और आनन्द के विना निरानन्द हो जाएगा। अतः शक्ति और ब्रह्म में एकरूपता और अनन्यता है। शक्ति के विना ब्रह्म क्रियाहीन हो जाता है, तो पुरुष के बिना शक्ति का भी अस्तित्व नहीं है।

श्री माधव पुण्डरीक पण्डित ने इस सिद्धान्त को अपने शब्दों में यों व्यक्त किया है--

पुरुष और शक्ति दो अलग और भिन्न सत्ताएं नहीं हैं, बल्कि अभिव्यक्ति के समय में दिव्य सत्ता की दो स्थितियाँ हैं।

इनमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उच्च सत्य के स्तर पर सत्ता की एकता है। दिव्य सत्ता स्वामी है, जो उत्पादन का कारण और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिपति है। उसकी चेतन शक्ति, सर्वोच्च शक्ति वह कार्यवाहिका हैं, जो निज में सृष्टि के उद्देश्य के मूल सत्य को धारण किये अपनी इच्छा को सफल करती है वही अभिव्यक्ति कारिणी है। उसके बिना पुरुष अव्यक्त है। पुरुष के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं है।

एक मूल सत्ता ही अनेकानेक भिन्नताओं और रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करती है। शक्ति और पुरुष के इस सम्बन्ध के चारों ओर समस्त लीला चलती है। शक्ति के द्वारा पुरुष में जो कुछ भी अवस्थित है,वह बहिर्भूत होता और यथार्थ बनाया जाता है। अत:यह सप्तस्तरीय सृष्टि दिव्य पुरुषमें से दिव्य शक्ति के द्वारा आविर्भूत हुई है। वह सृष्टि उत्पत्ति के सत्य को अपनी लीला में धारण करती हैं, वह पुरुषके संकल्प के साथ उसकी अभिव्यक्ति को रूपातंरित करती है, वह सृष्टि के प्रत्येक स्तर पर तथा सृष्टि की प्रत्येक इकाई में कार्यशील है।

शिव और शक्ति में ऐक्य, अद्वैत और अभेद है,इनको अलग करना सम्भव नहीं है। शक्ति उपासना का दार्शनिक आधार वह अद्वैत बाद ही है।

तन्त्र शक्ति का तात्विक विवेचन

शास्त्रों की शक्ति की महिमा--

शास्त्रों में शक्ति की महत्ता पर काफी प्रकाश डाला गया है। एक तांत्रिक श्री उमानन्दनाथ ने पराशक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है--
पराशक्ति वह शक्ति है, उसके लिए संसार का कोई भी भाग अदृष्ट नहीं है कोई ऐसा नरेश नहीं, जो उनके नियन्त्रण में न हो, कोई ऐसा शास्त्र नहीं जो उसके ज्ञान में न हो।

योगिनी-तन्त्र में कहा है--

कारणवस्थयापन्ना सदाहं धातृरूपिणी ।
नाकार्यं मे हि यत किंचित्पदाह ह्यक्षरः परः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कार्यभाव समापन्ना सदाप्रकृतिरूपिणी ।
सदा ब्रह्मादयः सर्वे सर्वेऽप्याविर्भन्ति हि ॥

अर्थात्-कारणावस्था को प्राप्त होकर मैं सदा ब्रह्मा-रूप में रहती हूँ। यह सब कुछ दृष्टिगोचर होने वाला मेरा ही कार्य है । मैं सदैव ही अक्षररूपिणी परा-शक्ति हूँ। कार्यावस्थापन्न होकर मैं प्रकृति-रूपिणी हो जाती हूँ, उसी समय से ब्रह्मादि देव तथा अन्य सभी उत्पन्न होते हैं ।

आराधना करने के लाभों की चर्चा करते हुए दुर्गा सप्तशतीमें कहा गया है--

आराधिता नैव नृणां योग स्वर्गापवर्गदा ।

अर्थात्-उपासना करने पर यह साधकों को योग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती है ।

शिव शक्ति के विना शव बन जाते हैं । इसे वह स्वीकार करते है-

ईश्वरोऽहं महादेवि ! केवलं शक्ति योगतः ।
शक्ति विना महेशानि ! सदाऽहं शवरूपकः ॥
शक्तियुक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं सर्वकामदः ।

अथात् हे महादेवि पार्वती ! केवल शक्ति के योग से ही मैं ईश्वर हूँ । शक्ति के अभावमें मैं शव-रूप हूँ जब शक्ति से मिलता हूँ तभी सर्व कामप्रद कल्याणकारी शिव बनता हूँ ।

महर्षि आत्रेय ने अपनी संहिता में शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन प्रकार किया है--

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषण स्त्रीष्वत्यप्रतिष्ठितम् ।
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीञ्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

--चरक संहिता, चिकित्सा स्थान अ० २

प्रीति विशेष प्रकार से स्त्रियों में ही रहती है । सन्तान की जननी भी वही होती है । धर्म उनमें रहता है, इसलिये उन्हें धर्मपत्नी कहतेहैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ उनमें रहता है,इसलिए उनमें लक्ष्मी का निवास मानते हैं। वे शक्ति रूप हैं, उनमें सारा विश्व प्रतिष्ठित है ।

ब्रह्मसूत्र में कहा है--सर्वोपेता तद्दर्शनात् (द्वितीय अध्याय, प्रथम पाद) वह पराशक्ति सर्वसामर्थ्य से युक्त है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है ।"

ब्रह्मसूत्र शंकर-भाष्य (१।४३) में कहा है--

न हि तया बिना परमेश्वरस्य स्त्रष्टृव्यं सिध्यति ।
शक्ति रहितस्य यस्य प्रवृत्यनुपपतेः ।।

'उसके बिना ईश्वर सृष्टि का उत्पादन नहीं कर सकते क्योंकि वह शक्ति के बिना क्रियाशील नहीं हो सकते ।'

भगवान् शंकराचार्य ने भी कहा है--

अव्यवतनाम्नी परमेशशक्ति रनादिविद्या त्रिगुणात्मिका परा
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिद प्रसूयते ।।

ईश्वर की अव्यक्त नाम वाली शक्ति जिसने इस समस्त जगत् की सृष्टि की है, अनादि, अविद्या त्रिगुणात्मिका और जगत् रूपी कार्यके परे है। कार्यरूपी जगत् को देखकर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होतीहै।

शक्ति के विभिन्न प्रकार--

शक्ति एक व्यापक तत्व है । विश्व की हर वस्तु में चाहें वह जड़ हो या चेतन वह देखा जा सकता है। जीवन के हर क्षेत्र में इसी के चमत्कार दिखाई देते हैं । शारीरिक शक्ति की कौन उपेक्षा कर सकता है? जगत् के सभी कार्य इसी के माध्यम से होते हैं। इसी की कमी का नाम रोग है । जहाँ यह सतेज रहती है, वहाँ रोग के कीटाणु आक्रमण में एक महत्वपूर्ण अङ्ग है । इसकी निर्बलता से ही चिन्ताएँ, शोक पाप, ताप सर उठाते हैं । बौद्धिक शक्ति का विकास मानव-जीवन का एक महत्वपूर्ण स्थान है । आज विज्ञान के क्षेत्र में जितने आश्चर्यजनक चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे हैं वह इसी महाशक्ति का परिणाम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। शाश्वत सुख-शांति के लिए आत्म-बल की अपेक्षा रहती है। सबसे ऊँचे शिखर पर स्थित परमात्म बल है, जिसके स्पर्श मात्र से हर क्षेत्र में शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। इस शक्ति का लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब हमारी श्रद्धा शक्ति विकसित हो चुकी हो। यह परमात्मा के आवाहन की कुञ्जी है।

समाज-कल्याण के लिये, सामाजिक कुरीतियों दोषों और कुप्रवृत्तियों के शमनके लिये संघ-शक्ति की अपेक्षा रहती है। राष्ट्रीय उन्नति के लिए भी उसी को विकसित करना होता है। विश्वशान्ति की नींव में भी यही काम करती है। भौतिक क्षेत्रों में तो इसको प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। विद्युत का उदाहरण लें--इस शक्ति से हजारों लाखों कल-कारखाने चल रहे हैं, जिनमें मानव-हित की अनेकों वस्तुओं का निर्माण होता है। यह सैकड़ों और हजारों व्यक्तियों के श्रम को बचाती है। शक्ति के यह भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। तन्त्र के अनुसार शक्ति के विभिन्न प्रकार इस तरह वर्णित किये गये हैं-

शक्ति जब गौरी या लक्ष्मी का रूप धारण करती है तो वह परमात्मा की सभी कामनाओं को पूरा करने की क्षमता वाली होती हैं। इसलिये इसे एक तरह की शक्ति कहते हैं। इच्छा और माया के भेद-यह दो प्रकार की हो जाती है। दोनों प्रकार की शक्तियों में उत्पत्ति और विनाश परा और अपरा का भी उदाहरण आता है।

तीन प्रकार की शक्तियोंमें यह नाम आते हैं-१. सात्विक राजसिक, तामसिक २. ज्ञान, इच्छा, क्रिया ३. आदित्य, अग्नि, वायु ४. ब्रह्मा, विष्णु, महेश ५. महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली, ६. लक्ष्मी सरस्वती, गायत्री ७. सफेद, लाल, काला, वर्ण।

१३ वर्ष से २५ वर्ष की युवतियों में जो प्रसूता न हुई हों, उनमें रूप, यौवन, शील, सौभाग्य चार प्रकार के भेद होते हैं।

पांच प्रकार की शक्तियों में राधा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और सावित्री का नाम आता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भौतिक शक्तियों में यह छह प्रकार की है-ताप, तड़ित, चुम्बक, मध्याकर्षण आलोक और रासायनिक। तन्त्र में षट्शक्ति के नाम इस प्रकार आते हैं-पराशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, कुण्डलिनी और मातृका शक्ति।

पृथ्वी, आकाश, भूचक्र-भ्रमण, दिशाएँ, जगदाधार, वायु और आकाश ये सात प्रकार की शक्ति हुई।

अष्ट-शक्तियाँ भी प्रसिद्ध ही हैं-ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणी, कौमारी, नारसिंही, बारही और वैष्णवी यह आठ प्रकार की शक्तियां हुईं। मातृकाएँ १६ प्रकार की होती हैं। पीठ ५१ माने जाते हैं। ६४ योगिनियाँ प्रसिद्ध हैं। १०० रूपों में शक्ति का वर्णन किया गया है। प्राणी व पदार्थ-भेद से तो यह 'अगणित' की संज्ञा को प्राप्त हो जाती है।

अर्थ--

परब्रह्म तत्व को शक्ति की संज्ञा दी जाती है-'सर्व खल्विदं ब्रह्म', 'एकमें वाद्वितीय ब्रह्म' आदि श्रुति-वाक्यों में जो एकही चित्तत्व 'ब्रह्म' नाम से वर्णित किया गया है, उसी को चिदानन्दमयी शक्ति कहते हैं।

शक्ति को दूसरे शब्दों में पावर (Power) एनर्जी (Energy) सामर्थ्य और योग्यता कहते हैं। संसार की किसी भी वस्तु को उसके गुण धर्म और विशेषता के कारण सम्मानित किया जाय या उसकी आवश्यकता को अनुभव किया जाय, उसके मूल में शक्ति की विद्यमानता है।

व्यावहारिक रूप में शक्ति का अर्थ बल ही है। परमार्थ में अर्थ 'उपाधि' किया जाता है। 'उप का अर्थ है पास में और आ+धि का अर्थ है रखना। इसका अभिप्राय यह है कि वस्तुओंके गुण, कर्म स्वभाव में जिस गुण के कारण परिवर्तन होता है, वही शक्ति कहलाती हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवी भागवत (६।२।१०) में शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है--

ऐश्वर्यवचनः शश्चक्तिः पराक्रम एव च ।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता ।

'श' नाम ऐश्वर्य का है और क्ति नाम पुरुषार्थ का है। ऐश्वर्य और पुरुषार्थ स्वरूप व दोनों को देने वाली शक्ति कहलाती है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार-

समृद्धिबुद्धिसम्पत्तियशसां वचनो भगः ।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥

समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति और यश--इन चार अर्थों को प्रकट करने वाला 'भग' यह शब्द होता है। इससे युक्ति-शक्ति भगवती है और वह स्वयं सदा भगरूप वाली है।

अमरकोश में शक्ति के यह अर्थ वताये गये है-

कास्त्र सामर्थ्ययो शक्तिः ।
शक्तिः पराक्रमः प्राणः ।
षड्गुणाश्शक्तयस्तिस्त्रः ।

इससे उपरोक्त अर्थों की पुष्टि होती है।

'शक्लृशक्तौ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर शक्ति शब्द बनता है। जिस पदार्थ में जो गुण होता है अथवा ये उसमें कार्यसे अलग नहीं किया जा सकता, जैसे-अग्नि से उसकी दाह शक्ति को अलग नहीं कर सकते। इसी को शक्ति कहते हैं।

मार्कण्डेय-पुराण में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

यच्च किंचिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य वा शक्तिः सा त्वम् .... ॥

सद् और असद् दोनों तरह की वस्तुओं में जो सत्ता 'तत्तद्वस्तुता' हैं, वही शक्ति है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया जाता है–ब्रह्म का आदि-संकल्प एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् एक हूँ, वहुत हो जाऊँ–यही आद्या-शक्ति है।

जो तत्व आदिभूत और प्रकाश-रूप है, वही शक्ति है। आदिभूत से अभिप्राय यह है कि वह सबकी आदि है, उसका कोई आदि नहीं है। मार्कण्डेय-पुराण में कहा भी है–

समस्त दृश्य प्रपंचों को व्याप्त करके स्थिति, व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों वाली त्रिगुणों से युक्त परमेश्वरी, महालक्ष्मी सबकी आदि-भूता है।

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥

प्रकाश रूपा का यह अर्थ है कि वह सबको प्रकाशित करती है वह किसी से प्रकाशित नहीं होती। कहा भी है–

प्रकाशरूपा प्रथमे प्रयाणे अमृतरूपिणी अशुद्ध।
सा एव सर्वाराध्या स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुरिति ॥

अर्थात् 'श्रुति में सर्वाराध्या' पद यह दिखलाया गया है कि सभी देवता और असुरों द्वारा वह आराधना करने योग्य है।

व्याख्या--

स्वामी मिवानन्द ने 'शक्ति' की व्याख्या इस प्रकार से की है--

शक्ति का आशय उम सत्ता से है: जो समग्र सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल है, वास्तव में जैसा सामान्यत: माना जा रहा है, देवी-पूजा यह कोई सम्प्रदाय अथवा किसी तरह के तांत्रिक-चक्र का गुप्त भेद नहीं है, अथवा जैसा जन-साधारण का विश्वास है। यह देवी विष्णु या शिव की अर्द्धाङ्गिनी के रूपमें भी नहीं है। देवी अथवा शक्ति का उल्लेख हम सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान चराचर जगत् की उत्पत्तिके कारण रूप में ही करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जगत की उत्पत्तिके मूल कारण अक्षर-ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप यह 'शक्ति' ही है, परमात्मा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी दिखाई पड़ने वाली शक्ति के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति करता है, शक्ति के द्वारा ही संरक्षण, संहार और इसके द्वारा ही लय करता है। शक्तिमान एक ही है। सत्ता और सत्ता के मूल को पृथक् नहीं किया जा सकता है।

इसीलिए शक्ति-पूजा का अर्थ प्रभु की महिमा और प्रभुत्व तथा सर्वोपरि होने की पूजा है। वह सर्वशक्तिमान की आनन्दमय सेवा है। यह बड़े खेद की बात है कि कितने ही लोग देवी को 'खून की प्यासी हिन्दू देवी' के नाम से याद करते हैं। देवी केवल हिन्दुओं की जायदाद नहीं है–'देवी' किसी एक विशेष धर्म से सम्बन्धित भी नहीं हैं। इतना ही नहीं,देवी और देव की भिन्नता लिंग-भेद पर भी आधारित नहीं है, हमको यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि देव की प्रत्यक्ष शक्ति ही देवी कही जाती है। देवी, शक्ति और दूसरे कितने ही नाम और उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप तो मनुष्य के संकुचित ज्ञान के परिणामस्वरूप निर्दिष्ट किये गये हैं। उस शक्ति की कोई व्याख्या अन्तिम नहीं कही जा सकती, मूल शक्ति तो मनुष्य की शक्ति से परे (अगम्य) है।

सच्ची बात तो यह है कि समग्र जगत् किसी न किसी प्रकार से ही उपासक है, क्योंकि संसार में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है जो किसी न किसी तरह की शक्ति की अभिलाषा न रखता हो। भौतिक शास्त्र और विज्ञान के उपासकों ने भी यही सिद्ध किया है कि जगत् में सब कुछ अनन्त क्रियात्मक है। इस क्रिया शक्ति को प्रतिक्षण स्थिर रखने वाली देवी 'शक्ति' वाली एक स्वरूप है।

वैज्ञानिक अर्थ--

शक्ति का वैज्ञानिक अर्थ भी है। विज्ञान, परमाणु की परिभाषा इस प्रकार करता है कि पदार्थ को: जिस सीमा के आगे विभाजित न किया जा सके, उसे परमाणु कहते हैं। शक्तिवाद का सिद्धान्त एक पग आगे जाकर कहता है कि परमाणु विभिन्न प्रकार की शक्तियों का केन्द्र हैं। जिस तरह सूर्यके चारों ओर उसके ग्रह-उपग्रह चक्कर काटते रहते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं और वह एक सौर-मण्डल कहलाता है, उसी तरह परमाणु भी शक्तियों का केन्द्र है। साधारणत: यह धारणा है कि परमाणु का धर्म शक्ति है– यह ठीक नहीं है न ही प्रकृति, शक्ति से परे कोई अलग पदार्थ है। यह दोनों एक हैं। शक्ति से भिन्न विश्व में कोई है ही नहीं।

तान्त्रिक दृष्टि में शिव को प्रकाश और विमर्श को ही शक्ति कहते हैं।

शक्ति का पर्याय प्रकृति–

गीता में शक्ति को माया (४।६), योग (६।५) और प्रकृति आदि नामों से अभिहित किया गया है।

भगवान की स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति जीवभूता, पराप्रकृति आदि शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

प्रकृति इसका पर्यायवाची शब्द है, उसका अर्थ करते हुए देवी भागवत ६।१।५.८ में कहा गया है—'प्र' का अभिप्राय प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) और कृति का अर्थ है सृष्टि। अत: जगत् की उत्पत्ति में उत्कृष्ट को प्रकृति कहा है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण २।१।५ इसी प्रकार प्रकृति शब्द के अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या प्रकृतिः सा प्र ीतिता॥

'प्र' का अर्थ प्रकृष्ट है और 'कृति' सृष्टिवाचक है। सृष्टि-कार्य में जिसकी प्रकृष्टता (उत्कृष्टता) है, उस देवी को प्रकृति कहा जाता है।'

यह प्रकृति का तटस्थ लक्षण है। 'प्र' शब्द उत्कृष्ट सत्वगुणमें वर्तता है, 'कृ' शब्द मध्यम रजोगुण में और 'ति' शब्द तमोगुण में वर्तता है। यह प्रकृति का स्वरूप लक्षण है, जैसा कि सांख्य-शास्त्र में कहा है—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।

इन तीन गुणों से ही तीन देवताओं की—सत्वगुण से विष्णु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की, रजोगुण से ब्रह्मा की और तमोगुण से रुद्र की उत्पत्ति करके भगवती जगत का पालन, उत्पत्ति और लय करती हैं।

प्राधानिक रहस्य में लिखा है—

स्वधया सह सम्भूय विरञ्चोऽण्डमजीजनत् ।
पुंपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
सज्जहार जगत् सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ।।

'ब्रह्मा विष्णु और महेश अपने अर्द्धाङ्गीभूत विविध शक्ति—सरस्वती, लक्ष्मी गौरी के सहयोग से जगत् का जनन, पालन और लय करते हैं।'

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी ।
सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ।।

'प्रकृति ने कहा—मैं ईशानी प्रकृति हूँ जो कि सबकी स्वामिनी और सर्वरूपिणी है। समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हूँ और मेरे द्वारा ही यह सारा जगत् शक्ति वाला है।'

इसी पुराण में एक और स्थान पर प्रकृति को जगज्जननी कहा गया है—

जगन्माता च प्रकृतिः ।

इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतेश्च बसुन्धरा ।
आधाररूपा सर्वेषां सर्वशस्य प्रसूतिका ।।
रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकरालया ।
प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा ।।
सर्वजीवोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी ।
यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम् ।।

अर्थात् 'यह बसुन्धरा प्रकृति की प्रधान अंश स्वरूप वाली है। सबकी आधार रूप वाली है तथा सम्पूर्ण शास्त्रों को सम्पन्न करती है। रत्नों की खान और अपने मध्य में बहुत से रत्न रखने वाली। सभी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार के रत्नों की खान का घर है इसकी सब प्रजा और उसके स्वामियों द्वारा सदा वन्दना एवम् अर्चना की गई है। यह सभी प्राणियों की उपजीव्य रूप वाली होती है। इसके विना सम्पूर्ण जगत् निराधार है, चाहे वह चर हो या अचर (स्थावर) हो।

गीता में कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

अर्थात् मुझ अध्यक्ष के द्वारा ही वह प्रकृति इस चराचर जगत को प्रसूत किया करती है।'

गीता (९।८) में कहा गया है—

प्रकृति स्वामवष्टम्य विसृजामि पुनः पुनः।

अर्थात्—'मैं अपनी प्रकृति को अवष्टभ्य करके ही बार-बार विसृष्टि किया करता हूँ।'

गीता (४।६) में इसे माया कहा है—

प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।

'अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ।'

गीता (९।५) में इसे 'योग' कहा है—

पश्य मे योगमैश्वरम्।

'देखो' यह कैसी मेरी ईश्वरीय करनी या योंग-सामर्थ्य है।'

प्रकृति शब्द के तीन अक्षर प्र. कृ. ति. क्रमशः सत्, रज और तम के प्रतीक हैं। देवी-भागवत में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया हैं कि 'प्र' सत्वगुण का, 'कृ' रजोगुण का और 'ति' तमोगुण का द्योतक है। यह सत्, रज और तम क्रमशः ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक हैं।

प्रकृति के यह तीन गुण 'परमाशक्ति' के तीन देवता माने गये हैं—

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापकाऽविकृता शिवा।
योगगम्याऽखिलाधारा तुराया याच संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महालक्ष्मी सरस्वती महा कालीति च स्त्रियः ॥
तासां तिसृणां शक्तीनां देहांगीकारलक्षणात् ।

'वह परमा शक्ति निर्गुण, सदा नित्य, व्यापक, विकार रहित, योग-गम्य और सारे विश्व का आधार है । व्यक्त होने पर वह सत, रज तम तीन तरह की हो जाती है, जिन्हें महालक्ष्मी, महासरस्वती और महा-काली तीन स्त्रीवाचक नाम दिये गये । इसके तीन पुरुष शरीरधारी देवता हैं-विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र जो सात्विक, राजसिक और तामसिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।'

इस परमा शक्ति को परमात्मा की मूल प्रकृति कहा जाता है । पर-मात्मा सर्वशक्तिमान, नियामक, नित्य, सनातन, निराकार, निर्विकार, निर्गुण, अचिन्त्य, अव्यक्त व अचल है । परमात्मा की मूल प्रकृति परमा शक्ति में भी इन गुणों का होना स्वाभाविक है । अन्तर केवल इतना है कि परमात्मा विकार रहित है, तो शक्ति विकारों की जननी है । शक्ति स्वयं सत्य नित्य है, परन्तु अनित्य पदार्थों की सृष्टि करती है ।

प्रपञ्चसार-तन्त्र में प्रकृति का बर्णन इस प्रकार किया गया है—

प्रकृतिः निश्चला परावाग्रूपिणी परप्रणवात्मका कुण्डलिनी शक्तिः ।

अर्थात् 'प्रकृति अटल, परा-वाणी के रूप वाली पर प्रणव के स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है ।'

अत्र मच्छब्देन स्वसम्वेद्यस्वरूपा संयुक्ता परा प्रकृतिः गृह्यते ।

अर्थात् 'यहाँ मच्छब्देन से स्व सवेद्य स्वरूप वाली है अर्थात् स्वयं ही उसके स्वरूप का ज्ञान किया जा सकता है । वह परा-प्रकृति कही हुई ग्रहण की जाती है ।'

प्रकृतिरिहोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

अर्थात् 'यहाँ पर प्रकृति उपलक्षित होने वाली परा कही कई है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृति की सांख्य सम्मत व्याख्या :-

सांख्य शास्त्र के अनुसार जगत् के सब पदार्थों का जो मूल द्रव्य है, उसे प्रकृति कहते हैं। सत, रज, तम—यह तीन गुण मूल द्रव्य में आरम्भ से ही रहा करते हैं, इसलिये इन तीन गुणों को ही प्रकृति कहा गया है।

प्रकृति को ही 'परमाशक्ति' कहा गया है—

प्रकृतौ विद्यमानायां विकृतिर्न वलीयसी।
प्रकृतिः परमा शक्तिर्विकृतिबिम्बता ॥

'जब तक प्रकृति विद्यमान रहती है, तब तक विकृति शक्तिशाली नहीं हो सकती। प्रकृति ही परमा शक्ति है और विकृति ही उसकी छाया।'

स च ब्रह्यस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता ॥

और वह ब्रह्म के स्वरूप वाली, नित्य और सनातनी (सदा से चली आने वाली) है। जिस प्रकार आत्मा है, वैसे ही शक्ति है, जो अग्नि में दाह करने वाली जिस प्रकार स्थित रहा करती है।

सांख्य के अनुसार सत्-रज-तम—मूल प्रकृति के तीन गुण हैं, जो कभी साम्यावस्था में रहते हैं और कभी विषम अवस्था में। जब यह गुण साम्यावस्था में होते हैं, उस समय को प्रलय कहा जाता हैं। मूल प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त और कोई नहीं होता। फिर जब प्रकृति में संक्षोभ होता है, तो तीनों गुणों में न्यूनाधिकता होने लगती है और सर्वप्रथम सत्वगुण की प्रधानता से महत्तत्व अथवा बुद्धि-तत्व की उत्पत्ति होती है। जब अहंकार में तमोगुण की प्रबलता होने लगती है, तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन सूक्ष्म 'तन्मात्राओं' की उत्पत्ति होती है। जब तम की अधिकता बढ़ती है, तब इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूतों अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पाँच महाभूतों के मिलने और तीनों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुणों की न्यूनाधिकता के फलस्वरूप बाद में भाँति-भाँति की स्थावर-जङ्गम सृष्टि प्रकट होती है—

प्रकृति के विभिन्न रूप—

प्रकृति दो प्रकार की होती है—परा और अपरा। इन दोनों से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं–

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

—गीता ७।६

प्रकृति के आठ प्रकार बताये गये हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ।

भूमिरापोऽनलो वायुः ख मनोबुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे निम्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

——गीता ७।४

इसे अपरा प्रकृति कहते हैं और यह गीता (७।५) के अनुसार निम्न श्रेणी की है। परा उच्च श्रेणी की मानी गई है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतो महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

परा प्रकृति—

परा प्रकृति के सम्बन्ध में 'शारदा-तिलक-तन्त्र' में कहा है——

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशद्वर्णैः क्रमात् ।
व्याप्तं येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूपं जगत् ॥
शब्दब्रह्म यदूचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतम् ।
तद्वोऽव्यादनिशं शशाङ्कसदन वाचामधीश महः ॥

नित्य ही आनन्दःस्वरूप से युक्त निरन्तर गलत् पचास वर्ष वाला क्रम से है, जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण चर और अचर शब्दार्थ रूप वाला जगत् व्याप्त है। सुकृतीगण, जिसको शब्द-ब्रह्म कहते हैं, यह चैतन्य अन्तर्गत है, वह वाणियों का अधीश चन्द्र के सदन वाला मह अर्थात् तेज आपकी सर्वदा रक्षा करे।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परा का स्पष्टीकरण 'मुण्डकोपनिषद्' में किया गया है। महर्षि अङ्गिरा के पास शौनक मुनि ने जाकर प्रश्न किया--भगवान्। किसके जान लेने पर यह सब जाना हुआ होता है? इतना ही मुझे बताइये' (१।१।३)। महर्षि अङ्गिरा ने उनसे कहाकि 'ब्रह्मज्ञानी दो विद्याओं को ही जानने योग्य बताते हैं इनमें एक परा और दूसरी अपरा कही गई है (१।१।४)। अगले श्लोक में परा की व्याख्या की है--

परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (१।१।५)

जिसके द्वारा अविनाशी परमेश्वर तत्पूर्वक जाना जाता है, उसे परा-विद्या कहते हैं।'

इस पर श्री शंकराचार्य की व्याख्या इस प्रकार है-

पराविद्यागम्यम् असाध्यसाधनलक्षम् अप्राणमनोगोचरम् अतींन्द्रियाविषयं शिव शान्तम् अविकृतमक्षरं सत्यं पुरुषाख्यम्।

'परा विद्या के द्वारा जानने के योग्य असाध्य साधन के स्वरूप वाला, प्राण तथा मन गोचन (प्रत्यक्ष) न होने वाला, इन्द्रियों के द्वारा न जाना जाने वाला तथा इन्द्रियों का अविषय, शिव-कल्याण तथा मङ्गल स्वरूप, परम शांत, विकार से रहित, अक्षर (अविनाशी), सत्य और पुरुष नाम वाला है।'

श्री ज्ञानेश्वर ने अपनी 'भावार्थ दीपिका' में कहा की हम लोगों की दृष्टि में यह श्रेष्ठ भक्ति है, शैवों की दृष्टि में 'शक्ति' और ज्ञानियों की दृष्टि में स्वसविती है।

व्यास ने इसे 'सनातन धर्म' कहा है—

सत्यं दान तपः शौचं सन्तोषी ही क्षमाजवम्।
ज्ञानं शमो दया ध्यानमेषो धर्मः सनातनः॥

'सत्य, दान तज, शौच, सन्तोष, क्षमा, ऋजुता (सरलता), ज्ञान, शम, दया और ध्यान—यही सनातन धर्म का स्वरूप है।'

गीता ७।६ में परा को जगत् को धारण करने वाली उच्च

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रेणी की जीवनस्वरूपी प्रकृति कहा है । गीता १४।२७ में इसे 'शाश्वत धर्म की संज्ञा दी गई । गीता १५।३ में इसे दैवी सम्पत्ति' घोषित किया गया है । गीता के अनुसार—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।

यह ज्ञान सब गुह्यों में राजा अर्थात् श्रेष्ठ है । यह समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ, पवित्र उत्तम और प्रत्यक्ष वोध देने वाला है । यह आचरण करने में सुखदायक, अव्यय और धर्म्य है ।'

अपरा प्रकृति—

गीता ७।४ में अपरा प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

भूमिरापोऽनिलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—यह पाँच महाभूत मन, बुद्धि और अहंकार—इन आठ प्रकारों में मेरी प्रकृति विभाजित है ।' भगवान ने इसे अपरा कहकर निम्न श्रेणी की कहा है । इससे भिन्न को उन्होंने परा कहा है—

अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा-कल्पो-व्याकरण निरुक्तं-छन्दो ज्योतिषमिति ।

अपरा विद्या में चारों वेद, शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष सभी आते हैं ।'

मुण्डकोपनिषत् (१।१।५) में अपरा की परिभाषा करते हुए कहा है—

अपराविद्यागोचरं संसार-व्याकृतविषयं साध्यसाधनलक्षणं अनित्यम् ।

'यह संसार जो अपराविद्या के द्वारा जाना जाता है—व्याकृत विषयों वाला हैं और साध्य एवं साधन के स्वरूप वाला तथा अनित्य है। श्री शंकराचार्य जी ने इस श्लोक की इसी प्रकार व्याख्या की है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सांख्यकार के अनुसार अपरा की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है—

प्रकृति के आठ विभाग माने गये हैं और उनमें से सोलह विकारों की (विकृति) उत्पत्ति कही गई है। आठ प्रकृतियाँ ये हैं—

१. मूल प्रकृति, २. महतत्व (बुद्धि), ३. अहंकार, ४. शब्दब्द, ५. स्पर्श, ६. रूप, ७. रस, ८. गन्ध। शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती है। सांख्य प्रकृति उसको कहते हैं, जिससे आगे चलकर कोई अन्य तत्व उत्पन्न हो। इसीलिए बुद्धि और अहंकार के साथ तन्मात्राओं को भी प्रकृति माना गया है, क्योंकि उनसे ही सोलह विकृतियों की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार हैं—

ज्ञानेन्द्रियाँ-श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण। पाँच कर्मेन्द्रियाँ—वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा, ग्यारहवाँ मन कहा गया है।

यह पाँच स्थूलभूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष हैं और इनसे आगे चलकर किसी अन्य तत्व की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए इन्हें विकृति कहा गया है। यह ग्यारह जिन सूक्ष्म तन्मात्राओं से उत्पन्न होती हैं, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है, तो सूक्ष्म और निर्मल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होता है। जब इन पाँचों के भी मूल उद्‌गम की खोज की जाती है तो अहंवृत्ति' का साक्षात्कार होता है। अहंकार से भी ऊपर उठ कर विचार करने से महत्तत्व अथवा 'अस्मितावृत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जव और किसी कारण का पता नहीं चलता, तो अनुमान द्वारा 'महतत्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है, जो कि अनादि है। इस प्रकार महर्षि कपिल ने जडतत्व के जो चौबीस विभाग बतलाए हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किए हैं। यह मूल प्रकृति ही तीन गुणों सत्, रज, तम् की न्यूनाधिकता के कारण जगत् के विभिन्न तत्वों नाम-रूपों में प्रकट होकर विश्व-रचना करती रहती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परा और अपरा के विभिन्न पर्याय–

इस परा और अपरा शक्ति को चिच्छक्ति और जड़ा भी कहा जाता है। 'चिच्छक्ति' का अजड़ा नाम भी है। गीता ११।१६ में इनकी 'अक्षर' और 'क्षर' संज्ञा भी दी गई है––

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

'इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं। नष्ट होने वाले भूतों को क्षर कहा जाता है और इनके मूल में निवास करने वाले अव्यय तत्व कूटस्थ को अक्षर।'

सांख्य दर्शन में अव्यक्त प्रकृति को अक्षर और प्रकृति से होने वाले पदार्थों को क्षर कहा है।

परमाशक्ति के इन दो अङ्गों को 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है। गीता १३।२५ में कहा है––

यावत्सञ्जायते किंचित्सत्व स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विधि भरर्षभः ॥

''हे भरत श्रेष्ठ! याद रखो, कि स्थावर या जंगम किसी भी वस्तु की रचना क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सहयोग से होती है।

क्षेत्र का अर्थ है––शरीर, और क्षेत्रज्ञ का अर्थ है आत्मा। तिलक की भाषा में, मानसिक और शारीरिक सब द्रव्यों और गुणों का प्राण-रूपी विशिष्ट चेतनायुक्त जो समुदाय है, उसी को क्षेत्र कहते हैं और उस शरीर का स्वामी क्षेत्रज्ञ है।

इस तरह से 'जड़ा' और 'अजड़ा' 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' 'क्षर' और 'अक्षर' 'अपरा' और 'परा' प्रकृति उस पराशक्ति के व्यक्त रूप हैं, जिससे सृष्टि की रचना हुई है। इससे स्पष्ट है कि यह शक्ति-तत्व चेतन-अचेतन दोनों हैं।

प्रकृति और माया–

सांख्य-शास्त्र की त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही गीता में माया कहा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इससे मोक्ष की आशा नहीं की जा सकती। भगवान् ने इस गुणात्मक और दिव्य माया को दुस्तर कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

—गीता ७।१४

अगले श्लोक में कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

—गीता ७।१५

माया ने जिनका ज्ञान नष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और 'दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि में पड़कर मेरी शरण में नहीं आते।'

१५ वें अध्याय में अश्वत्थ वृक्ष का उदाहरण देकर भगवान ने समझाया है कि उसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे हैं। इसे ब्रह्म-वृक्ष और संसार-वृक्ष भी कहा जाता है। 'अनुगीता' में इसे 'ब्रह्मारण्यब्रह्मवन' कहा गया है। वेदान्त दर्शन इसे 'भगवान की माया का पसारा' और सांख्य-दर्शन 'प्रकृत का विस्तार' कहता है। विष्णु सहस्रनाम में इसे 'वारुणी वृक्ष' कहा है। इसकी व्याख्या करते हुए भगवान कहते हैं—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥

—गीता १५।२

नीचे और ऊपर भी उसकी शाखाओं का विस्तार है कि जिनका सत, रज, तम तीन गुणों से पालन होता है और जिनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध रूपी विषयों के अंकुर फूटे हुए हैं। अन्त में कर्म का रूप पाने वाली उसकी जड़ नीचे मनुष्य लोक में बढ़ती गहरी चली गई है।'

इस गहरी जड़ों वाले अश्वत्थ वृक्ष को काटने का उपाय भी भगवान ने बताया है और वह है—अनासक्ति योग। इसी सुदृढ़

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तलवार से ही उस गहरी जड़ों वाले संसार-वृक्ष को काटने का परामर्श दिया है (५।३)।

शक्ति तत्व–

देवी भागवत में सावित्री के पूछने पर यमराज ने शक्ति-तत्व को समझाते हुए कहा—

वे भगवती सर्वात्मा सबका है, उन्हीं को सबका ईश्वर और कारणों का भी कारण समझो वही सबको आदि और सबका परिपालन करने वाली हैं। वे नित्यरूपी, नित्यानन्द, आकृति रहित, निरंकुश, निर्गुण, निरामय तथा आशंकारहित हैं। वे ही निर्लिप्त, सबकी सर्वसाक्षी सबकी आधार, परात्पर मायाविशिष्ट, मूलप्रकृति तथा सभी विकारों की उत्पत्ति करने वाली हैं परमात्मा ही प्रकृति से मिलकर 'प्रकृति' कहलाने लगते हैं। प्रकृति ही 'शक्ति' महामाया और सच्चिदानन्द नाम धारण करती है, वें रूपरहित होकर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के हेतु विभिन्न रूपों को धारण करती हैं।'

उन्होंने ही पूर्व समयमें गोपाल सुन्दरी (श्रीकृष्ण) का अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया था। भक्ति में तन्मय भक्तजन भगवान के इसी रूप का ध्यान करते हैं। सबके स्वामी श्रीकृष्ण के शासन को मानकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। उन्हीं के शासन में स्थित कालाग्नि रुद्र सर्वसंहारकारी होते हैं। उन्हीं के ज्ञान से युक्त होकर मृत्युञ्जय, शिव योगेश्वर, प्रभु, परमानन्दयुक्त एवं भक्ति-वैराग्य से युक्त होते हैं, उन्हीं के भय से पवन चलता है और सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते, मृत्यु प्राणियों को मारती अग्निदेव दग्ध करते और वरुण सबको शीतल करते हैं। प्राकृतिक प्रलय काल में देवतादि युक्त सम्पूर्ण चराचर विश्व, धाता और विधाता भी इन्हीं श्रीकृष्ण के नाभिकमल में लीन हो जाते हैं। क्षीरशायी एवं वैकुण्ठ में निवास करने वाले विष्णु इनके वाम-पार्श्व में विलीन होते हैं। ज्ञानाधीश शिवजी उनके ज्ञान में लीन होते हैं तथा सभी शक्तियाँ विष्णु-माया दुर्गा में समा जाती है। वे विष्णु-माया दुर्गा भी बुद्धि की अधिष्ठात्री होने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के कारण श्रीकृष्ण की वुद्धि में लीन हो जाती है। इस प्रकार परमात्मा पलक झंपने पर प्रलय और जाग्रत होने पर सृष्टि का पुनराविर्भाव होता है, वे भगवान श्रीकृष्ण प्रलय काल में अपनी प्रकृति से मिलकर हो जाते हैं। तव एक पराशक्ति ही शेष रहती है। ऐसे विशिष्ट गुणों वाली उन देवी का गुण-कीर्तन करने में कौन समर्थ हो सकता है।'

जिन पाठकों ने सृष्टि तत्व और देव-तत्व पर अच्छी तरह विचार नहीं किया है, उनको यह वर्णन शायद कुछ अटपटा सा जान पड़े, पर इसका आशय यही है कि भगवान के स्वरूप को निराकर अथवा साकार मानकर कैसा भी वर्णन क्यों न किया जाय, चाहे उसका राधा-कृष्ण के रूप में शृङ्गारमय वर्णन किया जाय, चाहे शिव और उमा के रूप में वैराग्यमय, पर संसार और सत्य-धर्म का मूल सदा एक ही है और एक ही रहेगा। जव-जव सृष्टि होती है, वह अनेक नाम और रूपों में प्रकट हो जाता है, पर अन्त में फिर सव एक ही तत्व में समा जाता है। यदि उसे 'परा-शक्ति' या 'महाशक्ति' कहा है, तो ठीक ही है। उसके विष्णु शिव या कृष्ण आदि नाम साम्प्रदायिक दृष्टि से रख लिए गये हैं पर सबका मूल तात्पर्य एक ही है।

शक्ति का स्वरूप

देवी के स्वरूप का जो वर्णन देवी-भागवत' या अन्य पौराणिक अथवा तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में पाया जाता है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें कहीं तो उसका स्वरूप ऐसा वीभत्स जान पड़ता है कि उसे पढ़-कर एक सामान्य व्यक्ति भयभीत हो सकता है। एक जगह काली देवी का ध्यान करने के लिए उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

मेघांगी शशिशेखरां त्रिनयनां रक्तांबरं बिभ्रतीम्।
पाणिभ्यामभयं वरं च विकसितरक्तारविन्दस्थिताम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं मध्वीकमद्यं महा—
कालं वीक्ष्य प्रकाशितानन परामाद्यां भजे कालिकाम ।।

"जिसका वर्ण मेघ के समान श्यामल है, ललाट में चन्द्रलेखा प्रकाशमान है जिसके तीन नेत्र हैं, शरीर पर रक्त-धारण किये हैं, जिसके दोनों हाथों में वर और अभय है, जो खिले हुए लाल कमल के ऊपर खड़ी है, जिसके सम्मुख पुष्पों का मधुर रस (मद्य) पीकर महा-काल नृत्य कर रहा है और उसकी ऐसी अवस्था देखकर देवी हँस रही है। उसी आदि शक्ति कालिका का मैं भजन करता हूँ।"

उनके इस स्वरूप की विशेष व्याख्या करते हुए 'काली ध्यान' में कहा गया है—

'कालिका देवी का मुख भयंकर और दर्शनीय है, चार भुजायें हैं, सिर के बाल छटे और बिखरे हुए हैं, मुण्ड-माला धारण करने से अत्यन्त शोभा पा रही है, उसके दोनों बांये हाथों में तुरन्त के काटे दो मस्तक हैं, वे ही उसके खड्ग रूप हैं। दाँयी तरफ के दो हाथों में अभय और वरदान हैं। यह देवी प्रचण्ड मेघ के समान श्याम रंग की ओर दिगम्बर है। कण्ठ में पहनी हुई मुण्ड-माला से गिरते हुए रक्त से उसका समस्त शरीर सना हुआ है। उसके मुख और दाढ़ अत्यन्त भयंकर जान पड़ते हैं और बड़े स्तन हैं। दोनों में नर-कपालों के आभूषण धारण करने से उसकी शोभा बढ़ गई है। उसका मुख हास्ययुक्त है और मुख से गिरती हुई रक्त धारा के कारण मुख-कमल कम्पायमान होता जान पड़ता है। उसकी ध्वनि घोर मेघगर्जना के समान महा-भयंकर है। वह श्मशान में निवास करने वाली है। उसके तीन नेत्र सूर्य के समान तेजस्वी, दाँत बड़े-बड़े और केश लम्बे हैं। वह शिवरूपी महादेव के हृदय पर पैर रखकर खड़ी है। महाकाल के साथ विलक्षण क्रीड़ा करने में वह निमग्न है। कामदेव के समान प्रफुल्लित और प्रसन्न मुख है। वह मनोरथ को सिद्ध करने वाली है। इस प्रकार देवी कालिका का ध्यान करना चाहिए।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल शब्दार्थ पर ध्यान देने से तो यह वर्णन बड़ा वीभत्स जान पड़ता है पर जब इसके गूढ़ अर्थ पर विचार किया जाता है, तो इसमें अनेक ज्ञान के तथ्य समाविष्ट प्रतीत होते हैं। एक 'देवी-भक्त' ने इस प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"जिस तरह श्वेत, पीत आदि सब रङ्ग काले रङ्ग में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार समस्त भूतों (पञ्च तत्वों) का विलीनीकरण प्रकृति में हो जाता है। इसीलिए योगीजनों की उपास्य, निर्गुण, निराकरण, परा शक्ति कृष्ण-वर्ण की वर्णन की गई है। अविनाशी काल स्वरूप, अव्यय महाकाली के ललाट में जो चन्द्रकला का चिन्ह बतलाया गया है, उसका आशय यही है कि वह चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपी नेत्रों से समस्त जगत का निरीक्षण कर रही है। इसीलिए उसके तीन-नेत्र कहे गये हैं। वह समस्त प्राणियों को ग्रास करती हैं और अपने कालरूपी दाँतों द्वारा चबा डालती है, इसी से उसके वस्त्र रक्त-वर्ण के कहे गये हैं। विपत्ति काल में वह सज्जनों की रक्षा भी करती है, इसके उसके हाथ में वर और अभय बतलाये गये हैं, वह देवी रजोगुण जनित विश्व में व्याप्त है, इसलिए लाल कमल पर विराजमान बतलाया है। वह कालरूप और समस्त जीवात्माओं की साक्षी-स्वरूप देवी मोहरूपी मदिरा पीकर नृत्य करने वाले काल को देखकर हँस रही है।"

यह देवी के प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन है। उसका वास्तविक, सूक्ष्म और दार्शनिक रूप तो कुछ और ही है।

शक्तिवाद के दार्शनिक साहित्य का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि इस उपासना का मूल स्वरूप अद्वैतवाद है। ब्रह्म का व्यक्त रूप शक्ति को माना जाता है, जिसकी क्रियाशीलता जड़-चेतन हर पदार्थ में परिलक्षित होती है, वह सर्वव्यापक है। यह सृष्टि की रचना, पालन-पोषण और लय सभी काम करती है। यह व्यक्त जगत उसकी इच्छा-शक्ति का परिणाम है। अणु-अणु में वह व्याप्त दृष्टिगोचर होता है। सच्चे शक्ति साधक को उसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं देता,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हर वस्तु में वह उसे ही निहारता है, बाह्य रूप तो सबके अलग-अलग हैं परन्तु मूल एक ही है। यही शक्तिवाद की भित्ति है।

अपने रूप को देवी ने स्वयं व्यक्त किया है। 'देवी-भागवत' का संक्षिप्त में उपदेश देते हुए भगवान् विष्णु से कहा—

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।

अर्थात्—"यह सब कुछ सनातन मैं ही हूँ। मुझसे अलग कोई तत्व नहीं है।"

अहमेवास पूर्वं तु नान्यकिंत्चिन्नगाधिप।

"हे नगाधिप। मैं ही सब कुछ हूँ, मेरा अखण्ड अनन्त ब्राह्मरूप अप्रतर्क्य एवं अनिर्देश्य है।

दुर्गा सप्तशती में वर्णन है कि जब शुम्भ-निशुम्भ से देवी का घोर युद्ध हुआ और निशुम्भ मारा गया, तो शुम्भ ने देवी से कहा—'तुम्हारा अहंकार व्यर्थ का है, तू दूसरों की शक्ति के सहारे पर युद्ध करती है।" इस पर देवी ने जो उत्तर दिया, उससे उसके मूल पर प्रकाश पड़ता है। देवी ने कहा—इस विश्व में दूसरा कोई नहीं है, मैं एक ही हूँ। यह जो अन्य देवियाँ दिखाई दे रही हैं, यह समस्त मेरी अनुभूतियाँ हैं, मुझमें इनका प्रवेश हो रहा है। यह कहना ही था कि ब्रह्माणी प्रमुखा देवियों का उनमें लय हो गया और वह अकेली ही रह गयी।"

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥
तत समस्तास्ता देव्या ब्रह्माणी प्रमुख लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥

देवी ने कहा—'मेरी विभूति के कारण यह मेरे विभिन्न रूप थे। अब मैंने इन सबका उपसहार कर लिया। अब मैं अकेले ही युद्ध करूँगी सावधान हो जा।'

देवी-भागवत में ब्रह्मा ने जब यह समाधान करना चाहा कि तुम स्त्री हो या पुरुष ? तो देवी ने उत्तर दिया कि 'मुझ में और पुरुष में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई अन्तर नहीं है, हम दोनों एक ही हैं। जो पुरुष है, वही मैं हूँ। जो मैं हूँ, वही पुरुष है। यह भेद केवल सृष्टि के समय ही होता है। महा-प्रलय के समय मेरी संज्ञा न पुरुष रहती है, न स्त्री, न नपुंसक। जो भेद बाह्य रूप से दिखाई देता है, वह माया के कारण होता है। ब्रह्म तो 'एकमेवाद्वितीयम्' है। सृष्टि के समय उसके दो रूप हो जाते हैं। फिर दीपक, दर्पण और छाया के उदाहरण देते हुए समझाया कि किस तरह यह एक होते हुए भी दो प्रतीत होते हैं। इसी तरह हमारी मूर्तियाँ भी माया के कारण अनेक प्रतीत होती हैं परन्तु वास्तव में वह एक ही हैं।

नवरत्नेश्वर में तो इस भेद को मिटा ही दिया और उपासकों को आदेश दिया कि—'देवी की स्त्री, पुरुष और ब्रह्म के रूप में भावना करनी चाहिए।''

पुराणों में सृष्टि, पालन और संहार की विभिन्न शक्तियों का वर्णन आता है तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उनका अधिष्ठाता माना गया है, परन्तु तन्त्र-ग्रन्थों में लिखा है कि इन तीनों देवताओं का जन्म भी शक्ति से हुआ है। 'शक्ति-संगम तन्त्र' में शिवोत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

तं विलोक्य महेशानि सृष्ट्युत्पादनकारणात्।
आदिनाथं मानसिक स्वभर्तारं प्रकल्पयेत्॥

हे महेशानि! यह (अपना रूप) देखकर उस शक्ति ने अपने पति आदि नाथ को विश्व के सृजन-कार्य के लिए अपने मन से उत्पन्न किया।

ऋग्वेद में देवी सूक्त (१०।१२५।७) में भी कहा गया है—

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्,
मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वो—
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥

'मैं जगत पिता (हिरण्य गर्भ) को प्रसव करती हूँ। इसके ऊपर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनन्दमय कोष और मध्यस्थ विज्ञानमय कोष में मेरा कारण–शरीर स्थित है। मैं सारे भवन में अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूँ। मैं अपने ऊँचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती हूँ।"

इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में कहा है कि जगत की क्रियाएँ की शक्ति से संचालित होती हैं—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।

"प्राण, धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि सब कर्म मेरी सहायता द्वारा ही किए जाते हैं।"

सीतोपनिषद् के अनुसार सीता विश्व का कल्याण करने वाली समस्त प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने वाली, सर्वलोकमयी, सबकी आश्रयभूता, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सभी प्राणियों की देहरूपता और विश्वरूपा महालक्ष्मी है।

'देव्यथर्वशीर्ष' में देवी ने कहा कि प्रकृति–पुरुषात्मक जगत का आविर्भाव मुझसे ही हुआ है और मैं ब्रह्मरूपिणी हूँ—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् न्यञ्चाशून्यञ्च।

और यह भी घोषणा की है कि मैं ही जगत् हूँ—

अहमखिलं जगत्।

भगवती ने माया से भी अपने अभेद का वर्णन किया है और कहा है कि माया शक्ति ही विश्व का निर्माण करती है। व्यवहारिक रूप से जो माया और अविद्या है, वह भी मुझसे अलग नहीं है—

देवी के विराट् रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

व्यवहारदृशायेयं विद्यामामेति विश्रुता।
तत्वदृष्ट्या तु वास्त्येव तत्वमेवास्ति केवलम्॥

'उस विराट् रूप का स्वर्ग–मस्तक, सूर्य और चन्द्र–नेत्र, दिशाएँ कान, वायु–प्राण, हृदय–जगत, टाँगें–पृथ्वी, व्योम–नाभि, नक्षत्र–छाती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महर्लोक–कण्ठ, जनलोक–मुख, देवता-बाहु, अश्विनीकुमार-नासिका मुख अग्नि, पलकें–दिन–रात, समुद्र–पेट, पर्वत–हड्डी, नदी–नाड़ी, वृक्ष-केश दोनों संध्यायें–वस्त्र, चन्द्रमा-मन, विज्ञान-शक्ति-विष्णु, अन्तःकरण-महेश शब्द–श्रवण, गन्ध–घ्राणेन्द्रिय, रस–रसना, मुख–अग्नि है।

देवी-भागवत के अनुसार जब देवी ने हिमालय को अपना विराट् रूप दिखाया, तो उसे देवता भी देख रहे थे, उस समय देवी के हजारों मस्तक, नेत्र और पैर थे। करोड़ों सूर्यों की तरह उसकी चमक थी।

बौद्धों में तन्त्र और शक्ति-उपासना का प्रवेश हिन्दू धर्म से ही हुआ है। अतः इसमें शक्ति के इस सिद्धांत का मिलना स्वाभाविक ही है। परिभाषिक शब्दों में कुछ भिन्नता आ गई है। शक्ति शब्द वहाँ 'शून्य' हो गया है। इसे ही वह समस्त सुखों का आधार मानते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी से होता है। जीवात्मा को वह बोधिसत्व कहते हैं। इसका अर्थ है—जिसका मन निःश्रेयस की उपलब्धि के लिए उत्कंठित है। बौद्ध-तन्त्रों में 'नैरातमा' को परम-शून्य का प्रतीक माना जाता है। 'बोधितत्व और नैरात्मा' जब आपस में मिलते हैं, तो एक-दूसरे में इस प्रकार एकाकार हो जाते हैं, जिस प्रकार नमक जल में धुलकर अपना अस्तित्व खो देता है और जल ही हो जाता है। 'तन्त्र-यान' नामक बौद्ध सम्प्रदाय में इस शून्य का प्रतीक 'निरात्मा देवी' है। उपासक जब अपने अहं को मिटाकर अपनी इष्ट देवी के विग्रह में लीन हो जाता है, तो वह अपने को ही 'देवी' मानने लगता है। देवी और उसमें कुछ अन्तर नहीं होता। इस प्रकार से बौद्ध-तन्त्रों ने भी शक्ति के इस सिद्धांत को उसी तरह स्वीकार किया है, जिस तरह वह हिन्दू-तन्त्रों में वर्णित है, भले ही उसके बाह्यरूप में कुछ परिवर्तन हो गया हो।

उच्चकोटि का भक्ति-साधक वहीं हैं, जो द्वैत से अद्वैत की ओर उन्मुक्त होता है और समस्त जड़-चेतन में अपने इष्ट के दर्शन करता है। वेद के अनुसार देवी स्वयं इस रूप का समर्थन करती है—"मैं ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब में व्याप्त रहती हुई भोजनादि का कारण व हेतु रूप हूँ। मेरे ही द्वारा सब चेष्टाएँ होती हैं। अन्तर्यामी रूप से सबमें विद्यमान मुझ चित्‌शक्ति को जो नहीं जानते, वे अज्ञानी लोग जगत् में बहुत दुःख उठाते हैं (ऋग्वेद १०।१२५।४)।

'संसार में सभी प्रकार की शक्तियाँ मेरी ही हैं अथवा सब शक्तियाँ मेरा ही रूपान्तर हैं। अतः इसी भाव से शक्ति की उपासना श्रेयस्कर है। इस स्तर पर पहुँचा हुआ साधक यह समझता है कि उसकी बुद्धि, मन और इन्द्रियों पर भगवती का नियंत्रण है, उसी के इशारे पर यह सब काम होते हैं, हमारा शरीर तो केवल यन्त्र मात्र है। उसके सभी कार्य भगवती को अर्पित होते हैं, सभी गतिविधियाँ उसी के लिए होती हैं—अपने शरीर के लिए नहीं। महाभारत (अश्व० ३२।१७-२३) के ब्राह्मणसंवाद में जनक ने इसे और ढङ्ग से स्पष्ट किया है—'जिस (वैराग्य) बुद्धि को मन में धारण करके मैं सब विषयों का सेवन करता हूँ, उसका हाल सुनो—नाक से मैं अपने लिए वास नहीं लेता (आँखों से मैं अपने लिए नहीं देखता आदि) और मन का भी उपयोग मैं अपने लाभ के लिये नहीं करता। अतएव मेरी नाक, आँख आदि और मन मेरे वश में हैं अर्थात् मैंने उन्हें जीत लिया है।'

भगवती का उपासक अपने शरीर, उनके समस्त अवयवों, मन, बुद्धि इन्द्रियों, विषयों और इच्छाओं को भगवती का रूप मानता है। स्त्री को भी वह भोग की सामग्री न मानकर भगवती का ही रूप मानता है। इस मान्यता से उसकी भावना में परिवर्तन होता है और वह इन्द्रियों और विषयों का उपयोग उसी तरह करता है, जिस तरह जनक करते थे।

जब मन, वचन और शरीर से यह भावना परिपक्व होजाती है कि यह शरीर उस आद्या-शक्ति की ही अभिव्यक्ति है, उसी का रूप है, तो वह अपने और भगवती में कुछ अन्तर नहीं समझता। अन्त में वह भगवती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को ही अपना रूप समझने लगता है। दोनों में एकता और अभिन्नता स्थापित हो जाती है।

शक्ति सत्य है

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या का सिद्धान्त–

योग वासिष्ठ' वेदांत-सिद्धांत का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह भी अद्वैत वेदान्त के इस सिद्धान्त को मान्यता देता है कि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। योग वसिष्ठकार का मत है कि—

एवं तावदिदं विद्धि दृश्यं जगदिति स्थितिम्।
अहं चेत्याद्यनाकारं भ्रान्तिमात्रमसत्मयम्।

—४।१-२

'जो दिखाई देने वाला जगत् और अहं आदि पदार्थ स्थित दृष्टि गोचर होते हैं, वह भ्रांतिमात्र और असत्य है।'

मृगतृष्णामिवासत्यं तत्यवत्प्रत्ययप्रदम्।

—४।१।७

"मृगतृष्णा की तरह अनुभव सिद्ध जगत् की तरह, यह जगत् सत्य प्रतीत होता है परन्तु है अवास्तव और असत्य।"

मायेयं स्वप्नवद् भ्रांतिर्मिथ्या रचित चक्रिका।
मनोराज्यमिवालोलसलिलावर्तसुन्दरी॥

---४।४७।४१

"यह सृष्टि माया है स्वप्न की तरह भ्रम है, मिथ्या बनाए हुए चक्र की तरह है, मनोराज्य की तरह चञ्चल और जल के भँवर की तरह सुन्दर दृष्टिगोचर होती है।"

समस्तं कल्पनामात्रमिदम्। —६।२१०।११

'यह समस्त जगत् कल्पना मात्र है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्यो: क्षमा वायुराकाश पर्वता सरितो दिशः ।
संकल्पकचितं सर्वमेव स्वप्नवदात्मनः ॥

—२०।१०।१।३५

'द्यो-लोक, पृथ्वी लोक, वायु, आकाश, पर्वत, सरिताएँ, दिशाएँ, सब आत्मा के संकल्प से इस तरह निर्मित हुए हैं, जिस तरह स्वप्न की सृष्टि होती है ।'

योग वासिष्ठ के अनुसार यह जगत् न तो सत्य हैं और न असत्य—

नातः सत्यमिदं दृश्यं न चासत्यं कदाचन ।

—३।४४।३३

'यह दिखाई देने वाला जगत् न सत्य है और न असत्य ।'

न तत्सत्यं न चासत्यं रज्जुसर्पभ्रमो यथा ।

—३।४४।४१

''जैसे रस्सी से सर्प का भ्रम होता है, वैसे ही यह जगत् न सत्य है, और न सर्वथा असत्य ही ।'

सत्य इसलिए नहीं कहा क्योंकि यह आदि और अन्त में नित्य नहीं है—

आदावन्ते न यन्नित्यं तत्सयं नाम नेतरत् ।

—५।५।२

और असत्य इसलिए नहीं कहा कि असत्य उसे कहना युक्तियुक्त है, जो कभी भी दिखाई न दे ।

जगत् को मिथ्या और असत्य प्रमाणित करने वालों में प्रमुख थे—स्वामी शंकराचार्य । यह अद्वितीय विद्वान और मेधावी थे तथा इन्होंने ३२ वर्ष की छोटी आयु में अपने सिद्धान्तों का डंका समस्त भारतवर्ष में वजा दिया । ब्रह्मसूत्र पर इनका 'शारीरिक भाष्य' जगत् प्रसिद्ध है । इनके अद्वैत सिद्धान्त का सारांश यह है कि इस जगत् में हमको नेत्रों से जो कुछ दीखता है वह सत्य नहीं है । इस समस्त विश्व-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रपंच में यदि कोई वस्तु सत्य है तो ब्रह्म की चैतन्य सत्ता है। जो अपनी माया या अविद्या नाम वाली शक्ति से इस दृश्य जगत् को उत्पत्ति और संहार करती है। वह माया न सत् है न असत् है वरन् उसे हम 'अनिर्वचनीय' ही कह सकते हैं। इस माया द्वारा जगत् की उत्पत्ति में किसी प्रकार की वास्तविकता नहीं है, वरन् उसके द्वारा निर्मित यह जगत् एक प्रकार का भ्रम स्वप्न के सदृश्य है, जो सत्य जान पड़ता है, पर जिसकी सत्ता रस्सी से सर्प का भ्रम हो जाने से अधिक नहीं है।

इस सिद्धान्त को 'विवर्तवाद' कहा जाता है। माया के सम्पर्क से ही ब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है और इस प्रकार अविद्या में पड़कर वह जीवात्मा कहलाने लगता है। इस प्रकार इस जगत् के मूल में ब्रह्म को छोड़कर और कोई तत्व सत्य नहीं है। इसी माया के वशीभूत होकर जीव अपने को अल्पज्ञ, अल्प शक्ति वाला, सीमित, कर्म-बन्धनों में बँधा हुआ समझने लगता है। इसके फल से वह कर्मों का कर्ता और भोक्ता बन जाता है और आवागमन के चक्र में पड़कर पुण्य पाप के फलों को भोगने लग जाता है, जब जीव अविद्या (माया) के रूप को समझा जाता है, तो अपने को इन्द्रियों और मन से प्रथक पूर्ण चैतन्य सत्ता अनुभव करने लगता है, तब उसके कर्म बन्धन टूट जाते हैं अल्पज्ञता और सीमित होने का भाव भी मिट जाता है और वह अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है। अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार यह मुक्ति की अवस्था है।

जगत् की सत्यता-सिद्धान्त के समर्थक--

वेदान्त समर्थक सभी विद्वान इस सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हैं। इस पर अनेकों देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा आलोचनाएं हुई हैं। उनका मत है कि शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्रों का जो अर्थ अपने भाष्य में प्रतिपादित किया है, वह अनेक अंशों में सूत्रों के वास्तविक आशय के प्रतिकूल है और उसे शंकराचार्य ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टि से शब्दों की खींचतान करके निकाला है। जर्मनी के एक विद्वान 'थीवो' ने वेदान्त दर्शन के अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि 'बादरायण का सिद्धांत शंकराचार्य के सिद्धांत से बहुत भिन्न था इसलिए शंकर-भाष्य को पढ़ने से बादरायण के सिद्धांतों का ज्ञान नहीं हो सकता।

इसी प्रकार एक अन्य विद्वान ने कहा कि "वेदान्त सूत्रों का अध्ययन करने से पतीत होता है कि उनका आशय शंकराचार्य के 'विवर्तवाद' के अनुकूल न होकर भास्कराचार्य के 'परिणामवाद' से अधिक मिलता है।" तीसरे विद्वान के मतानुसार सूत्रों को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि शंकर की अपेक्षा रामानुज 'बादरायण' के अधिक निकट हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि शंकराचार्य के समय में दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म का जोर बहुत बढ़ रहा था, जिससे वैदिक धर्म का सूर्य प्राय: अस्त हो रहा था। उस परिस्थिति में शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र का जो भाष्य लिखा है उसके सूत्रों के मूल आशय की ओर इतना ध्यान नहीं दिया है जितना कि इस बात पर कि उनके द्वारा बौद्ध और जैन आदि वेद-विरोधी मतों का खण्डन करके उनको परास्त किया जाय।

वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय भी शङ्कर के मत से सहमत नहीं है। रामानुज के मतानुसार 'माया-मिथत्ववाद' और अद्वैत सिद्धान्त दोनों गलत हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त जीव और जड़ जगत् अर्थात् चित् और अचित् भी नित्य और स्वतन्त्र तत्व हैं यद्यपि वे ब्रह्म के ही अंश हैं और ब्रह्म उनके भीतर अन्तर्यामी रूप में रहता है। ये दोनों तत्व ही ब्रह्म की विशेषता हैं, जो प्रलयकाल में तो ब्रह्म के भीतर सूक्ष्म रूप में रहते हैं और विश्वोत्पत्ति के अवसर पर स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं। इसी से इसका नामकरण 'विशिष्टाद्वैत' किया गया है।

माधवाचार्य का कहना है कि जब भगवान सत्य हैं, तो उनका बनाया हुआ जगत् कैसे मिथ्या हो सकता है?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमन्वमेत हरिः परतमः सत्यं जगत, तत्वतो ।

'श्री माधवाचार्य के मत से हरि (विष्णु) ही परम तत्व है और जगत् सदैव सत्य है ।'

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त शब्दार्थ की दृष्टि से अद्वैत सिद्धान्त का सबसे बड़ा प्रतिपादक है। शंकराचार्य ने जहाँ ब्रह्म के साथ माया को स्वीकार किया है और उसी के कारण जगत का आविर्भाव स्वीकार किया है, वहाँ वल्लभाचार्य ने माया को सर्वथा अस्वीकार करके ब्रह्म को केवल एक शुद्ध तत्व माना है। इसी ब्रह्म से जीव और जगत् प्रादुर्भूत होते और उसी में लीन हो जाते हैं। भगवान सच्चिदानन्द रूप हैं। जब उनकी इच्छा होती है, तो वे अपने तीनों गुणों सहित ईश्वर के रूप में प्रकट होते हैं और अपने इन्हीं गुणों से जीव तथा जगत की रचना करते हैं।

इसी तरह से वेदान्त के अन्य सम्प्रदायाचार्य भी शंकर के जगत को मिथ्या सिद्ध करने वाले सिद्धान्त के पक्षपाती नहीं हैं।

उपनिषद् भी ब्रह्म और जगत् के सत्य होने की घोषणा करते हैं। तैत्तरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक् में ब्रह्म को सत्य ज्ञान वाला कहा है—

सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म—

षष्ठ अनुवाक में ब्रह्म को सत्य न समझने वाले को ही असत्य कहा गया है—

आसान्त्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चित् ।

ब्रह्म ही जगत् है, यह उपनिषद् वाक्यों में सिद्ध है। उसी अनुवाक में कहा है कि 'परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की उसने तप किया और तप से तपस्वी होकर इस दृश्य जगत को रचा और उसी में प्रविष्ट हो गया।'

स तहोऽतप्त्वा। तपस्तप्वा इदं सर्वमसृजत यदि किं च तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशित् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक में सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है कि 'परमात्मा ने आकाश प्रकट किया। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ और औषधियों से अन्न की उत्पत्ति हुई। अन्न से मनुष्य हुआ, क्योंकि मनुष्य की देह अन्न-रस वाली है।'

तस्माद्भा एतस्मादात्मान आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः वायोराग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधोभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोत्ररसमयः।

इससे स्पष्ट है कि जगत ही ब्रह्म का साकार रूप है। जगत की हर वस्तु ब्रह्मरूप है। तैत्तरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में जब भृगु ऋषि अपने पिता वरुण के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये जाते हैं तो वरुण अन्न प्राण, चक्षु योग, मन, वाणीं सबको ब्रह्म की संज्ञा देते हैं। इन सबको ब्रह्म ही कहते हैं।

योगवाशिष्ठ में भी यही कहा है—

सत्यं ब्रह्म जगच्चैकं स्थितिमेकमनेकवत्।
सर्वं वा सर्ववद्भदाति शुद्धं चाशुद्धवत्ततम्।

—६।२।३५।६

'एक सत्य ब्रह्म विभिन्न प्रकार से जगत् के रूप में प्रकट हो रहा है एक सबके आहार में शुद्ध-अशुद्ध के रूप में।'

यह भी कहा है कि—

ब्रह्मबृंहैव हि जगज्जगच्च ब्रह्मबृंहणम्।
ब्रह्मैव तदनाद्यन्तब्धिवत्प्रविजृम्भते। ? —६।१।२।२७
आत्मैव स्पन्दते विश्वं वस्तुजातैरिवोदितम्।
तरङ्गकणकल्लोलेरनन्ताम्ब्व्म्वुधाविव। ? —५।७।२।३

जगत तो ब्रह्म की वर्द्धन शक्ति है और ब्रह्म का वृंहण हैं। ब्रह्म जो अनादि और अनन्त है, वही समुद्र की लहरों, कणों और तरंगों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के रूप में दिखाई देता है। उसी तरह आत्मा ही जगत की सारी आत्माओं में दृष्टिगोचर होता है—

करणं कर्म कर्त्ता च जनन मरणं स्थितिः।
सर्वं ब्रह्मणैव नह्यस्ति तद्विना कल्पनेतरा ॥
- ३।१।१०।३०

ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। करण, कर्म, कर्त्ता जन्म, मरण, स्थिति—सब कुछ ब्रह्म ही है।'

ब्रह्म ही जगत के रूप में प्रकट होता है, जगत को मिथ्या कहना भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

तन्त्र दार्शनिक भी जगत को सत्य मानते हैं। उनकी मान्यता है कि इस जगत में जितने जीव निवास करते हैं वे शिव का ही रूप है। इसलिए यह असत्य नहो हो सकता। वे जीव को शरीर और मन से युक्त शिव ही मानते हैं। तन्त्र की दृष्टि में शिव चेतना का अव्यक्त रूप है और शक्ति उसका क्रियाशील रूप है। जब शिव सत्य है तो शक्ति असत्य कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसी का व्यक्त रूप है।

एक तांत्रिक विद्वान् का मत है कि 'इस आद्याशक्ति को माया-रूपी अर्थात् मिथ्या नहीं माना गया है। यदि अग्नि के दाह-प्रकाश धर्म को मिथ्या माना जाय तो अग्नि का स्वरूप ही स्थिर नहीं हो सकता। इसी प्रकार सत्-वस्तु के स्वयं स्फुरण-सामर्थ्य (चिति) को और स्वयं तृप्ति को दिखाने वाले वेग (आनन्द) को मिथ्या मान लिया जाय तो ब्रह्म का स्वरूप ही नहीं बनता। ब्रह्म वस्तु के स्वभाव धर्म और औपाधिक धर्म पृथक्-पृथक् हैं। जो स्वधाब-धर्म है, वे ब्रह्म की शक्तिरूप हैं और जो औपाधिक धर्म हैं, वे ब्रह्म के गुण हैं। जिस प्रकार महासमुद्र में अन्तः स्पन्द होने पर उसकी तरंगमयी स्थिति हो जाती है और पुनः निस्तरग स्थिति हो जाती है। दोनों ही अवस्थाओं में जिस प्रकार समुद्र का समुद्रत्व एकरस रहता है उसी प्रकार ब्रह्म चैतन्य की स्पन्द वाली अर्थात् स्वयं स्वरूप को जानने वाली स्थिति (जिसे विमर्श कहते हैं) और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुनः अन्तर्मुख होने की स्थिति ब्रह्म के ब्रह्मत्व का बोध करने वाली नहीं है। एक ही वस्तु अनेक प्रकार भासती है। उसमें जो वस्तु भासती है, वह मिथ्या नहीं, परन्तु सत्य है। हाँ, उसके आकारों में सत्यत्व बुद्धि का होना भ्रम है। अतएव शक्तिवाद में ब्रह्म की विश्वमय भावना मिथ्या नहीं है परन्तु उसमें जो भेद भासमान होते हैं, उन्हें स्वतन्त्र मानने वाली बुद्धि भ्रमरूपा है। विश्वरूप में भासने की ब्रह्म-सामर्थ्यरूप शक्ति ब्रह्म की पक्षपातिनी है और उन आभासों में होने वाली सत्यत्व बुद्धि मिथ्या माया है। सारांश यह है कि जो अनेक प्रकार भासती है, वह स्वयं सत्य है, परन्तु उन आकारों में सत्यत्व बुद्धि मिथ्या है। इसलिए शक्ति अद्वैत में यह विश्व ब्रह्मरूप होने से ब्रह्ममयी का विलास है अर्थात् अधिकरण की चमत्कृति है। इसलिए विश्व का अनुभव ब्रह्म-रूप होने से सत्य है यानी ब्रह्म सत्य है।'

तन्त्र दार्शनिक श्री माधव पुण्डलीक पण्डित ने अपनी पुस्तक 'ताँत्रिक साधना' में लिखा है—तन्त्र के ऋषियों ने अपनी सम्पूर्ण शिक्षा को इसके केन्द्रिय साक्षात्कार के आधार पर प्रचारित तथा निर्मित किया कि सृष्टि भ्रम या सद्वस्तु की अनन्त सत्ता की एक बहिर्भूत अभि-व्यक्ति है। अभिव्यक्ति सत्ता में छिपी हुई चेतन शक्ति के द्वारा बाहर निकली गई प्रक्षेपित की गई है। शक्ति जो कि ब्रह्म की आत्म-चेतना की क्रिया-शक्ति है, माया कही जाती है अथवा उस चेतना का शक्ति रूप ही माया कहलाता है। वही मापती है—'म्रियते अनेन इति माया।' इस प्रकार ब्रह्म सत्य है, शक्ति सत्य की सत्य शक्ति की है और सत्य की विशालता से बना हुआ यह ब्रह्माण्ड भी उसी की तरह से सत्य है। तन्त्र कहता है कि विश्व दिव्य रूप से सत्य है और इसमें रहने वाला व्यक्ति भगवान की सब सत्ता का अंश है।'

अतः ब्रह्म सत्य है। अव्यक्त चेतना का व्यक्त रूप शक्ति भी सत्य है, जगत भी सत्य है। मूल कारण सत्य है, तो उसका परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चित है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र का यह सिद्धान्त हमें एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर कार्य में रुचि लेना सिखाता है। ताँत्रिक जगत के कार्यों को अपनी साधना के रूप में करता है, वह जगत को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु में उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देता है। वह जड़ चेतन में इसी भावना का आरोपण करता है। तभी तो वह 'सोऽहम्' और 'दिव्योऽहम्' की उच्चतम साधना के लिए अपने को तैयार पाता है। जगत को मिथ्या कहने वाला उससे घृणा और उपेक्षा करता है प्रभु के साकार रूप की उपेक्षा करने वाला साधन के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता क्योंकि जगत को वह अपने से भिन्न मानता है। इसलिए चारों ओर बिखरे प्रेम-सरोवर की लहरों से वंचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति और सिद्धि का स्रोत सूखने लगता है। एकता की भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत को सत्य मानने से ही यह साधना सफल हो सकती है। अतः तन्त्र-साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है।

शक्ति-उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

नैतिक पक्ष–

देवी उपासना की स्थापना का उद्देश्य यही है कि समाज में स्त्रियों के प्रति आदर और सम्मान के भाव जाग्रत हों। जिस तरह साधक अपनी इष्ट देवी को जगतमाता के रूप में देखता है, उसी तरह से विश्व की हर स्त्री में वह अपने इष्टदेव का ध्यान करे और उसे पवित्र भाव से देखे।

ऋषियों ने अनुभव किया था कि मनुष्य की इन्द्रियाँ बलवान घोड़ों की तरह सशक्त होती हैं, वह अपनी तृप्ति के लिये उसे अपने इच्छित मार्ग पर घसीट कर ले जाती हैं। इन्द्रियों के वश में होकर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्य अन्धा हो जाता है, उसकी सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो जाती है। विवेक उसका साथ छोड़ देता है। इन्द्रियाँ रूपी घोड़े जहाँ भी उसे ले जाते हैं, मदमस्त हाथी की भाँति उनका पीछा करता है, और गड्ढे में गिर जाता है।

इतिहास साक्षी है कि वड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कभी-कभी इन्द्रियों को अपने वश में न रख सके, उनके पैर डगमगा गये और वह गलत रास्ते पर चल पड़े जिससे आज तक उनके ऋषितत्व पर कलक का टीका लगा हुआ है। विश्वामित्र जैसे महान् तपस्वी ऋषि जिन्होंने नवीन सृष्टि की रचना का सहारा किया है, वह भी एक अप्सरा के काम-जाल में फँस गये और भोग-क्रियाओं में लम्वे समय तक लिप्त रहे, जिससे उनको तेज क्षीण हो गया। पराशर मुनि नदी पार करते हुए नाव में नाविक की कन्या पर आसक्त हो गये। उनके मन में काम-वासना आँधी और तूफान की तरह आई और नाव में ही उन्होंने अपनी ज्वार-भाटा की तरह उछलती लहरों को शांत किया। शान्तनु भी एक नाविक की लड़की पर आसक्त हो गये और उससे विवाह की सोचने लगे। पर उदाहरण वताते हैं कि हमें अपने कामत्व के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिये। किसी सुन्दर लड़की को देखकर उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखना अपनी मानसिक कमजोरी का चिह्न है। इस असन्तुलन से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होती है। यह दृष्टिकोण अपनाने से तो किसी की माँ वहिन-लड़की का सम्मान सुरक्षित नहीं रह सकता।

इतिहास ने जहाँ-जहाँ ऐसे उदाहरणों को दोहराया है वहाँ तबाही, वर्वादी और खून-खरावी के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया। अलाउद्दीह ने पद्मिनी के रूप-लावण्य के समाचार सुने थे। उसे प्राप्त करने के लिये यह कामरूपी राक्षस हजारों प्राणियों का खून करने के लिये उद्यत हो गया। इतिहास ने रावण जैसे महापंडित को भी इन्द्रियों के वशीभूत होकर एक नीच कर्म करने पर वाध्य किया। धर्माचार्यों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ने ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति से सावधान रखने के लिए रावण के क्षुद्र–कर्म का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया, ताकि समाज उससे शिक्षा ले।

हिन्दू-धर्म कहता है कि स्त्री को भोग की सामग्री मात्र मत समझो जीवन की पूर्णता प्राप्त करने के लिए उसे अपना जीवन साथी मानो, सृष्टि-रचना की प्रभु-लीला का माध्यम समझो। यदि उसे सावधानी से न वरतोगे तो वह नरक की खान बन जायेगी। पृथ्वीराज संयोगिता को स्वयंवर से भगाकर ले गया और उसमें इतना अधिक आसक्त हुआ कि उसे अपने राज्य के काम-काज की कुछ भी खबर न रही। मोहम्मद गोरी जब आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता हुआ सिर पर आ पहुँचा, तो उसके प्रधानमन्त्री ने काम-निद्रा से उसे जगाया। परन्तु अब क्या हो सकता था? इसका अभिप्राय है काम ने राष्ट्रों के भविष्य ही वदल डाले।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के काम-जाल में फँस गये थे। प्रधानमन्त्री चाणक्य ने उसे सावधान किया था। दिग्विजयी सिकन्दर दिग्विजय करते हुए अपने देश लौटे तो एक रुप-लावण्य की साक्षात मूर्ति फिलिस को अपने साथ लाये। उनके गुरु अरस्तू ने उसे सावधान किया कि वह विष-कन्या है। इसके शरीर का स्पर्श ही तुम्हारे सारे शरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जायेगा। सिकन्दर उससे दूर रहने लगा। इससे फिलिस चिढ़ गई और काम-बाण फेंकने आरम्भ कर दिये। यह सफल हुई और अरस्तू उनके प्रेम जाल में फँस गये। एक दिन उसने अरस्तू का खेल में घोड़ा बनाया और उसकी नाक में नकेल डालकर सारे कमरे में उसे घुमाया। सिकन्दर ने यह सारा दृश्य देखा। वह आश्चर्यचकित रह गया। जब गुरु से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रवीण अनुभव वयोवृद्ध पण्डित को भी वशीभूत करके हीन-से-हीन काम करवा सकती है, वह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुझसे कम आयु के कम अनुभवी युवक के लिए और भी अधिक खतरनाक नहीं हो सकती क्या ?"

पुराणाचार्यों ने काम से सभी उत्पातों का सर्वेक्षण किया था और वह इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज में उच्च भावनाओं को उत्पन्न करने से ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। वह समाज तो आसुरी समाज कहलाया जायगा, जिसमें किसी युवक ने किसी युवती को देखा, उसके सौन्दर्य पर आसक्त हो गया और उससे विवाह करने की सोचने लगा। राज्याधिकारी हुआ तो अपने प्रभाव से उसे अपने घर में लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह के षडयन्त्र करने लगा। वह तो पशुओं का-सा समाज हो गया, जिनमें कोई विधिवत् पति-पत्नी नहीं होते। भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि और विवेक इसीलिये दिया है कि वह इसका सदुपयोग करे।

समाज इसकी निर्बल वृत्ति का अनुभव करते हुए भी देवी-उपासना का आरम्भ किया गया ताकि देवियों के प्रति साधक के अन्तःकरण में पवित्र भावनाओं का संचार हो, समस्त नारी जाति में वह इष्टदेवी के दर्शन करे और उन्हें माता, बहिन, पुत्री के पवित्र भाव से देखे। धर्म के साथ जुड़ी हुई यह भावना साधक के मन में जम जाती है और वह एक सभ्य मनुष्य की तरह समाज में विचरण करता है। यह देवी-उपासना का रहस्य व लक्ष्य है। देवी-उपासना के इस नैतिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जो साधक गायत्री, दुर्गा, लक्ष्मी, काली आदि देवताओं की साधना करते हैं, वे अपने चरित्र का मानसिक व आत्मिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल हो पाते हैं, शेष तो अन्धकार में ही भटकते रहते हैं।

काम-तत्व जैसी विनाशकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित रखने का यह अनोखा मनोवैज्ञानिक साधन है, जिससे साधक के मानसिक स्तर में परिवर्तन आता है, उसकी विचार-भूमि में सात्विक अंकुर उगने लगते हैं। वह भोगों के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक हो जाता है। नारी को

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भोग की सामग्री समझने वाला मस्तिष्क काम का दास बनता है और नीच से नीच और जघन्य से जघन्य अपराध भी अपनी लिप्सा की शांति के लिये करने पर तत्पर हो जाता है। इस विनाश को रोकने का वैज्ञानिक साधन देवी-उपासना है, जब हर स्त्री को साधक विश्व-माता के रूप में देखता है।

देवी-उपासना का उद्देश्य काम पर रोक लगाना नहीं है। यह तो कामेन्द्रिय का स्वाभाविक धर्म है। आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग करना ही चाहिये, परन्तु वह काम, भोग की संज्ञा में न आये। भोग के प्रति आसक्ति के शास्त्रकारों ने बचने के लिए प्रेरित किया है और सुझाव दिया है कि भोग में त्याग की प्रवृत्ति श्रेयस्कर है। इससे इन्द्रियों के स्वाभाविक धर्म का भी पालन हो जाता है और कोई हानि नहीं हो पाती।

इच्छा शक्ति का विकास--

यह सभी कार्य इच्छा-शक्ति के सहयोग से ही सुविधापूर्वक हो पाते हैं। मनीषी ऋषियों ने इच्छा-शक्ति को देवी का रूप दिया। वह भली प्रकार जानते थे कि जीवन की सफलता-विफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति और उत्थान-पतन सब मनुष्य की इच्छ शक्ति की सबलता तथा निर्बलता के परिणाम हैं। सभ्य और दृढ़ इच्छाशक्ति-सम्पन्न लोगों को अभद्र विचार, कुकल्पनायें, भयानक परिस्थितियाँ-उलझनें भी विचलित नहीं कर सकती। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। वे उन्हें बार-बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छा-शक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हें अस्थिर कर नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति हर परिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल कर आगे बढ़ते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नहीं होते।

दृढ़ इच्छा-शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है, जिनमें किसी भी वाह्य परिस्थिति, कल्पना, कुविचारों का प्रभाव नहीं हो सकता। दृढ़ इच्छा-शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति जीवन के भयंकर झंझावतों में भी अजेय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चट्टान की तरह अटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शांत रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रसन्नता और शाँति उसके साथ रहते हैं।

जिस व्यक्ति में इच्छा-शक्ति की जितनी प्रवलता है, वह उतना ही अधिक कार्यक्षम होता है। मानव देह पर इच्छा-शक्ति का ही शासन है, क्योंकि इच्छा द्वारा ही सब इन्द्रियाँ अपने कार्यों में लगती हैं। अत्यन्त निर्बल मनुष्य इसके वल पर बलवान बन जाते हैं।

बड़े-बड़े तपस्वियों की साधनाओं में इच्छाशक्ति का ही हाथ था। बड़े-बड़े संग्रामों में विजय प्राप्त कराने का श्रेय भी इच्छा-शक्ति को ही रहा है।बड़े-बड़े हत्याकाण्डों में भी वीभत्सता उत्पन्न हुई वह सब इच्छा-शक्ति के कारण ही हुई। आप इसे जिस कार्य में लगायेंगे, वह उसी में लग जाएगी। उसी को पूर्ण करने का प्रयत्न करेगी।

देवी-उपासना में इच्छा-शक्ति को विकसित करके हम जीवन के हर क्षेत्र में द्रुतगति से बढ़ सकते हैं।

भयंकर रूप का अभिप्राय—

चित्रों, मूर्तियों और कथाओं में देवी के दो रूपों का चित्रण किया गया है। एक भयंकर और दूसरा उन्नयनकारी। भयंकर रूप के दर्शन हम तब करते हैं, जब देवी को देवकार्य के लिए युद्ध-क्षेत्र में उतरना पड़ता है। सामने शक्तिशाली योद्धा हैं, जिन्होंने देवराज इन्द्र जैसे वीरों को परास्त करके आसुरी साम्राज्य स्थापित कर रखा है। उन्हें धराशायी करने के लिए देवी को भयंकर रूप धारण करना पड़ा, जो विजय की कामना करने वाले हर पक्ष में होना स्वभाव-सिद्ध है। आसुरी शक्तियों के विनाश के लिये वही रूप अपेक्षित है। जिन परिस्थितियों में देवी को असुरों से जूझना पड़ा वे हर मानव के जीवन में आती हैं। किसी न किसी रूप में यह होता है। भगवान बुद्ध के सामने भी यही स्थिति थी। हमारे और आपके सामने भी आयेगी। उसका डटकर सामना करने के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए अपनी दैवी शक्तियों को एकत्रित करके पूरी शक्ति के साथ उस पर आक्रमण करना चाहिए। देवी का सौम्य रूप ही प्रशंस्य माना गया है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इस रूप को धारण करने में कोई हानि नहीं है। इस भयंकर रूप की अनुकृति बनकर हमें भी अपने मानसिक शत्रुओं का सिर काटना होगा, यही देवी की क्रूरता का अभिप्राय है।

कुप्रवृत्तियों के त्याग की भावना–

पशु-बलि देवी-उपासया का आवश्यक अंग माना जाता है। यह प्रतीकात्मक रहस्य है, जिसे न समझकर देवी के पवित्र नाम को कलंकित किया जाता है। वास्तव में बलि का तात्पर्य आन्तरिक कुप्रवृत्तियों का त्याग ही है।

उपनिषद् का वचन है—

कामक्रोधलोभादयः पशवः।

अर्थात् 'काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु हैं, इन्हीं को मारकर यज्ञ में हवन करना चाहिये।"

इसी प्रकार—

काम-क्रोधःसुलोभ-मोह पशून् छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्म-सुखदं भुञ्जति तेषां बुधाः।

—भैरवयामल

अर्थात् विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओं को विवेक रूपी तलवार से काटकर दूसरे प्राणियों को सुख देने वाले निर्विपय-रूप मांस का भक्षण करते हैं।"

महानिर्माण-तन्त्र में भी इसी आशय का श्लोक आया है—

कामक्रोधौ द्वौ पशू मनसा बलिमर्पयेत।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त वा जपं चरेत्॥

"काम और क्रोध रूपी दोनों विघ्नकारी शत्रुओं का बलिदान करके उपासना करनी चाहिए। यही शास्त्रोक्त बलिदान का रहस्य है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आलंकारिक रूप से यह आत्म-शुद्धि की, कुविचारों-पाप-तापों-कषाय-कल्मषों से बचने की शिक्षा है।

रहस्य-तन्त्र का कथन है—

कामक्रोधी विघ्नकृतौ बलिं दद्याज्जपं चरेत् ।

एक दूसरे तन्त्र का वचन है—

इन्द्रियाणि पशून् हत्वा ।

अतः देवी कुप्रवृतियों के त्याग की प्रेरणा देती है।

उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य—

मातृ-उपासना का दूसरा रूप उन्नतकारी है। वह उत्थान की प्रतिमा है। अवगुणों पर कुठाराघात करना उनका सर्व प्रथम कर्तव्य है। दोष उसके सामने संकुचित हो जाते हैं। दोषों के विनाश के साथ ही आत्मिक-प्रगति होती चलती है। देवी तो सद्गुणों की खान है। पवित्रता, उदारता, शील, लज्जा, चेतन, बुद्धि, शिष्टता उसके चारित्रिक अंग हैं। देवताओं के सम्मिलित प्रयत्न से उसका जन्म हुआ। वह दिव्यगुणों की समन्वित मूर्ति है। जो देवी-भक्त सद्गुणों के विकास की ओर ध्यान नही देता, वह माता के आध्यात्मिक पयपान से वंचित रह जाता है। जिस पर माता का वरद हस्त रहता है, वही उसे प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर पाता है। शेष तो भौतिक कामनाओं की पूर्ति में ही उलझे रहते हैं। देवी प्रेरित करती है कि जीवन के आधार-स्तम्भ सद्गुण हैं। अपने गुण, कर्म-स्वभाव को श्रेष्ठ बना लेना, अपनी आदतों को श्रेष्ठ सज्जनों की तरह ढाल लेना वस्तुतः एक ऐसी बड़ी सफलता है, जिसकी तुलना किसी भी अन्य सांसारिक लाभ से नहीं की जा सकती। विदेशी मनीषी भी इस रूप की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके। 'दि ग्रेट मदर' नामक पुस्तक के प्रणेता श्री एरिश न्यूमन ने लिखा है—

'कालान्तर में भारतीय मातृ-शक्ति ने प्रकाशपूर्ण उन्नयनकारी रूप के चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर लिया। केवल तन्त्रों की शक्ति के रूप में नहीं, काली—जो स्वयं भयंकारी मूर्ति थी, उन्नयनकारी आध्यात्मिक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तर पर स्वतन्त्रता और सुरक्षा की महान देवी बन गई, जिसकी तुलना में पश्चिम की कोई देवी ठहर नहीं सकती और सर्वोत्तम रूप में 'तारा' का उदय हुआ, जिसके दैवी प्रकाश की कोई सीमा नहीं। प्रज्ञापारमिता के रूप में वह बोधिसत्वों की भी जननी है।

देवी प्रकाशरूपा है, वह दिव्यता का पुञ्ज है। कथा भी है कि आदि में सब अन्धकार था, देवी की कृपा से प्रकाश हुआ। उसका प्रकाश, ज्योति और ज्ञान का द्योतक है। अन्धकार उसके समक्ष रह नहीं सकता। दिव्यता के आगार में कुविचारों को कहाँ स्थान मिल सकता है ? वह तो प्रचण्ड ज्ञानाग्नि में जलकर भस्म हो जायेंगे। देवी का रोम-रोम करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से दमकता है। उसकी चमक देव-राज्य की स्थापना का उद्घोष करती है। हमारा मनोराज्य भी ऐसे ही प्रकाश पुञ्जों से अलंकृत होना चाहिए। वही देवी की उपासना का, समीपता का रहस्य है।

नवनिर्माण की प्रेरणा–

सृजन-शक्ति माता का एक विशेष गुण है, जिसके कारण उसे इस पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता है। शरीरधारी मां प्राण-पिण्ड का निर्माण करती है, जबकि विश्व-माता सारे विश्व को जन्म देती है। यह उसकी स्वभावगत विशेषता है। वह विश्व के हर अणु-परमाणु में विद्यमान है—एक दूसरे में न्यूनता भले ही हो जाये। मानव में यह अधिक विकसित होती है। महर्षि विश्वामित्र तो इसके प्रतीक ही बन गये थे। उन्होंने नई सृष्टि की रचना का महान प्रयत्न किया था। राष्ट्र में नई चेतना, समाज में नया प्रकाश, व्यक्ति में नया जोश ही इससे अभिप्रेत है। जीवन को नये साँचे में ढालना, विचारों को उच्च पवित्र और परिपक्व करना और अपने शक्ति-साधनों को गति देना ही अभीष्ट है। निर्माण की शक्ति और क्षमता तो ईश्वर-प्रदत्त है, जो इसका उपयोग नहीं करता, वह अविकसित पिछड़ा हुआ और दीन-हीन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रह जाता है। यह मातृशक्ति की उपासना से वंचित रहना है। सृजन-शक्ति से जीवन का नव-निर्माण लक्षित है।

परिवर्तन की क्षमता–

परिवर्तन की क्षमता नारी का जन्मजात सौभाग्य है। इसके प्रमाण नित्य देखने में आते हैं। वह शुक्र को शिशु में बदलती हैं, रक्त में दुग्ध-धारा का प्रस्फुटन करती है। वह शिशु के विचार-चक्र को अपनी इच्छानुसार चलाती है—उसे जैसा बनाना चाहे बना सकती है। शिशु जन्म के बाद भी वह उसमें परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। मदालसा जैसी विदुषी नारियों के उदाहरण जगत् प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने लोरियों से आत्मोत्थान की भूमिका तैयार की थी। नारी गृह को नरक और स्वर्ग दोनों बना सकती है। जहाँ उसके शरीर से प्रेम, स्नेह, प्रकट होता है वहाँ संगठन-शक्ति और भौतिक साधनों के अभाव में भी वह स्वर्गीय वातावरण निर्माण कर डालती है, परन्तु जहाँ उसके रौद्र-रूप के दर्शन होते हैं, वहाँ साधन-सम्पन्न घरानों में कलह, क्लेश और असन्तोष व्याप्त रहता है। मातृशक्ति परिवर्तन चाहती है। वर्तमान परिस्थितियों और क्षमताओं में अपूर्णता है उसे पूर्णता में परिवर्तित करना उसे अभीष्ट है।

देवी के जन्म में देवताओं की सम्मिलित शक्ति के सौहार्द्र की फुहार निकलती है, धन की महत्ता परिलक्षित होती है। कहा भी में—"संघे शक्तिः कलौ युगे"। प्रगति के लिए संगठन-शक्ति आवश्यक है। देवी इसके द्वारा सामाजिक जीवन में विकास चाहती है।

देवी के जन्म का उद्देश्य आसुरी शक्तियों का विनाश था। उसने समाज को अव्यवस्थित करने वाले शक्ति स्रोतों पर प्रहार किया घोर संघर्ष हुआ, विजयश्री देवी के पक्ष में रही। वह तो रहती ही थी क्योंकि अन्तिम विजय दिव्यता की ही होती है। हमारे मनःक्षेत्र में जो आसुरी तत्त्व विद्यमान है, उनसे लोहा लेने के लिये देव-तत्त्वों को संगठित करना होगा और उनके विरुद्ध जिहाद बोलकर ललकारना होगा। उन्हें परास्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किये बिना आत्म-कल्याण सम्भव नहीं है। यह संग्राम आवश्यक है। जो व्यक्ति इसके लिये अपने को तैयार नहीं करता वह असुरों से प्रभावित होकर असुर ही बन जाता है, जिसे जीवन-नाश की संज्ञा दी जाती है।

अनासक्त भावना–

कमल का पुष्प देवी को प्रिय है। तारा का आसन कमल का बना है। देवी मेडोना और डेसेतर के हाथों में इसे देखा जा सकता है। आइसिस के रथ का पहिया इससे बना हुआ है।

कमल भारतीय संस्कृति का महाप्रतीक माना जाता है। इसका जन्म पंक में होता है, परन्तु फिर भी यह निर्मल और पवित्र रहता है। यह जल में रहते हुए भी उससे अलग रहता है, जल से अलिप्त रहता है। कमल के प्रतीक से यह प्रेरणा मिलती है कि हमें संसार में रहते हुए भी उसमें आसक्त नहीं होना चाहिए, उससे अलिप्त रहना चाहिए। संसार के भोग बुरे नहीं हैं, परन्तु उन्हें त्यागपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। परिवार के पालन-पोषण को एक परम पवित्र कर्तव्य मानना चाहिए। हर सदस्य के बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिये जी-तोड प्रयत्न करना चाहिये, परन्तु उनमें मोह और ममता नहीं होनी चाहिये।

कमल को प्रकाश प्रिय है, वह सदैव प्रकाश के सम्मुख रहता है। जब सूर्य निकलता—कमल अपनी पंखुड़ियाँ खोल देता है, मानो अपनी अपार प्रसन्नता का प्रदर्शन कर रहा हो। जब तक सूर्य रहता है, उसका मुख प्रकाश की ओर ही रहता है। उसे अन्धकार प्रिय नही है वह प्रकाश पर मरता है। वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का पुजारी है, मानो वह यही प्रार्थना करता है—मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। भगवान् उसकी पवित्र भावना से ओत-प्रोत प्रार्थना स्वीकार भी कर लेते हैं। कमल की प्रेरणा है कि हमें भी अज्ञानान्धकार और अविवेक से सदैव दूर रहना चाहिए तथा ज्ञान, प्रकाश, ज्योति और विवेक को आदर्श बनाना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर्वतीय उच्चता का बोध–

देवी का पर्वत में सम्बन्ध स्थापित किया है। पार्वती तो पर्वतराज की पुत्री ही घोषित की गई है। देवी को पर्वत प्रिय भी है। देवी के अधिकांश प्रसिद्ध उपासना-गृह पर्वतों पर स्थित है। पर्वत से उच्चता का बोध होता है। देवी का आसन पर्वत पर रहता है। हमारे जीवन का आधार उच्च विचार होने चाहिये। उच्च विचारों के पर्वतीय आसन पर बैठकर ही आध्यात्मिक उन्नयन की क्षमता प्राप्त की जा सकती हैं।

पारमार्थिक भावना–

देवी अन्नपूर्णा है, विश्वधात्री है, शाकाहारी है। वह अपने पुत्रों को भूखा नहीं देख सकती। वह उनके दुःख-दर्द को अपना समझती है, उसे दूर करने का प्रयत्न करती है ओर निरन्तर विश्व कल्याण में रत रहती है। हमारा समाज कुरीतियों, कुप्रवृत्तियों और बुराइयों से भरा पड़ा है। इसे स्वच्छ और पवित्र बनाने के लिए 'देवों' को सम्मिलित और संगठित प्रयत्न करने चाहिये।

प्राणी-मात्र से प्रेम का प्रसार–

देवी केवल मनुष्यों की ही माता नहीं है। वह पशु, पक्षियों, पर्वतों, चट्टानों और लताओं की भी जननी है। सिह तो उसका प्रसिद्ध वाहन है ही। बैल, हंस, मोर, नटराज, ऐरावत भी देवी के वाहन हैं। वह सभी प्राणियों की माँ है। उसका रूप सबमें बिखरा पड़ा है। वह यही चाहती है कि उसके हर रूप का सम्मान किया जाये। अपने स्वार्थ के लिए उसकी हिंसा न की जाये, किसी प्रकार की पीढ़ा न दी जाये। पशुओं में भी देवी के दर्शन करके उनसे प्रेम-व्यवहार किया जाये और यथासम्भव उनका पालन-पोषण किया जाये।

सद्गुणों का प्रयास–

देवी को ज्ञान, प्रकाश, पवित्रता, श्रेष्ठता, उच्चता, दिव्यता प्रिय है। इसी में उसकी शोभा और सौन्दर्य निहित है। अन्याय, अत्याचार,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रष्टाचार, कामुकता, असंयम, स्वार्थ, झूठ, फरेब सब मन की गन्दगी है। इनसे दुर्गन्ध फैलती है, जो देवी को अप्रिय है। तभी वह दिव्य सौन्दर्य का पुञ्जीभूत विग्रह मानी जाती है।

प्रेरणाओं की स्रोत—

स्पष्ट है कि देवी-साधना मानव में अनेक जन्मों से व्याप्त जड़ता को नष्ट करके आन्तरिक प्रकाश और स्फुरणा को उद्भावित करती हैं। वह उसको अवगुणों की गन्दगी को हटाकर सद्गुणों के उच्च पर्वतीय आसन पर प्रतिष्ठित करती है। यह काम सहज में ही नही हो जाता, इसके लिए दीर्घकालीन प्रयत्न और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है। इस संघर्ष के लिए वह हमें तैयार करती है। वह केवल व्यक्तिगत उत्थान के लिए ही प्रेषित नहीं करती, उत्थान को व्यक्तिगत सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित मानती है। इसके लिए उपाय भी सुझाती है। तप, त्याग की वलि—आहुति माँगती है। अपनी सृजक शक्तियों को सतेत्र रखने का आह्वान करती है। कमल की तरह भोग में त्याग की परम्परा को निभाते हुए, सभी स्त्रियों में मातृ-भावना की ज्योति जलाकर काम-तत्व पर विजय प्राप्त करके आन्तरिक सत्ता को जाग्रत करने की प्रेरणा देती है। उसका सदुद्देश्य मानवीय मूल्यों की परिधि को हटाकर दिव्यता के दर्शन कराना है। मातृ-शक्ति की दिव्य किरणें में शक्ति से आप्लावित करती हैं और झकझोर कर कहती हैं—तुम हाड़ माँस के पुतले मात्र नहीं हो, तुम सजीव शक्ति-सम्पन्न चेतन आत्मा हो, शक्तियों का स्रोत हो। तुममें वह शक्तियां निहित हैं कि विश्व के किसी असम्भव कार्य को सम्भव बना सकते हो। गति, सक्रियता, सजीवता तुम्हारे विशेषण हैं, अस्त्र-शस्त्र हैं, इन्हें उठाओ और जीवन का संघर्ष आरम्भ करो, जो रुकावटें आयें उन्हें दूर करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते चलो। यही जीवन है। तुम शक्ति आशा और साहस के रूप हो, अतः जीवन का निखार करो।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति-उपासना का रहस्य–

शक्ति-उपासना विभिन्न उद्देश्यों से की जाती है। वास्तविकता की ओर कम लोगों का ध्यान जाता है। शक्ति अणु-अणु में व्याप्त है। विश्व की सभी वस्तुओं में क्रियाशीलता का कारण यही है। यही उनका पोषण करती है। इसलिए इसे जगज्जननी कहा जाता है। इसकी सच्ची उपासना इसे व्यापक रूप से अनुभव करना है। सृष्टि की रचना कर्तव्य-बुद्धि से करना तो आवश्यक है। परन्तु अपनी पत्नी के अतिरिक्त विश्व की किसी भी अन्य स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखना दुर्गा का अपमान और अवहेलना है। दुर्गा उन अन्धभक्तो से प्रसन्न नहीं होती, जो उसके लिए पशुओं का बलिदान करें, बच्चों को बलि करें अथवा अपनी जिह्वा काट डालें। उसका वरद हस्त तो उस भक्त के लिए उठता है, जो नारी जाति के प्रति मातृ-भाव की पवित्र भावना रखता है। वह शक्ति सम्राट् है। ब्रह्मचर्य से शक्ति की सुरक्षा होती है। भोग और उसकी भावना से उसका अपव्यय होता है। शक्ति-विकास के साधन अपनाए जायें और अनावश्यक व्यय को रोका जाए, यही शक्ति के संचय का उपाय है। दुर्गा विद्या की देवी है। वह बुद्धिमानों को ही वरदान देनी है। बुद्धिमान वही है जो अपने शक्ति-कोषों को सुरक्षित रखना जानता है।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि सभी शक्ति के विरोधी तत्व हैं, शत्रु हैं। दुर्गा इनको नष्ट करके इनकी मुण्डमाला गले में धारण करती है। तभी तो वह सिंह की सवारी करती है और राक्षसों का दलन करती है। जो इन्द्रियों के गुलाम हैं, काम के वश में होकर तरह-तरह का नाच नाचते हैं, जिह्वा के वश में होकर शरीर को जर्जर करते रहते हैं, तामसिक व राजसिक आहार से मनोवृत्तियों को तमोगुणी व रजोगुणी बनाते रहते हैं, उनका मन निरन्तर अशांत रहता है। दुर्गा की स्तुति करने वाले ऐसे भक्त उनसे निराश ही होते हैं और कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेते। इन्द्रियों को वश में करके उनका सदुपयोग करने

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाले ही सच्चे शक्ति-उपासक माने जाते हैं। इन्हें ही दुर्गा की सिद्धि प्राप्त होती है।

यह है शक्ति-साधना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, जिसे अपना कर हम विकास-पथ की ओर उन्मुख हो सकते हैं।

—×—

नारी रूप में शक्ति-उपासना क्यों ?

कई व्यक्ति पूछते हैं—महाशक्ति को नारी के रुप में क्यों पूजा जाता है, जबकि अन्य सभी देवता नर-रुप हैं ?

इस शंका के मूल आधार में मनुष्य की वह मान्यता काम करती है, जिसके अनुसार नर को श्रेष्ठ और नारी को निकृष्ट माना जाता है। घर में नारियां नर की सेवा-पूजा करती हैं, उसके अधिकार-आधिपत्य में रहती हैं, उन्हें छोटा या हेय माना जाता है। स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अपमान मानते हैं। किसी स्त्री अफसर के नीचे पुरुष कर्मचारियों को काम करना पड़े, बाहर से कुछ न कहते हुए भी कुड़कुड़ाते हैं। किसी घर में स्त्री की बात चलती हो, पुरुष अनुगामी हो तो उसका मखौल उड़ाया जाता है। नर की नारी के प्रति जो यह सामन्तकालीन तिरस्कार बुद्धि है, उसी से प्रभावित होकर उसे यह सोचना पड़ता है कि वह नारी-शक्ति की पूजा क्यों करे ? जब नर देवता मौजूद हैं, तो नारी के आगे मस्तक झुकाकर अपने नरत्व को हेय क्यों बनाया जाय ?

भगवान् को नारी-रुप में पूजने से किसी की कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही है। माता के हृदय में अपार वात्सल्य है। जितनी करुणा एवं ममता माता में होती हैं, उतनी और किसी सम्बन्धी में नहीं। उपासना के लिए भगवान् के किसी घनिष्ट सम्बन्ध के रुप में ही मान्यता प्रदान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करनी पड़ती है। निराकार ब्रह्म का ध्यान सम्भव नहीं, ध्यान के बिना उपासना नहीं हो सकती। निराकारवादी भी ध्यान-उपासना प्रयोजन के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं। प्रकाश भी आखिर पंचभूतों के अन्तर्गत आता है। ध्यान भूमिका में प्रयुक्त किये जाने वाले प्रकाश-बिन्दु एवं सूर्य मण्डल का एक आकार बन ही जाता है, इसलिए उपासना में कोई न कोई आकार तो निर्धारित करना ही पड़ता है। इस आकार के साथ जितनी ही आत्मीयता, ममता, घनिष्ठता होगी, उतना ही मन लगेगा और चित्त एकाग्र होगा और भावात्मक तन्मयता की ओर दृष्टि के साथ भगवत्-प्राप्ति की ओर प्रगति होती चली जायगी।

जिसके साथ घनिष्ठता स्थापित की जाती है, उसके साथ कोई रिश्ता बन जाता है। रिश्ते का अर्थ है—असाधारण घनिष्ठता। परिवार के सदस्य कुटुम्बी और कन्याओं के आदान-प्रदान में सम्बन्धित रिश्तेदार कहलाते हैं, उससे अतिरिक्त लोगों को मित्र कहते हैं, गुरुजन भी। इन्हीं वर्गों में स्वाभाविक प्रेम बढ़ता है। इनके सान्निध्य से सुख और वियोग में दुःख मिलता है। भगवान को प्राप्त करने के लिए उससे प्रेम सम्बन्ध दृढ़ करना होता है और उसके लिए उसे कोई प्रेम-पात्र कुटुम्बी रिश्तेदार अथवा मित्र जैसा सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। इस सम्बन्ध-मान्यता में जितनी अधिक आत्मीयता होगी, उतनी ही प्रति-क्रिया भी मिलेगी। गुम्बज अथवा कुँए की प्रतिध्वनि की तरह हमारा प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम एवं अनुग्रह बनकर हमारे पास वापिस लौटता है। जिस स्तर का भाव या प्यार हम भगवान के प्रति व्यक्त करते हैं, उसी के अनुरूप दीवार पर मारी हुई रबर की गेंद की तरह लौटकर भगवान की अनुकम्पा हमारे पास वापिस आ जाती है। इसलिए भगवान को कोई-न-कोई सम्बन्धी मानकर चलना होता है। उस मान्यता के आधार पर ही हमारी उपासना में प्रगति होती है।

भगवान से कोई भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। उस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक को ही किसी भी आत्मीय भावना के साथ देखा जा सकता है। उसके लिए हर मान्यता उपयुक्त है। कहा भी है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देवः॥

प्रार्थना में जिन सम्बन्धों को गिनाया गया है, उनके माता का सम्बन्ध सर्वप्रथम हैं। वह सर्वोपरि है, क्योंकि माता से बढ़कर परम निःस्वार्थ, अतिशय, कोमल, करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई रिश्ता हो ही नहीं सकता है। जब हम भगवान को माता मानकर चलते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया किसी सहृदय माता के रूप मे ही उपलब्ध होती है। इस उपलब्धि को पाकर साधक धन्य हो जाता है।

पिता से माता का दर्जा सौ गुना अधिक बताया गया है। यों पिता भी बच्चों को प्यार करते हैं, पर उस प्यार का स्तर माता की तुलना नहीं कर सकता। इसलिए सबमें भगवान को माता मानकर चलना अपने ही हित में है। इसमें अपने को ही अधिक लाभ होता है।

नारी के प्रति मनुष्य में एक वासनात्मक दुष्टता भी जड़ जमाये बैठी रहती है। यदि इसे हटाया जा सके—नर और नारी के बीच कामकौतुक की कल्पना हटाई जा सके, तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावात्मक रसायन बन सकती हैं। नर और नारी के बीच 'रयि' और 'प्राण' विद्युत धारा-सी बहती है, उनका सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है जैसा कि बिजली के 'नेगेटिव' और 'पोजेटिव' धाराओं के मिलन से विद्युत सञ्चार का माध्यम बन जाता है। माता और पुत्र का मिलन एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की आध्यात्मिक विद्युत-धाराओं का सृजन करता है। मातृ-स्नेह से विहीन बालकों में एक बड़ा मानसिक अभाव रह जाता है, भले ही उन्हें अन्य सांसारिक सुविधाएँ कितनी ही अधिक क्यों न हों। पत्नी, बहिन, पुत्री आदि के रूप में भी नारी नर को महत्वपूर्ण भावात्मक पोषण प्रदान करती है और उसकी मानसिक अपूर्णता को पूर्ण करने में सहायक होती है। यह सांसारिक स्तर की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बात उपासना के भावना क्षेत्र में लागू होती है। माता का नारी-रूप ध्यान भूमिका में जब प्रवेश करता है, तो उससे प्राण की एक बड़ी अपूर्णता पूरी होती है।

युवती नारी के रूप में माता का ध्यान करके हम नारी के प्रति वासना-दृष्टि हटाकर पवित्रता का दृष्किोण जमाने का अभ्यास करते हैं। इसमें जितनी ही सफलता मिलती है, उतना ही बाह्य जगत में भी हमारा नारी के प्रति वासना-दृष्टि रखने में मन हटता जाता हैं। इस प्रकार नर-नारी के बीच जिस पवित्रता की स्थापना हो जाने पर अनेक आत्मिक बाधाएँ, कुण्ठाएं एव विकृतियाँ दूर हो सकती हैं, उसका लाभ सहज ही मिलने लगता है। माता का ध्यान एक वृद्ध नारी का नहीं वरन् एक युवती का होता है। युवती में यदि उत्कृष्ट तथा पवित्र दृष्टी रखी जा सके, तो समझना चाहिए कि आत्मिक स्तर सिद्ध योगियों जैसा तेजस्वी बन गया। उपासना में इस महाशक्ति को नारी रूप देकर इस एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया हैं।

व्याकरण की दृष्टि में शक्ति स्त्रीलिंग है। इसलिए यदि ध्यान-कल्पना में उसे नारी रूप में निश्चित किया जाय तो उसमें अनुचित कुछ भी नहीं है। सच तो मह है कि शक्ति-तत्व को स्त्री-पुरुष के वर्गों में विभक्त ही नहीं किया जा सकता। यह विभाजन तो शरीरधारी प्राणियों में सन्तानोत्पत्ति प्रयोजन के लिए होता है। दिव्य शक्तियाँ न तो शरीरधारी हैं और न उन्हें प्रजनन ही करना है ऐसी दशा में उनमें वास्तविक लिग-भेद नहीं। उन्हें नर-नारी के रूप में तो ध्यान सुविधा के लिए ही चित्रित किया जाता है अथवा भाषा में जिस प्रकार का लिग प्रयुक्त होता है, उसी आधार पर उनका शरीर बना दिया जाता यह बस्तु वास्तविक नहीं वरन् मानवीय कल्पना का खेल है।

अग्नि स्त्री-लिंग है, तेजस् पुल्लिग है। शब्दों में लिंग-भेद है पर वस्तु एक ही है। वायु स्त्री-लिग और मरुत पुल्लिग। बात एक ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, पर शब्दों के आधार पर लिंग वदल गया उपवन पुल्लिग है, स्त्री-लिंग—एक ही चीज के दो स्वरूप ।शैय्या और पलंग एक होते हुए भी लिग पृथक् है । चन्द्रमा को हिन्दी में नर और अंग्रेजी में नारी मानते हैं । वस्तुतः चन्द्रमा एक ही ग्रह पिंडमात्र है, वह नर है न नारी भाषा और कल्पना में उसे नर-नारी के रुप में खीचा जाता है । परब्रह्म की सर्वोपरि शक्ति को स्त्री कहा जाय या पुरुष, यह हमारी भाषा और कल्पना पर निर्भर है । वस्तुत: वह लिंगभेद से परे है । उपासना में शक्ति की तुलना रुप में करके हम अपना ही साधनात्मक एवं भावनात्मक प्रयोजन पूर्ण करते हैं । अतएव इसमें सन्देह तथा विवाद की कोई गुञ्जाइश नहीं है ।

नर की जननी होने के कारण वस्तुत: नारी उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं पवित्र है । उसका स्थान सम्भवतः वहुत ऊँचा है । माता का पूज्य स्थान उससे भी ऊँचा है । पुरुष की अपूर्णतायें नारी के स्नेह के सिंचन से ही दूर होती हैं । अनादि काल से भारतीय धर्म में ऐसी मान्यता चली आ रही है । यहाँ माता को ही नहीं पत्नी को भी पति से अधिक एवं प्रथम स्थान मिला है । पति-पत्नि के सम्मिलित नामों में पत्नी की प्राथमिकता है । लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधेश्याम, उमा-महेश, शची-पुरन्दर, माता-पिता, गंगा-सागर आदि नामों में पत्नी को ही प्राथमिकता मिली है । कारण उसकी वरिष्ठता ही है । इस तरह से भी यदि देवता का पुल्लिग स्वरुप अधिक उत्तम है या स्त्रीलिंग स्वरुप, तो उसका सहज उत्तर नारी के ही रुप में आयेगा । ऐसी दशा में यह शंका करना उचित नहीं ।

शक्ति को नारी का रुप देकर उसे भी पूज्य स्थान पर बैठाया गया है, उसमें कुछ अनुचित नहीं हुआ है ।

उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि में अगणित शास्त्रीय प्रमाण मिलते हैं. उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।
उपासकानां सिद्धयर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।

"परब्रह्म की सभी शक्तियाँ अचिन्त्य और निर्गुण हैं । स्वरूपों को उपासकों को समझाने के उद्देश्य से ऋषियों ने उनके रूपों की कल्पना करके मूर्ति को यों बनाया है ।"

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गा प्रभवत्यज ।
दृश्यादृश्य विभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा ।।

नाऽहं नारी पुमांश्चाहं न क्लीवं सर्गसंक्षये ।
सर्गे सति विभेदः स्यात् कल्पितोऽयं धिया पुनः ।।
अहं बुद्धिरह श्रीश्च धृतिः कीर्ति स्मृतिस्तथा ।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ।

—देवी भागवत

"उत्पत्ति के समय सृष्टि के अर्थ से ही भेद प्रतीत होता है । यह दृश्य:अदृश्य का विभेद—द्वैतवाद सदैव रहता है अर्थात् सृष्टि-दशा में ब्रह्म और शक्ति दोनों स्वतन्त्र रूप से प्रकट होते हैं । प्रलय हो जाने पर न मैं स्त्री हूँ, न पुरुष और न क्लीव हूँ । केवल सृष्टिकाल में ही बुद्धि द्वारा कल्पित भेद-दृष्टि में आता है । सृष्टि की विकास-अवस्था में ही बुद्धि श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा पिपासा और क्षमा मैं ही हूँ ।"

अरूपं भावनागम्यं परं ब्रह्म कुलेश्वरि ।
अरूपां रूपिणीं कृत्वा कर्मकांडरता नरः ।।

—कुलार्णव तन्त्र

"यह ईश्वरी शक्ति अरूप और केवल भावनागम्य है । पर कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य उस अरूप में से ही रूप की कल्पना कर लेते हैं ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगत्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ।
गरीयसीति जगति माता शतगुणैः पितु ॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

'जगज्जनी प्रकृति है और जगत् का पिता पुरुष है। जगत में पिता से सौ गुना अधिक महत्व माता का है।'

न बाला न च त्वं वयस्था न वृद्धा,
न च स्त्री न षण्ढ पुमानैव च त्वम् ।
सुरो नासुरो नरो वा नारी,
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

—महाकाली स्तवन

'हे महामाया ! न तुम बालिका हो, न वयस्क हो न वृद्ध हो, स्त्री, क्लीव और पुरुष भी तुम नहीं हो, न देवता हो, न दानव हो, न नर हो, न नारी हो, तुम केवल परब्रह्मस्वरूपिणी हो।'

अचिन्त्यापि साकारशक्तिस्वरूपा,
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठान सत्वैकमूर्तिः ।
गुणातीतानिर्द्वन्द्व बोधैकगम्या,
त्वमेका परब्रह्म रूपेण सिद्ध ॥

—महाकाली स्तवन

'तुम अचिन्तनीय होते हुए भी साकार मूर्तिरूपा हो। प्रत्येक प्राणी में सत्वगुण रूप में विराजमान रहती हो तथा गुणातीत हो। केवल तत्वज्ञान से ही तुम जाती हो। तुम परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हो।'

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं,
कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं,
जातो भवति विश्वतो मुखः ॥

—श्वेत० ४।३

'तू स्त्री है, तू पुरुष भी है, तू कुमार और कुमारी है, तू वृद्ध

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होकर लाठी के सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है।'

सा च ब्रह्म स्वरूपा च नित्या स च सनातनी ।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता ।।
अतएव हि योगीन्द्रे स्त्री-पुम्भेदो न मन्यते ।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् सदसद् तदपि नारद ।।

—देवी भाग० ६।१।१०।११

'वही ब्रह्म प्रकृतिस्वरूपा, नित्या और सनातनी है। परब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण उस प्रकृति में निहित हैं जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति सदैव रहती है। इसी से परम योगीगण स्त्री-पुरुष में भेद नहीं मानते। हे नारद! वे कहते हैं कि सत्-असत् जो कुछ भी है, सब मय है।'

'कामधेनु-तन्त्र' में कहा है कि—

युवती सा समाख्याता सा महाकुण्डली परा ।

अर्थात् 'वह परा जैसी महाकुण्डली युवती के रूप में कही गई है।'

स तस्मिन्नेवाकशे स्त्रियामाजगाम बहुशोभः मानामुमांहैमवतीम् ।

'इन्द्रादि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने को ब्रह्मस्थान में जो प्रतिमा प्रकट हुई, उसी स्त्री-मूर्ति का दर्शन इन्द्र को हुआ।'

जगद्धात्रीं महामायां ब्रह्मरूपां सनातनीम् ।
द्रष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवताप्सरकिन्नराः ।।

—विष्णु पुराण

'जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी महाशक्ति को देखकर देवगण, गन्धर्व अप्सरा किन्नर सब परम हर्षित हुए।'

जयखिला सुराराध्ये जय कामेशि कामदे ।
जय ब्रह्ममयि देवि ब्रह्मानन्द रसात्मिके ।।

—ललितोपाख्यान ८।२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'हे महादेवि ! तुम ही समस्त देवताओं की आराध्या हो, तुम्हीं सर्व कामनाओं की ईश्वरी और उनको पूर्ण करने वाली हो।'

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधा स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥
कार्यार्थे सगुणो त्वं परसानुग्रहाविग्रहा।
परब्रह्म स्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥
तेज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥

—ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृति २१६।७।१०

तुम्हीं विश्व-जननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम निर्गुण हो तथापि प्रयोजन-वश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। परम तेजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रय-रहित हो। तुम सर्वज्ञ, सब प्रकार से मंगल करने वाली और सर्वमंगलों की मंगल हो।'

कथं जगत् किमर्थं तत् करोषि केन हेतुना।
नाहं जानामि तद्देव यतीहं हि त्वदुद्भवः ॥

—शक्ति-दर्शन

'हे देवी ! तुम किसके लिए, किस हेतु जगत् की सृष्टि करती हो— मैं इस बात को नहीं जानता, क्योंकि मैं तुमसे उत्पन्न हूँ।'

मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।

—शक्तितत्व-विमर्शिनी

'जीव और ईश्वर दोनों माया रूपी कामधेनु के दो बछड़े हैं।'

उपरोक्त प्रमाणों में परब्रह्म को नारी-रूपमें चित्रण करने का रहस्य प्रकट किया गया है। नर और नारी में से किसे प्राथमिकता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में नृतत्व-विज्ञान का जीवविज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता है। शोधकर्ता इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्राथमिकता नारी को ही है। पहले भूमि बनी, बीजों का आविर्भाव उपरान्त हुआ।

नृतत्ववेत्ता 'हेवलांक ऐलिस' इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव जाति का आरम्भ नारी से ही होता है। पुरुष का अस्तित्व पीछे प्रकाश में आया। उन्होंने लिखा है—

प्राथमिकता और प्रकृति के नियमानुसार पहले नारी की ही उत्पत्ति हुई। साधारणतया प्राणीमात्र की उत्पत्ति नारी जाति पर ही अवलम्बित है। प्राणी जगत् की सृष्टि के लिए पुरुष की आवश्यकता ही न थी अथवा गौण थी। रज और वीर्य के संयोग से विभिन्न गुणों द्वारा जीवन-शक्ति को परिपुष्ट एवं प्रस्फुटित करने के हेतु लाभ की दृष्टि से पुरुष का पीछे से विकास हुआ।'

नारी में देवत्व की मात्रा पुरुष की तुलना में कहीं अधिक है। इसलिए जहाँ पुरुष को अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता होने पर ही पूज्य पद एवं सम्मान मिलता है, वहाँ नारी को उसकी जननी, भगिनी, कन्या आदि विशेषताओं के कारण जन्मजात सम्मान मिल जाता है। उनके हृदय में वह विशालता विद्यमान है जिसके आधार पर शिशु को अपने शरीर का रस निचोड़ कर प्रदान कर सकती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण मानवी होते हुए भी उसे देवी कहा जाता है। अधिकांश स्त्रियों के नाम के अन्त में देवी पद जोड़ा जाता है जैसे कि शकुन्तला देवी, उर्मिला देवी, भगवती देवी आदि।

शास्त्र कहते हैं—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः।

—चरक संहिता-चि० स्था० अ० २

'प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियों में ही होता है। सन्तान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की जननी भी वे ही होती हैं। धर्म स्त्रियों में रहता है, लक्ष्मी भी स्त्रियों में रहती है। इसलिए संसार स्त्रियों में ही स्थित है।'

नारी-रूप में परमात्मा का दिव्य दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं। इस प्रकार की दिव्य दृष्टि जिसे प्राप्त है, उसे सच्ची आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त हुई समझनी चाहिए। शक्ति उपासना में नारी-प्रतिमा को वन्दनीय मानकर मनुष्य को पवित्रतम बनाने का प्रयत्न किया गया है। नारी वस्तुतः मूर्तिमान महामाया ही है। देखिए-

जननी जन्मकाले च स्नेहकाले च कन्यका।
भार्या भोगाय सम्पृक्ता अन्तकाले च कालिका।
एकैव कालिका देवी विहरन्ती जगत्त्रये ।।

'यही महामाया जननी रुप में हमको जन्म देती है, कन्या-रुप में हमारी स्नेह की पात्र बनती है, भार्या के रुप में भोगदात्री बन जाती है और अन्त समय में कालिका के रुप में हमारी इहलीला संवरण कर देती है। इस प्रकार एक ही महादेवी तीनों लोकों में विचरण करती रहती है।'

तन्त्र ग्रन्थों में नारी को भगवान की मूर्तिमान प्रतिमा मानकर विधिवत् पूजा करने का विधान है। विभिन्न आयु तथा स्थिति की नारियों को विभिन्न देवियों के रुप में पूजनीय मानकर उनका वन्दन-अर्चन किया जाता है। ब्राह्मण भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य माना जाता है। नवरात्रियों में पुरश्चरणों के अन्त में तो विशेष रुप से कन्या-भोजन कराने की ही परम्परा है। ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्या एवं सेवा के आधार पर ही ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं, पर कन्याओं में वह जन्मजात रुप से स्वभावतः अनायास ही विद्यमान रहता है।

कुमारी कन्याओं तक ही यह दिव्य भाव सीमित नहीं माना गया है, वरन् उसका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। प्रत्येक नारी में देवत्व की मान्यता रखना और उसके प्रति पवित्रतम श्रद्धा रखना एवं वैसा ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यवहार करना उचित है, जैसा कि देवी-देवताओं के साथ किया जाता है। नारी मात्र को भगवती की प्रतिमा मानकर जब साधक के हृदय को पवित्रता का अभ्यास हो जाय तो समझना चाहिए कि उसके लिए परम सिद्धि की अवस्था अब समीप है। शास्त्र उसी प्रकार की मनोभूमि बनाने का हमें निर्देश करते हैं और बताते हैं—

सर्वस्त्रीनिलया, जगदम्बामयं पश्य स्त्रीमात्रमाविशेषतः।

'स्त्री-मात्र को जगत्माता और जगत्गुरु मानकर पूजो।'

विद्यासमस्तास्तव देव भेदाः।
स्त्रियः समस्तासकला जगस्तु।
त्वयैकया पूरितमम्ब वैतत्,
वास्ते स्तुतिः स्तव्य परापरोक्ति॥

'इस सम्पूर्ण संसार में जो परा-अपरा विद्याएँ हैं, सो आपका ही भेद हैं। इस संसार में समस्त नारियाँ आपका ही भेद है। संसार में समस्त नारियाँ आपका ही रुप हैं।'

या काचिदङ्गना लोके सा मातृ कुलसम्भवा।
कुप्यन्ति कुलयोगिन्यः वनितानां व्यतिक्रमात्॥
स्त्रियं शतापराधाञ्चेत् पुष्पेणापि न ताडयेत्।
दोषान्न गणयेत् स्त्रीणां गुणानैव प्रकाशयेत्॥

'इस संसार में जो भी कोई नारी हैं, वे सब माता के समान होती हैं अर्थात् मातृत्व शक्ति सम्पन्न होने के कारण मातृसम आदर की पात्र होती हैं। यदि स्त्रियों का समादार नहीं होता है और कोई भी व्येति-क्रम किया जाता है, तो कुलयोगिनी कुपित हो जाती हैं। यदि स्त्री के सौ अपराध हों, तो भी उसे पुष्प से भी ताड़ित नहीं करना चाहिए। स्त्रियों के दोषों को भी ध्यान में नहीं लाना चाहिए और उनके विशेष गुणों का ही प्रकाशन करते रहना चाहिए।'

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्र नार्यो न पूज्यन्ते श्मशानं तत्र वैगहम्॥ —मनु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ नारी का तिरस्कार होता है वह घर निश्चय ही श्मशान है।'

स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौठिल्य चा प्रियं वचः।
आत्मनो हितमान्विचछन्देवीभक्तो विवर्जयेत् ।।

'अपना कल्याण चाहने वाला, माता का उपासक स्त्री की निंदा न करे, न उन्हें मारे, न उससे छल करे, न उनका जी दुखाये।'

नारी मात्र के प्रति उच्च भावना रखने और उनके साथ सहृदय सद्व्यवहार करने से व्यक्ति एवं समाज का सर्वांगीण उत्कर्ष हो सकता है। भावनात्मक पवित्रता से बढ़कर मनुष्य के पास और कोई श्रेष्ठता हो नहीं सकती।

जब हम भगवान को माता के रुप में पूजते हैं तो वे भी हमारे लिए माता जैसा वात्सल्य लेकर प्रस्तुत होते हैं। कहना न होगा कि पिता की तुलना में माता का हृदय अत्यधिक कोमल होता है वह अपने पुत्र एवं भक्त के प्रति सहज ही करुणार्द्र हो उठती है। माता की शरण लेने वाला अपेक्षाकृत सदैव ही अधिक लाभ में रहता है। ऐसे उदाहरण भी हैं—

पिते वत्वत्प्रेयाजननि परिपूर्णागसि जने।
हित स्रोती वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधीः ।।
किं येतन्निदोषः व इहं जगतीति त्वमुचितैः।
रूपायै विस्यार्य स्वजनयसि माता तद सिनः ।।

—पाराशर भट्ट

'परम पिता परमात्मा जब अपराधी जीव पर पिता के समान कुपित हो जाते हैं, तब आप ही उन्हें समझाती हो कि—यह क्या करते हो? इस संसार में पूर्ण निर्दोष कौन है? उनका क्रोध शांत कर आप ही उनमें दया उपजाती हैं। इसलिए आप ही हमारी दयामयी माता हैं।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा ।
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥

—रामायण

'जब कालरूपी जयन्त तीनों लोकों में आश्रय न पाकर रामचन्द्रजी की शरण आकर दूर पड़ गया, तो जानकीजी ने उसका सिर रामचन्द्र जी के पैरों में रखकर उसकी रक्षा की प्रार्थना की ।'

अस्तु, नारी को हेय या छोटा मानकर उसे पूजा के अयोग्य होने की कुशका देन में नहीं उठने देनी चाहिए और यह सोचना चाहिये कि पुंल्लिग देवता का पूजन मातृ-पूजन से अधिक उत्तम है । माता ही प्रथम देवता हैं । माता की शरण लेकर हम अपने ऊपर चढ़ी हुई चिन्ताओं, कुण्ठाओं, दैन्य-दुर्भावों एवं शोक-सन्तापों से छुटकारा पा सकते हैं ।

—×—

कुमारी पूजन का उद्देश्य

आधार और उद्देश्य—

कुमारी-पूजन का महत्व भारतवर्ष में प्राचीन-काल से प्रतिष्ठित रहा है । भारत अध्यात्मवादी देश है । प्रत्येक क्रिया जिसका अध्यात्म से सम्बन्ध है, यहाँ उच्च सम्मान की पात्र रही है । जहाँ पेड़, पौधों जलाशयों तक की पूजा-अर्चा होती हो, वहाँ सात्विक की प्रत्यक्ष मूर्ति-कुमारी की कैसे उपेक्षा की जा सकती है । उसे उच्च आसन पर बिठाना हमारे उच्च सिद्धान्तों का ही प्रतीक है । देवी-देवताओं की आराधना में हमारा उद्देश्य ईश्वर के किन्हीं विशिष्ट गुणों को अपने में ओत-प्रोत करना होता है । जब मूर्ति-पूजा से हम गुणों के आकर्षण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं, तो क्रियाशील आराध्य तो शीघ्र फलदायी सिद्ध हो सकता है ।

शास्त्रों में ईश्वर को सनातन-कुमारी माना गया है । श्वेता—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्वतरोपनिषद् (४।३) में ईश्वर को स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी सभी की संज्ञा दी गई है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

क्योंकि—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदायस्तत् प्रजापतिः।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४२

'वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही नक्षत्र है, वही जल और प्रजापति है तथा ब्रह्म भी वही है।'

सब में विभु को देखने वाला कुमारी में भी अपने इष्टदेव के दर्शन करता है। एक विद्वान ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में अपने भावों को अभिव्यक्त किया है।

'ईश्वर ही सनातन कुमारी है जो खिले हुए कमलों के गुच्छे के समान नवीन और कोमल है और जिसके नेत्र रूपी कमल विश्वरूपी जल में तैरते रहते हैं। वह मनुष्यों की ओर प्रेमपूर्ण और करुणा भरी दृष्टि से देखती है और उसकी वाणी में सन्ध्याकालीन मन्द-मन्द वायु का सुकोमल संगीत भरा हुआ है। जब मनुष्य की आँखें उसकी आँखों के स्पर्श में आती हैं और उसके अधरो पर शब्द थिरकने लगते हैं, तब वह उसकी आत्मा को अपने में और अपनी आत्मा को उसके अन्दर देखने लगता है। यहाँ तक कि उसका पुरुष-भाव भी मिट जाता है और संसार के सभी पदार्थ मधुर और कोमल हो जाते हैं।'

ईश्वर की कुमारी के पवित्र रुप में उपासना करना एक विशिष्ट जीवन-पद्धति है, जो नैतिक व आध्यात्मिक गुणों का विकास करने के साथ मनोविकारों और दुष्प्रवृत्तियों के शमन में भी सहायक सिद्ध होती है। ऐसा साधक नारी को भोग की सामग्री नहीं, पवित्रता की मूर्ति मानता है। जहाँ भी इसके दर्शन होते हैं, उसका मस्तक स्वतःझुक जाता है इसके विपरीत जिस मन में नारी के प्रति बुरे भाव उत्पन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो जाते हैं वह आत्मघाती तो है ही, सामाजिक न्याय से भी पापी ठहरता है। वह अपने शरीर, मन, आत्मा, समाज और राष्ट्र सभी के साथ विश्वासघात करता है। विषय-वासनाओं का 'गीता' में इस प्रकार दुष्परिणाम घोषित किया है—

विषयों को चिन्तन करने वाले पुरुष का इन विषयों में संग बढ़ जाता है। फिर इस संग से यह वासना उत्पन्न होती है कि हमको काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और इस काम की तृप्ति होने में विघ्न होने से) काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध से संमोह अर्थात् अविवेक होता है, सम्मोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से (पुरुष का) सर्वस्व नाश हो जाता है। (२।६२-६३)

ऋषि मानव-मन का विश्लेषण और अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचे थे कि साधारण व्यक्तियों में पुराने संस्कारों-वश पशुभाव का आधिपत्य रहता है। थोड़ा सा भी उत्तेजक कारण मिलने पर वह उस ओर प्रवृत्त होने लगते हैं। अतः उन्हें एक मनोवैज्ञानिक मोड़ देना ही उचित है। व्यवहार में देखा गया है कि काम जीवन के किसी भी मोड़ पर व्यक्ति को पथभ्रष्ट कर सकता है। बड़े-बड़े ऋषि भी इसका शिकार हो चुके हैं। इससे तो तभी बचा जा सकता है, जब व्यक्ति का मन पूर्ण रुप से संस्कारित हो चुका होता है और वह अपने चारों ओर सत्यं शिवं सुन्दरं के ही दर्शन करता है। नारी को पवित्र रुप में देखना एक उच्च साधना है, जो उसे आत्मिक उत्थान की ओर तीव्र गति से ले जाने में सहायक होती है। देवी का उपासक पतन से सुरक्षित रहता है यह साधना की आवश्यक प्रक्रिया है यदि इसका पालन न हो सके तो मार्ग में अनेकों प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं।

शक्ति रूपिणी—

कुमारी शक्ति, सिद्धि, तेजस्विता, सात्विकता, पवित्रता, शालीनता व कोमलता की प्रतिमूर्ति है। आसुरी तत्व उसमें पनप नहीं सकते। यदि वह ऐसा साहस करते हैं, तो वह उनका भक्षण कर जाती है, उन्हें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नष्ट कर देती है, उसका तेज इतना प्रचण्ड है। योगिनी तन्त्र में इस सम्वन्ध में एक प्रेरक कथा आती है—

ततः काली करास्या द्विजकन्यास्वरूपतः।
गत्वा कोलापुरं देवी कोलासुर समीपतः।
तमयाचत् तद्भक्ष्यं कुमारी दैत्य पुङ्गवम् ॥

"एक समय की बात है कि करालवदनी महाकाली ने ब्राह्मण कन्या का रूप धारण कर कोलासुर के कोलापुर में पहुँच कर उस दैत्य से भोजन माँगा।"

मातृतातविहीनाय सहायपरिर्वाधिता।
क्षुधिताह महाराज भोज्य मह्यं प्रदीयताम् ॥

वह बोली—'मैं माता पिता विहीना एवं असहाय कन्या हूँ। हे राजन्! मुझे भोज्य पदार्थ दीजिये।"

ततः कोलासुरो देवि मायया परिमोहितः।
दयया तां करे घृत्वा विवेशान्तः पुरे स्वयम्।

"उस कुमारी पर कोलासुर मोहित हो गया और हाथ पकड़ कर उसे अपने अन्तःपुर में ले गया।"

उवाच भोज्यं दास्यामि तुभ्यं तत्तो समीप्सितम्।
अत्रोपविश वाले त्वमासने मणिरञ्जिते।

"और कहने लगा हे बाले! तुम्हारी जो इच्छा हो, वही भोजन मैं तुम्हें दूँगा। इस मणि जटित आसन पर आकर बैठो।"

इत्युक्त्वसौ ददौ भोज्यं नानाविधमनेकशः।
भुक्त्वा सा सकल देवि पुरर्देहीर्ति वादिनी ॥
पुनर्ददौ बहुतरं तच्चापि वभुजे स्वयम्।
नाहं तृप्ता यदन्ती तां तदोवाच महासुरः ॥
यथा तृप्तिर्भवेद्बाले तावद्धि कुरुतत्तथा।
इत्युदीरितमाकर्ण्य काली बालस्वरूपिणी ॥
कौषं हयं हवं हस्तिनंच रथं सैन्यं सबान्धवम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षणेन बभजे काली कोलं चापि महाबलम् ।।

"यह कहकर दैत्यों ने अनेक प्रकार के भोज उसे दिये, बालिका ने उन्हें खाकर कहा—इनसे मैं तृप्त नहीं हुई, अभी और भोजन दो। दैत्य ने फिर बहुत-सा भोजन दिया और उसे भी खाकर बोली कि—मैं इससे भी तृप्त नहीं हुई। यह सुनकर दैत्य कहने लगा कि जिससे तुम्हारी तृप्ति हो सके, वही भक्षण करलो। यह सुनकर बालरूपिणी काली ने उसका कोष, अश्व, हाथी, रथ, सेना, बान्धव आदि का भक्षण कर कोला सुर का भी भक्षण कर लिया।"

अथासुराँस्तथा नष्टान् द्रष्ट्वा विष्णुमुखाः सुराः ।
निरन्तरे पुष्पवृष्टिः चक्रिरे ननृतुः परम् ।।
जगुः सुललितं गीतं देवगन्धर्वकिन्नराः ।
विद्याधरी देवपत्नी किन्नरीभिः समन्ततः ।।

"फिर विष्णु आदि देवताओं ने सब शत्रुओं का संहार हुआ देखकर पुष्प वृष्टि की। देव, गन्धर्व, किन्नर एवं विद्याधरी किन्नरियाँ और देव-पत्नियाँ हर्षातिरेक में नृत्य करने लगीं।"

पूजिता तैः कुमारी सा कुसुमैर्नन्द्रनोद्भवैः ।
सर्वलोकैः पूजिता च कुमारी सा दिने दिने ।

"फिर सबने नन्दन वन में उत्पन्न पुष्प और चन्दनादि से उन कुमारी का पूजन किया। फिर सभी के यहाँ कुमारी की पूजा होने लगी।"

इस कथा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि कुमारी में स्वभाविक रूप में इतनी शक्ति होती है कि वह अवगुणों व दुष्प्रवृत्तियों को नष्ट कर डालती है। कुमारी-पूजन से साधक में भी यह शक्ति अवतरित होती है। इस शक्ति के विकसित होने पर ही प्रगति का मार्ग प्रशस्त होना सम्भव है। हिन्दू धर्म के कुमारी पूजन का यही कारण है तन्त्रो ने भी इसे साधना के रूप में अपनाया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साधु-वेला तीर्थ में देखा जा सकता है, जहाँ दोनों नवरात्रों में अष्टमी के दिन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नियमपूर्वक कुमारी-पूजन होता है। ब्राह्मण-भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य माना गया है। नवरात्रियों में पुरश्चरणों के अन्त में विशेष रुप से कन्या-भोजन कराने की ही परम्परा है। ब्राह्मण तो विद्या तपश्चर्या एवं सेवा के आधार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं पर कन्याओं में वह तत्व जन्मजात रुप से स्वभावतः अनायास ही विद्यमान रहता है।

कुमारी लक्षण—

कुमारी किसे माना जाए ? इस पर शास्त्रों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। बृहज्योतिषाणव, धर्मस्कन्ध ८, उपासना स्तम्भ ३, अध्याय ६२८ में कुमारी का निरुपण किया गया है और पूजा योग्य कुमारी के लक्षण बताये गये हैं—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थ तां विवर्जयेत् ।
गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥
द्विवर्षोत्तरमारभ्य दशवर्षावधि क्रमात् ।
पूजयेत्सर्वकार्येषु यथाविध्युक्तमार्गतः ॥
कुमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा च त्रिमूर्तिनी ।
चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी ।
षड्वर्षा तु भवेत्काली सप्तवर्षा तु चण्डिका ।
शांभवी चाष्टवर्षा तु दुर्गा तु नवमो स्मृता ॥
दशवर्षा सुभद्रेति नामाभिः परिकीर्तिताः ।
तत्तत्कापनया वयोऽवस्था विशेषेण पूजनम् ।
दुःख दारिद्रयनाशीय शत्रूणां नाशहेतवे ॥

"दो वर्ष की आयु वाली कन्या से लेकर १० वर्ष की अवस्था तक की कुमारी ही पूजा के योग्य मानी गई है। एक वर्ष की कन्या को गन्ध पुष्पादि से कोई प्रीति नहीं होती है। अतः वह पूजा के योग्य नहीं होती। दो वर्ष की कन्या कुमारिका होती है। तीन वर्ष की आयु वाली त्रिमूर्तिनी कही जाती है। चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी छः वर्ष की कालिका, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाम्भवी, नौ वर्ष की अवस्था वाली कन्या दुर्गा का अवतार कही जाती है और दश वर्ष की सुभद्रा के नाम से तान्त्रिकों के यहाँ प्रसिद्ध है। तन्त्र-साधना में उसी अवस्था वाली कन्या का पूजन करना चाहिए। दुःख और दरिद्रता का नाश करने के लिए तथा शत्रुओं के विनाशार्थ और आयुष्य एवं बल की वृद्धि के लिए कुमारिकाओं का पूजन होता है। उक्त कामनाओं के लिए दो वर्ष की कन्या का अर्चन करना चाहिए।

अन्य तन्त्रों में इस प्रकार वर्णन है—

'एक वर्ष वाली वालिका 'कुमारी' कहलाती हैं दो वर्ष वाली 'सरस्वती', तीन वर्ष वाली विधामूर्ति, चार वर्ष वाली 'कालिका', पाँच वर्ष की होने पर 'सुभगा', छः वर्ष की 'उमा', सात वर्ष की 'मालिनी' आठ वर्ष की 'कुब्जा', नौ वर्ष की 'काल सन्दर्भा', दसवें में 'अपराजिता ग्यारहवें में 'रुद्राणी', बारहवें में 'भैरवी', तेरहवें में 'महालक्ष्मी' चौदह पूर्ण होने पर पीठरायिका', पन्द्रहवें में 'क्षेत्रजा', और सोलहवें में 'अम्बिका', मानी जाती हैं। इस प्रकार जब तक ऋतु का उद्गम न हो, तभी तक क्रमशः संग्रह करके प्रतिपदा आदि से लेकर पूर्णिमा तक, वृद्धि-भेद से कुमारी पूजन करना चाहिए।

—रुद्रयामल, उत्तराखण्ड ६ पटल

'आठ वर्ष की बालिका गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या कही गई है। इसके वाद वही महामाया और रजस्वलता भी कही गई है। बारहवें वर्ष से लेकर वीसवें वर्ष तक वह सुकुमारी कही गई है।'

—विश्वसार-तन्त्र

यजमान को चाहिए कि दस कन्याओं का पूजन करे। उनमें से भी दो वर्ष से लेकर दस वर्ष तक की अवस्थाओं की कुमारियों का ही पूजन करना चाहिए। जो दो वर्ष की आयु वाली हैं वह कुमारी, तीन वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, छः वर्ष की कालिका, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नौ वर्ष की दुर्गा और दश वर्ष की सुभद्रा कही गई है इसका मन्त्रों द्वारा पूजन करना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए। एक वर्ष वाली कन्या को पूजा से प्रसन्नता नहीं होगी। अतः उसका ग्रहण नहीं है और ग्यारह वर्ष से ऊपर कन्याओं का पूजा में ग्रहण वर्जित है।'

—मन्त्रमहोदधि १८ पर

'जो कुमारी को अन्न, वस्त्र, जल अर्पण करता है, उसका वह अन्न मेरु के समान और जल समुद्र के समान अक्षुण्ण और अनन्त होता है। काली-तन्त्र में कहा गया है—'सभी बड़े-बड़े पर्वों पर अधिकतर पुण्य मुहूर्त में और महानवमी की तिथि को कुमारी पूजन करना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए कुमारी पूजन अवश्य करे।'' बृहन्नीलतन्त्र के अनुसार—'पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, भय और अत्यन्त उत्कट शत्रु को भी नष्ट कर डालती हैं।'' रुद्रयामल में लिखा है 'कुमारी साक्षात् योगिनी और श्रेष्ठ देवता हैं। विधियुक्त कुमारी को अवश्य भोजन कराना चाहिए। उसे पाद्य अर्घ्य कुंकुम और शुभ चन्दन आदि अर्पण करके उसकी पूजा करे।''

तस्माच्च पूजयेद्बालां सर्वजातिसमुद्भवाम्।
जातिभेदो न कर्तव्यः कुमारीपूजने शिवे॥

सभी जाति की कुमारियों का पूजन करना चाहिए क्योंकि कुमारी की पूजा में जाति भेद निषेध है।''

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्तते।
विचिकित्सापरो मन्त्रा ध्रुवञ्च पातकी भवेत्॥

''इस कार्य में जो मनुष्य जाति भेद का विचार करता है, वह नरक में गिरकर उठ नही सकता। यदि मन्त्रवान मनुष्य कर्म करने में सन्देह करे तो वह पापी होता है इसे सत्य समझो।''

माहात्म्य—

तन्त्रों में कुमारी पूजा के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। योगिनी-तन्त्र में साधना का फल इस प्रकार बताया गया है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवीबुद्धया महाभक्त्या तस्मात्तां परिपूजयेत् ।
सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः ।

"इसलिए महाशक्ति भाव से और देवी में बुद्धि करके बालिका की पूजा करे । बालिका सर्व-विद्या-रुपिणी है, इसमें संशय नहीं है ।"

एका हि पूजिता बाला सर्वहि पूजितं भवेत् ।
यदि भाग्यवशाद्देवि वेश्या-कुल समुद्भवाम् ।।
कुमारी लभते कान्ते सर्वस्वेनापि साधकः ।
यत्नतः पूजयेन्तां तु स्वर्णरौप्यादिभिर्मुदा ।।

"एक बालिका की पूजा करने से ही सब देवी-देवताओं की पूजा- हो जाती हैं । यदि भाग्य से वेश्या के वंश में उत्पन्न बालिका मिल जाय, तो प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वर्ण, चाँदी आदि सर्वस्व प्रदान करके पूजा करे ।

तदा तस्य महासिद्धिर्जायते नात्र संशय ।।
महासिद्धिर्भवेदस्य स एवं सदाशिव ।।

'ऐसा करने से साधक महासिद्धि को प्राप्त करता है और वह सदा-शिव के समान हो जाता है ।'

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि तच्छ्रृणुष्व प्रियंवदे ।
वपुस्तस्य महेशानि काञ्चन परिजायते ।।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा क्रीडते भैरवोयथा ।

'जो कुमारी की साधना करता है, उसकी देह कञ्चन के समान कांतिवान होती है और सब सिद्धियों से सम्पन्न होकर भैरव के समान क्रीड़ा करने वाला होता है ।'

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिस्तस्य सुनिश्चितम् ।
हठात्तु जायते सर्वं यद्यन्मनसि वर्तते ।।

"वह स्वर्ग मर्त्य पाताल तथा सर्वत्र ही गमन कर सकता है । जब जैसा चाहे वैसा रुप धारण कर सकता है ।"

देवदानव गन्धर्व नाग किन्नर पोषितः ।
विद्याधरी राजनारी सेवन्ते तं दिवानिशम् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'देव, दानव, गन्धर्व, नाग, किन्नरी, विद्याधरी, राजनारी यह सभी कन्या साधक की सेवा करती है।'

अन्ते च प्राप्यते तेन परं निर्वाणमुत्तमम् ।
कुमारीपूजने काले साधकः शिवतां व्रजेत् ॥

साधक अन्त में परम निर्माण पद प्राप्त करता है और कन्या पूजा के समय में उसे शिवत्व की प्राप्ति होती है।

कुमारी पूज्यते यत्र स देशः क्षितिपावनः ।
महापुण्यतमो भूयात्समन्तात्क्रोशपञ्चकम् ॥

'जहाँ कन्या की पूजा होती है, वह स्थान पृथ्वी में पवित्र है। पाँच कोस तक उसमें अपवित्रता नहीं रहती।'

महाराज प्रयत्नेन सर्वसिद्धफलप्रदम् ।
सर्वयज्ञोत्तम भूप कुमारीपूजनं शृणु ॥
कृते यस्मिन्महालक्ष्मीरचिरेण प्रसीदति ।
आमन्त्रयेद्दिने पूर्वे कुमारी भक्तिपूर्वकम् ।
पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम् ।
कुमारीपूजनं कृत्वा महालक्ष्मी प्रसीदति ॥
मण्डले चरणौ तस्याः क्षालयेच्छुभवारिणा ।
अर्चयेद्धे मपात्रेण वारि पुष्पाक्षतैः समम् ॥
सुविताने शुभे स्थाने पङ्कजोपरि पीठके ।
उपवेश्य कुमारीं तां स्वांगे न्यासान्समाचरेत् ।

—वृहज्ज्योतिषार्णव धर्मस्कन्ध, ८, उपासना स्तम्भ २, अध्याय १२८

'हे राजन ! इस चन्डी-पूजा के विधान में कुमारिका के पूजन का बहुत बड़ा महत्व होता है और यह सर्वसिद्धि के फल को प्रदान करने वाला होता है। समस्त यज्ञों से इसे उत्तम बतलाया जाता है। इसके करने पर महालक्ष्मी बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाती है। मण्डल में कुमारिका के चरणों का पहिले शुभ एब शुद्ध जल से प्रक्षालन करना चाहिए। किसी हेमपात्र द्वारा पुष्पाक्षत से उसका अर्चन करे। सुवि-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तान में शुभ स्थान पर पीठ पंकज के ऊपर उस कुमारिका को बैठा कर अपने अङ्गों में न्यास करे।'

विसर्जयेत्कुमारी तां स्वगृहे सत्वनिर्भर: ।
अनेन विधिना भक्त्या कुमारी योऽभिपूजयेत् ।
पृथिव्यां राज्यमाससाद चिवसायुज्यतां व्रजेत् ।
यं यं प्रार्थयते कामं देवनामपि दुर्लभम् ।
कुमारीपूजनं कृत्वा तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
ब्रह्माविष्णु महेशानां कुमारी परमा कला ॥

'इस विधि से जो कुमारी का पूजन करता है, वह पृथ्वी पर राज्य जैसा वैभव पाकर अन्त में शिव की सायुज्यता को प्राप्त होता है। जिस जिस कामना की प्रार्थना साधक करता है, चाहे वे दुर्लभ भी क्यों न हों, कुमारी के पूजन करने से उन सबकी निश्चय ही प्राप्ति हो जाती है।'

आयुष्यबलबृद्धयर्थ कुमारीपूजयेन्नर: ।
आयुष्कामस्त्रिमूर्ति: तु त्रिवर्गस्य फलाप्तये ।
अपमृत्युव्याधि पीड़ादु:खानामपनुत्तये ।
सौख्यधान्य धनारोग्य पुत्रपौत्रादिवृद्धये ।
कल्याणीं पूजयेद्धीमान् नित्य कल्याणवृद्धये ।
आरोग्यसुखकामी च जयकामी तथैव च ।
यशस्कामी नरो नित्यं रोहिणीं परिपूजयेत् ।
विद्यार्थी जयार्थी च राच्यार्थी च विशेषत: ।
शत्रूणां च विनाशार्थं कालिकां पूजयेन्नर: ।
ऐश्वर्य शुभकामो च स्वर्गकामी च यो नर: ।
संग्रामे जयकामो च चण्डिकां परिपूजयेत् ।
दु:खदारिद्रयनाशाय नृपसम्मोहनाय च ॥
महापाप विनाशाय शाम्भवो च प्रपूजयेत् ।
सबलोत्कटशत्रूणां सुग्रसाफन कर्मणि ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुर्गा दुर्ग विनाशाय पूजयेद्यत्नतो बुधः ।
सौभाग्यधन धान्यादिवाञ्छितार्थ फलाप्तये: ।

'जो अपनी आयु की कामना रखता है, वह उसकी पूर्ति के लिए तथा त्रिवर्ग फलों की प्राप्ति के लिए त्रिमूर्तिनी कुमारी का यजन करे। अप-मृत्यु, व्याधि, पीड़ा आदि के दुःखों के नाश के लिए धान्य, सौख्य, आरोग्य, पुत्र, पौत्रादिके लिए कल्याणी नाम वाली कन्या का पूजन करे। इससे नित्य उक्त वस्तुओं की वृद्धि और कल्याण होता है। आरोग्य के सुख तथा जय की कामना वाला और यशोवृद्धि के इच्छुक पुरुष को 'रोहिणी' नाम वाली कन्या का यजन करना चाहिए। विद्या, जय और राज्य की इच्छा वाले को यह पूजन अभीष्टप्रद होता है। शत्रुओं के विनाश करने की कामना वाले को छः वर्ष की आयु वाली 'कालिका' नाम की कन्या का पूजन करना चाहिए। अपने ऐश्वर्य, शुभ स्वर्ग और संग्राम में जय प्राप्त करने का मनोरथ रखने वाले पुरुष को 'चण्डिका' नाम धारिणी सात वर्ष की आयु वाली कन्या का पूजन करना चाहिए। दारिद्रय दुःख के नाश, नृपोंका सम्मोहन और महापापों के नाश के लिए 'शाम्भवी' नाम की कन्या का पूजन करे। सबल और उत्कट शत्रुओं के उग्र दुर्ग के विनाश के लिए दुर्गा का यत्नपूर्वक यजन करना चाहिए। सौभाग्य और धन-धान्य की वृद्धि के लिए तथा वांछित अर्थ की फल-प्राप्ति के लिये और दास दासी की बढ़ोत्तरी के लिए सुभद्रा का यजन करना चाहिए।'

उपरोक्त कन्या पूजन के माहात्म्य को अतिशयोक्ति शैली में भी वर्णन किया गया हो परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रक्रिया में नैतिकता का उच्च मूल्यांकन निहित है। यदि पुरुषों में आरम्भ से ही हम कुमारियों के प्रति पवित्र और उच्च सम्माननीय भाव रखने की शिक्षा-प्रेरणा देने की पद्धति को अपनाएँ, तो कोई कारण नहीं कि पुरुषों में नारी जाति के प्रति कुत्सित भाव उत्पन्न हो सके। आज पत्रिकाओं ने स्वार्थवश कामुक वातावरण बना रखा है। तो इसकी अतीव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आवश्यकता अनुभव हो रही है। इस पूजन को व्यापक रूप में प्रचलित किया जाना चाहिए और इसमें निहित चरित्रगत उच्च भावों का विश्लेषण करना चाहिए। मनु जैसे महर्षियों के मन में भी नारी ने अपनी पवित्रता की धाक जमाली थी, तभी उन्हें कहना पड़ा था कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

अतः कुमारी पूजन को नैतिक उत्थान की एक उत्तम साधना मानना चाहिए।

कुमारीपूजन विधि—

देवी पुराण में विधि का निर्देश इस प्रकार है—

ब्रह्मोवाच

न तथा तुष्वते शक्रः होमदान जपेन तु।
कुमारीभोजने नात्र यदा देवी प्रसीदति।
अत्र नवरात्रे प्रक्षाल्य पादौ सर्वासां कुमारीणां।
च वासव लुलिप्ते भूतले रम्ये तत्रता आसन स्थिताः।
पूजयेद् गन्ध पुष्पैश्च स्रग्भिश्चापि मनोरमैः।
पूजयित्वा विधानेन भोजनं तासु दापयेत्।
खण्ड लडडू गुडं सर्पि दधिक्षीरं समाक्षिकन्।
तासं देयं कुमारीणां शनैस्सं भोजयेत्तताः।
पानीयं याचित देयमन्नं वा याचित शुभम्।
तास्तृप्तास्तु यदा सर्वास्तदा त्वाचमनददेत्॥
आचम्य चाक्षतान्दत्था त्वा क्षन्तव्य सित्युत्।
दातुः शिरसि दातव्याः कन्यकाभिरथाक्षयाः।
तेनापि प्रणिपातस्तु कर्वव्यो भक्ति पूर्वकः।
अनेन विधिना शक्र ! देवी क्षिप्रं प्रसीदति॥
ददाति विविधान्कामान्मनोभीष्टान्सुराधिपः।
राज्यं कृत्वा ततः पश्चाद्देवीलोकञ्च गच्छति॥
स्कन्देऽपि ! एकैकां पूजयेत्कन्यामेकवृद्धया तथैव च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं वरम् ।
नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु ।
एक वृद्धया लभेत्क्षेममेकंकेनश्रियं भवेत् ॥
एक वर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां तु वर्जयेत् ।
गन्ध-पुष्प-फलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ।
यथोक्ता लाभेतु विवाहितापि या पुष्पणी तायत—
पूज्याविवाहान्तर मपि कन्या त्वमुपजायते ।
तावत्सपूज्यते कन्या यावत्पुष्पं न दृश्यते ।
इति भगवन्त भास्कर घृत देवी पुराणवचनात् ।
कामना परत्वेन आसां क्रमेण पूजायां विशेष उक्तः ।
तत्रैव ! दुःख दारिद्रः नाशाय शत्रूणां नाशाय च ।
सुभद्रां पूजयेन्मर्त्यो दासीदासविवृद्धये ।

पूजा प्रकारश्च तत्रैव । प्रातः काले विशेषण कृताभ्यङ्गो विशेषतः ।'

अथ वर्च्य कन्या आह

हीनाधिकाङ्गीकुष्ठादि विकारां कुकुलांतथा ।
ग्रन्थि स्फुटित सर्वाङ्गीं रक्त पूय व्रणाङ्कितां ॥
जात्यन्धां केकरा काणां कुरूपां तनु रोमशाम् ।
संत्यजेद्रोगिणीं कन्या दासी गर्भ समुद्भवाम् ॥
अथ ज्ञाति भेदेन कामना भेदेषु तत्पच्य तामाह ।
ब्रह्माणीं सर्व कार्येषु जयाथ नृप वंशजाम् ॥
लाभार्थे वेक्ष्य व शोत्थां सुत थे शूद्र वंशजास् ।
दारुणे चान्य जातीयां पूजये द्विघिना नरं ।
अथ वर्ण भेदेन पूजाभेद ॥
गौरीं सर्वेष्ट संसिद्धयै पीताङ्गीं जय कीर्तये ।
लाभार्णेऽरुणवर्गगीमसितामारणादिष्वति क्वचित् ॥
एक वंश समुद्भवां कन्या सम्यक् प्रपूजयेन्दिति कौलावली तन्त्रे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र-विधि

यजमानः पूजयेच्च कन्यानां नवक शुभम् ।
द्वि वर्षाद्यादशाब्दान्ताः कुमारी परिपूजयेत् ।
अर्थादेक हायनाल्प ! वयस्का वर्च्याः ।
त आसने उपवेश्यावाहयेत् मन्त्रेण ।।

अथावाहनविधि

ॐ मन्त्राक्षर मयीं लक्ष्मीं मातृणां रूप धारिणीम् ।
नवदुर्गात्मिका साक्षात्कन्यामावाह्याभ्यहम् ।।
अनेनैव मन्त्रेण नवापि आवाहयेत् ।
अशक्तौ यथाशक्ति एकामपि पूजयेत् ।।

। पाद्यादि पूजनविधान ।

द्विहायना कुमारी संज्ञा

सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! सर्वशक्तिस्वरूपिणि !
पूजां ग्रहाण कौमारि ! जगन्मातनमोस्तुते ।।१

त्रिहवना विमूर्ति संज्ञा

त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्षां ज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्यवन्दितां देवी त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ।।२

चतुर्थवर्षा कल्याणी

कलात्मिकां कलातीतं कारुण्यहृदयां शिवाम् ।
कल्याणजननी देवी कल्याणीं पूजयाम्यहम् ।।३

पंचवर्षा रोहिणी

अणिमामि ग ुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।
अनन्त शक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ।।४

षड्वर्षा कालिका

वामचारां शुभां कान्तां कालचक्र स्वरूपिणीम् ।
कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ।।५

सप्तवर्षा चण्डिका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चण्डवीरां चण्डमायां चण्ड सुण्डप्रसञ्जनीम् ।
पूजयामि सदा देवां चण्डिका चण्डविक्रमाम् ॥६

अष्टवर्षा शाम्भवी

सदानन्दकारीं शान्तां सर्व-देव-नमस्कृताम् ।
सर्दभूतात्मिकां लक्ष्मी ? शाम्भवी पूजयाम्यहम् ॥७

नवहायमा दुर्गा

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम् ।
पूजयामि सदा भक्तदां दुर्गां दुर्गति नाशिनीम् ॥८

दशवर्षा सुभद्रा

सुन्दरी स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम् ।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥९

॥ नित्य आरती ॥

कुमारी पूजनान्ते तद्वस्तादक्षतादिकं स्वशिरसि विघाय भक्त्या अग्रव्रजेत् सुवासिनी ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् इष्ट-मित्रबान्धवादिना सह स्वयमपिभुञ्जीत शेष काल गीतवाद्यादि-भिर्नयेत् ।

॥ इति कुमारी पूजनम् ॥

अष्ट रात्रे न दोषोऽयं नवरात्रे तिथिक्षये ।
सूतके पूजनं प्रोक्तं जपदानं विशेषतः ॥
देवीमुद्दिश्य कर्त्तव्य तत्र दोषो न विद्यते ।
रजस्वला रथा शौचं ब्राह्मणश्च सुपूजयेत् ॥
सभर्तृकाणां स्त्रीणां नवरात्रे गन्धादिसेवनं न दोषाय ।
तदुक्तं हेमाद्रौ ! गन्धालंकार ताम्बूल पुष्पमालानुलेपनं ॥
कुमारीपूजने विशेषः कौलावली तन्त्रे ।
एव प्रणवयोगेन चैतन्यं तत्तूमर्चयेत् ॥
वाणी माया ? तथा लक्ष्मीर्मायां कूर्चद्वयः ततः ।
तते च प्रणवाः ज्ञेया कुमार्याः परिपूजने ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्दश स्वरेणाढयो भृगुबिन्द्वन्दुसंयुतः ।
चैतन्य-वीज कथितं साधकानां समृद्धिदम् ।।
एवं द्वाभ्यां त्रिभिश्चैव सप्तधानवधा पुनः ।
नित्यक्रमेण नियतं पूजयेद्विधि पूर्वकम् ।।
वाग्भवेन जल देयं मायया पादशोचकम् ।
लक्ष्म्याचाध्य प्रदद्यातु कूर्चबीचेन चन्दनम् ।।
शक्ति बीजेन पुष्पाणि धप षष्ठेन दापयेत ।
वाग्भवेन हृरक्षोभं माययाच गुणाष्टकम् ।।
श्रीबीजेन श्रियोलाभः मायपाशत्रु संक्षयः ।
भैरवेण तु बीजेन खड्गत्वमनुगच्छति ।
न्यासादिक प्रकुर्वीत आदौ स्वीय क्रमेण तु ।
कुमार्याङ्गे ततः पश्चाद्विशेषायासमुत्तमम् ।।

।। तपोऽखण्ड दीपदानम् ।।

दीपादि विचारो डामरतन्त्रे ।।

सौवर्ण राजतं ताम्रं कास्यं लौह च मातिकम् ।
गोधूम माष मद्गानां चूर्णेन घटित तथा ।।
ताम्रं तयोपभावेऽपि कांस्ये विद्वेषणं भवेत् ।
मारणं लौहपात्रैस्यादुच्चारो मृण्मये तथा ।।
गोधूम कूर्ण घटिते विवादे विजयोभवेत् ।
माषजे शत्रु संस्तम्भो मौद्गैस्याच्छान्तिसत्तमाः ।।
सन्धिकार्ये नदीकूलद्वयमृत्स्ना समुद्भवम् ।
अलाभेसर्वे पात्राणां कूर्यात्ताम्रं च मार्तिकम् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभिन्न शक्तियाँ और उनके वाहन

शक्ति एक है। वह विभिन्न नामों से विख्यात है। जब रक्त-बीज के मारे जाने पर शुम्भ और निशुम्भ के साथ देवी का युद्ध हो रहा था और जब निशुम्भ भी मारा गया, तो शुम्भ ने देवी की सहायक सप्त मातृका-शक्तियों—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही तथा ऐन्द्री की ओर संकेत करते हुए कहा 'तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूठ-मूठ अभिमान करती हो।' इस देवी ने इन सातों शक्तियों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि 'यह सब मेरी विभिन्न शक्तियां हैं, जो मेरी इच्छा से प्रकट रहती हैं अब देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।'

तन्त्रों में देवी की आठ शक्तियाँ का वर्णन आता है। इसलिए वह अष्टभुजी कहलाती है। इन शक्तियों के अलग-अलग वाहन हैं। इन शक्तियों और उनके वाहनों का वर्णन इस प्रकार है—

१. ब्राह्मी–

सृष्टि—शक्ति को ब्राह्मी कहते हैं। ब्रह्मा सृष्टि के अधिष्ठाता हैं। तन्त्र की परिभाषा में एक विद्वान् ने इसे व्यक्त किया है।

"पश्यन्ती वाणी में अवस्थित प्रकाशांश को वामाशक्ति और विमर्शांश को इच्छाशक्ति कहते हैं। महासत्तात्मक, पराशक्ति अपने नभ में स्थित बीजभावापन्न विश्व का कार्यरुप में बाह्य प्रसार करने को जब उद्यत होती हैं, तो उसमें विश्वमनकर्तृत्व रहने के कारण उसे वामाशक्ति कहा जाता है इसका पर्याय ही ब्रह्मा है। महात्रिकोण की वाम रेखा का उपलक्षक होने के कारण इसे अंकुशाकार कहा गया है। और पितामह ब्रह्मा की शक्ति-भारत के पर्यायरुप इच्छा-शक्त्यात्मक जननसामर्थ्य इसमें विद्यमान रहता है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संसार की उत्पत्ति करने वाली शक्ति ब्रह्मा निराकार व सूक्ष्म है। उसे स्थूल नेत्रों से देखा जाना सम्भव नहीं। इसलिए कलाकार ने उसके गुणों को सुन्दर ढङ्ग से चित्रित किया है। ब्रह्मा के चार मुख और चार हाथ बनाये गये हैं। एक साधारण मकान बनाने वाले मिस्त्री को भी बड़ी सावधानी और सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है। फिर ८४ लाख योनियों का निर्माण करने वाले ब्रह्मा को तो अपने कार्यकर्त्ताओं से काम लेने के लिये चारों ओर दृष्टि रखनी पड़ती है। यदि उसके निरीक्षण में शिथिलता आ जाए तो निर्माण कार्य में अव्यवस्था होना स्वाभाविक हैं।

निर्माण का कार्य कोई साधारण कार्य नहीं है। उसमें चारों ओर अर्थात् हर दृष्टि से विचार करना पड़ता है। वे चारों दिशाओं में काम करने की क्षमता रखते हैं। चारों हाथों में चार वेद हैं अर्थात् वह ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। पुराणों में वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही बताई जाती है। संसार को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने वाली शिक्षाओं व सिद्धांतों के वे मूल स्रोत है। विचार-शक्ति का उद्‌भव उन्हीं से हुआ है।

ब्रह्मा तप-शक्ति का भण्डार माने जाते हैं। ब्रह्म-वैवर्त पुराण में कथा आती है कि जब ब्रह्मा को सृष्टि की उत्पत्ति का आदेश मिला, तो वह विस्मय में पढ़ गए कि इस महान् कार्य को कैसे किया जाय? आकाशवाणी हुई कि सौ वर्ष तक गायत्री की उपासना करो, तो सृष्टि की उत्पत्ति करने की क्षमता प्राप्त हो सकेगी। ब्रह्मा ने सौ वर्ष तक तप किया, परिणामस्वरुप वह योग्य हुए।

ब्रह्मा को कमल के पुष्प पर बिठाया दिखाया जाता है। कमल जल में रहकर भी उससे अलग रहता है, जल का प्रभाव उस पर नहीं हो पाता। ब्रह्मा ८४ लाख योनियों के अरबों-खरबों जीवों की उत्पत्ति हर क्षण करते रहते हैं, परन्तु किसी के साथ उनका लगाव, मोह व आसक्ति नहीं है। यदि ऐसा न होता, तो वह अपनी सन्तान का शोक मानते ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न थकते और शोक मनाने के लिए अलग विभाग खोलना पड़ता। अतः इस झंझट से दूर रहने के लिए वह अलिप्तता व अनासक्ति के सिद्धान्त को अपनाते हैं। इसी ब्रह्मा की शक्ति को ब्रह्माणी कहा गया है।

ब्राह्मणी का वाहन हंस है। हंस विवेक बुद्धि का प्रतीक है। उँसके सामने दूध और पानी रख दिया जाय, तो वह उन्हें अलग-अलग कर देगा और पानी को छोड़कर दूध-ही-दूध पी लेगा। ब्रह्मा प्रत्येक जीवरुपी हंस से यही अपेक्षा रखते हैं कि हमारा विवेक सदैव जाग्रत रहे। वास्तव में तत्व और अतत्व का, सत्य और असत्य का, ज्ञेय अज्ञेय का जो निर्णय बुद्धि देती है—हमें क्या करना, क्या न करना, निर्णय दिव्य प्रकाश के आधार पर करने वाली ऋतम्भरा बुद्धि एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति है, जिसकी तुलना में विश्व की और कोई शक्ति मनुष्य के लिए हितकारी नहीं है।

तमासाच्छादित बुद्धि से, चाहे वह कितनी ही उपजाऊ क्यों न हो, मनुष्य का सच्चा हित नहीं हो सकता और न उसे आत्मिक सुख शान्ति के दर्शन हो सकते हैं। भोग-विलास के थोड़े उपादान वह जरुर जमा कर सकती है, पर इन उपादानों के कारण चिन्ता, भय, आशंका, तृष्णा, मोह, मद आदि की मात्रा इतनी वढ़ जाती है कि उनका भार आत्मा के लिए असाधारण रुप से कष्टदायक सिद्ध होता है। जो सम्पत्ति नीति-अनीति का ध्यान न रखकर इसलिए कमाई जाय कि इससे सुख की वृद्धि होगी, वह विपरीत परिणाम उपस्थित करती है। थोड़ी-सी वाहरी तड़क-भड़क दिखाकर भीतर का सारा आनन्द-नष्ट कर देती है। उस आन्तरिक अशान्ति के कारण छोटे-मोटे अनेकों शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक रोग उत्पन्न होते हैं और वे हर घड़ी उस आदमी को बैचैन बनाये रखते हैं, जो अपने को बुद्धिमान समझाने का दम भरता है। तमसाच्छन्न बुद्धि जितनी अधिक तीक्ष्ण होगी,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उतनी ही अधिक विपत्ति का कारण बनेगी। ऐसी बुद्धि तो जितनी मन्द हो, उतना ही उत्तम है।

तमसाच्छादित बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुए विचार और कार्य हमारी प्राण-शक्ति को दिनों दिन घटाते हैं। भोग-प्रधान कार्यों से शरीर दिनों दिन क्षीण होता है, स्वार्थ-प्रधान विचारों से मन दिन-दिन अथाह पाप-पंक में फँसता है। इस प्रकार जीवन की पेंदी में असंख्य छिद्र हो जाते हैं, जिनमे होकर सारी उपार्जित शक्ति नीचे गिरकर नष्ट हो जाती है। चलनी में चाहे कितना ही दूध दुहा जाय, सब नीचे गिर जायगा और चलनी खाली-की-खाली रह जायगी। यही बात तमसाच्छन्न बुद्धि के लोगों के बारे में है। कुछ भी कीमती भोजन खायें, सब विषय-भोग की, चटोरेपन की उष्णता में जल जायगा। वे चाहे जितनी बुद्धि दौड़ा कर नई कमाई करें पर तृष्णा, स्वार्थपरता, भय, अहंकार, लोभ आदि कारणां में चित्त सदा दुःखी ही रहेगा और उससे मानसिक शक्तियाँ नष्ट होती रहेंगी। इन दोनों कारणों से प्राण निर्बल ही रहेगा और वह न्यून-प्राण व्यक्ति संसार में नाना प्रकार के उद्योगों के साथ किसी प्रकार हीन जीवन व्यतीत करता रहेगा।

सतोगुणी, ऋतम्भरा विवेक बुद्धि हमारे शारीरिक आहार-विहारों को सात्विक रखती हैं। संयम, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, श्रमशीलता, सादगी प्राकृतिक दिनचर्या होने से बलवीर्य बढ़ता और शरीर सक्रिय रहता है और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। मन में अपरिग्रह, परमार्थ सेवा, त्याग, सहिष्णुता, तितिक्षा, दया, सहानुभूति, मैत्री, करुणा, नम्रता, निरहंकारता, धर्म, श्रद्धा, ईश्वरपरायणता आदि की भावना काम करती है। यह भावना जहाँ रहती हैं, वहाँ के परमाणु सदैव प्रफुल्ल और चैतन्य रहते हैं तथा उनका विकास होता है। इस प्रकार शरीर और मन दोनों को सुरक्षा एवं बुद्धि की सात्विक उन्नति होने से प्राप्त शक्ति सुरक्षित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहती है और उसकी वृद्धि होती रहती है। ब्राह्मणी शक्ति का वाहन हंस हमें इसी विवेक बुद्धि के विकास की प्रेरणा देता है।

२. माहेश्वरी–

वह लयशक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रलय भाव का प्रतीक माहेश्वर हैं। यह महान् प्रेरणाओं का स्रोत हैं।

सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि का चक्र चलता ही रहता है। यह प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है। गीता (१८।१८) में कहा है—ब्रह्मा का जब दिन आरम्भ होता है, तब अव्यक्त से व्यक्त में प्रकट होता है और जब रात्रि होती है, तो पहले की तरह अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। अगले श्लोक में और अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान ने कहा है—इच्छा हो या न हो दिन होने पर जन्म लेना और रात्रि होने पर लीन होना—यह चलता ही रहता है' (१८।१९)। उत्पत्ति, स्थिति और लय को हम प्रत्यक्ष रूप से खुले नेत्रों से देखते हैं। जो उत्पन्न हुआ है, उसे नष्ट होना ही है। जिसने शरीर धारण किया है, उसे एक दिन मरना है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है और मरने के बाद फिर जन्म लेना है।

इस स्वाभाविक क्रम में कुछ भी निराश होने की बात नहीं है। अज्ञानवश हम विनाश होने वाले तत्वों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जब वह सृष्टि के स्वाभाविक प्रवाहमें बहने लगता है,तो व्यर्थ की अशांति और दुःख को अपने सिर मढ़ लेता है। जब नित्य देखते हैं कि सृष्टि के अदिकाल से यह क्रम बरावर चला आ रहा है और अन्त तक चलता रहेगा, तो इसमें दुःख की कौन-सी बात है ? चूँकि हम शरीर को सर्वस्व मानकर चलते हैं, इसलिए उसके विनाश होने पर दुःखी होते हैं। सांसारिक दुःखों से बचने के लिए आवश्यक है कि हम वस्तु-स्थिति को समझें और नाशवान तत्वों के नष्ट होने पर दुःखी न हों। हम अपना आत्मनिरीक्षण करें कि हम शरीर नहीं, वरन् आत्मा हैं। नाश शरीर का होता है। आत्मा का नहीं। यदि शरीर नष्ट हो रहा है,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो उसका अभिप्राय केवल पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्र बदलकर नए पहनना है। उसके मूल तत्व का विनाश नहीं हो रहा, चाहे कैसी भी भयंकर आँधियाँ और तूफान आवें, भूचाल और घोर वर्षा हो, नगर के नगर ध्वस्त हो जायें और सारे विश्व का भी विनाश होकर प्रलयकारी स्थिति उत्पन्न हो जाय। आधुनिक काल के विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों, एटम व हाइड्रोजन बमों का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो स्थूल वस्तुओं को ही नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। हानि और नाश के क्रम इस जगत में पग-पग पर चलते रहते हैं, उनसे सुरक्षित रहने का एक-मात्र उपाय है—अक्षय-भाव में स्थित रहना।

यदि शास्त्रों में वर्णित प्रलय की-सी स्थिति कभी उत्पन्न हो जाए, जिसमें सारे विश्व का विनाश हो जाए और चारों ओर जल-ही जल दिखाई दे तो यह समझना चाहिए कि उस स्थिति में हमारा कुछ नष्ट नहीं हुआ। उस समय भी केवल पंचभौतिक शरीर ही नष्ट होगा। वस्तु स्थिति यह है कि शरीर अनेकों बार नष्ट हो चुका है और अनेकों बार जन्म ले चुका हैं। यदि एक बार और नष्ट हो जायगा, तो इसमें दुःख और चिन्ता की कौन-सी बात हैं ? वेदान्त (१।३।१७) में कहा गया है कि 'जीवात्मा उत्पन्न होता या मरता नहीं है।' श्रुति में भी ऐसा ही कथन मिलता हैं। उन श्रुतियों के द्वारा ही इसको अविनाशी होना कहा गया है। छांदोग्योपनिषद् (६।११।३) में भी स्पष्ट कहा है—'जीव के मरने पर शरीर ही मरता है, जीवात्मा स्वयं नहीं मरता।' अतः यदि हम अपने वास्तविक रूप को समझ लें, तो प्रलय से भयभीत होने की कोई बात नहीं हैं। प्रलय तो हमारी पथ प्रदर्शिका है और हमें शिक्षा देती है कि इस जगत की हर वस्तु नष्ट होने वाली हैं, अतः उनकी प्राप्ति में ही अपने जीवन का अमूल्य समय-समय नष्ट न करके अविनाशी तत्व को प्राप्त करो, जिसका कभी नाश नहीं होता है। माहेश्वरी की भी यही प्रेरणा है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माहेश्वरी का वाहन वृष (बैल) है। इसकी आध्यात्मिक व्याख्या निम्न प्रकार है। वृषभ को मनुस्मृति (८।१६) में धर्म की संज्ञा दी गई है—

वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ।।

भगवान् धर्म साक्षात् 'वृष' है। जो इसको नष्ट करेगा वह वृषल—पापी कहा जायगा। इसलिए धर्म को लुप्त न करना चाहिए।''

शिव-पुराण (रुद्र संहिता, पार्वतों खण्ड) में शिव-पार्वती के विवाह के समय वर्णन करते हुए कहा गया है—विशुद्ध स्फटित के तुल्य दीप्तिमान परम सुन्दर वृषभ पर भगवान् महेश्वर विराजमान हुए। इस वृषभ को बड़े-बड़े महर्षियों ने शास्त्र में धर्म बतलाया है।''

कामनाओं और इच्छाओं की वर्षा करने वाला होने के कारण 'वृषभ' नाम पड़ा। कामनाओं की पूर्ति करना रुद्र के अधिकार में हैं। वे ऋषि-सिद्धि दाता हैं। वे भोले शङ्कर प्रसिद्ध हैं। शीघ्र ही प्रसन्न होकर साधक को वरदान दे देते हैं, शक्ति के सम्राट हैं, शरीरधारियों को समस्त कष्टों से दूर रखने की क्षमता रखते हैं। यजुर्वेद में उन्हें देवता कहा गया है (१४।२०), अतः वह प्राणियों का कल्याण ही करते रहते हैं। इसीलिए उनका नाम शिव है—यह तो कल्याण के साक्षात् रूप हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य चन्द्रमा, विद्युत—यह उनकी अष्टमूर्ति कही गई हैं, वह तो प्राणीमात्र के लिए निरन्तर सहयोग की भावना रखते हैं इसके अभाव में शरीरधारियों का जीवन असम्भव हो जाय। यह सब साक्षात् देव-स्वरुप है।

वेद में वृष को चार पैर वाला कहा गया है। वे चार पैर हैं—धर्म अर्थ काम और मोक्ष। वृषभ का एक अर्थ है—वीर्य की वर्षा महाप्राण की वर्षा।

काम की संज्ञा वृष है सृष्टि की उत्पत्ति के लिए वह उपयोगी तत्व है। इसकी गणना जीवन की आवश्यकताओं में आती है। यदि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनके अंकुर मानव-मन में उत्पन्न न होते, तो सृष्टि रचना भी न हुई। होती। जहाँ तक आवश्यकता का प्रश्न है, वहाँ तक तो यह पतिव्रता का प्रतीक है, परन्तु जब इनमें मर्यादा-उल्लंघन किया जाता है, तब वह भोग की सीमा में आ जाता है और यह मानव का शत्रु बन जाता है तथा इसकी गणना आसुरी शक्तियों में होने लगती है।

अथर्ववेद ५।११।१०८ में 'वृषभ को पृथ्वी का पोषक धारक, उत्पादक, प्रकाशक, प्रेरक, विजेता और फलदाता की उपाधियों से विभूषित करते हुए अन्त में ब्रह्म और विराट् के समान बताया गया है।

माहेश्वरी का वाहन-आधार वृषभ के धर्म आदि गुण हैं। माहेश्वरी की सच्ची पूजा उन्हें अपनाना है।

३. कौमारी—

जो शक्ति देव-शक्तियों के नेतृत्व करती हुई आसुरी शक्तियों पर विजय का उद्घोष करती है उसे कौमारी कहते हैं। कुमारी उसकी अधिष्ठातृ शक्ति को कहते हैं। कुमार को पुराणों में स्वामी कार्तिकेय, स्कन्द, सनत्कुमार, पारामातुर के विभिन्न नामों से भी याद किया जाता है। उनके ६ मुख और ११ नेत्र हैं उनमें तप और शक्ति का समन्वय है। उनके हाथों की संख्या और अन्य अंग शक्ति के प्रत्यक्ष रूपक है।

'स्कन्दिर-धातु' से स्कन्द शब्द बनता है। स्कन्दिर का अर्थ स्पष्ट है—गतिशीलता और सोचना। क्रियाशीलता सेनापति की मुख्य विशेषता होनी चाहिए। सूर्य में वस्तुओं को सोखने की शक्ति है। इससे वह अत्यन्त जन-उपयोगी सिद्ध होती है। जहाँ नमी अधिक होती है, वहाँ रोग-उत्पन्न होते हैं। यहाँ सूर्य पहुँचता है, वहाँ रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। सोखना एक अत्यन्त उपयोगी तत्व है और यह अग्नि का विशेष गुण हैं।

कुमार रुद्र को भी कहते हैं और अग्नि को भी इसलिए कुमार अग्नि का नवाँ रूप बताया गया है। महाभारत वन-पर्व २२५।१५-१९ ऋग्वेद ५।२।१, १९।१३५, कठोपनिषद् १।२, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।११८।१५ के अनुसार कुमार से अग्नि का घनिष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्कन्द देवताओं के सेनापति हैं। इसलिए उनकी पत्नी का नाम अलंकारिक रुपसे 'देवसेना' ठीक ही रखा गया है। काठकसंहिता (३६।८) और मैत्रायणी संहिता (१।१०।१४, ४।३।८) के अनुसार अग्नि को ही देवताओं का सेनापति माना गया है। इसलिए स्कन्द अग्नि का अलंकारिक रुप है।

स्कन्दकुमार का लाल रंग से विशेष सम्बन्ध बताया गया है। अग्नि भी इसी वर्ण की होती है। वाचस्पत्य कोष इसकी पुष्टि करता है।' शतपथ ब्राह्मण से अनुसार अग्नि का घोड़ा भी अलंकारिक रुप से 'रोहित' (लाल) कहा जाता है। कौमारी शक्ति के यही गुण बतलाये जाते हैं।

कौमारी का वाहन मयूर है। मयूर का प्राकृतिक सौन्दर्य प्रसिद्ध है। शारीरिक सौन्दर्य तो अस्थायी रहता है—जीवन का वास्तविक सौन्दर्य सद्गुणों का विकास करना है, जिसकी ओर सुन्दरता के प्रतीक मोर इंगित करते हैं।

मोर में वर्षा की भविष्यवाणी करने कीं सूक्ष्म शक्ति विद्यमान है। वह अपने सूक्ष्म नेत्रों से वर्षा के आगमन को अनुभव करता है और 'मेहों मेहों' करके उसकी चेतावनी देता है। मेघों को देखकर वह इतना प्रसन्न होता है मानो कुवेर का खजाना उसे ही मिल गया हो। जिस तरह एक साधक को अपनी कठोर साधना के फलस्वरुप अपने इष्टदेव के दर्शन कर अपार आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी तरह मोर भी मेघों के साथ आत्मसात होना चाहता है। आनन्द-विभोर हो नाचता है। किसी नर्तकी का नाच तो कुछ अर्थों के लिए मानस-पटल पर स्थिर रहता है परन्तु मोर का यह अद्भुत नाच कवियों व साहित्यकारों से कलाप्रिय हृदयों में युगों से विद्यमान है और जब भी उनका मन अपनी मस्ती में नाचता है, तो वह मोर के वर्णन कभी नहीं भूलते।

मोर और सर्प की शत्रुता प्रसिद्ध है। मोर जहाँ भी सर्प को देखता है, उसे नोचने लगता है। सर्प, क्रोध, स्वार्थ, अहंकार व दम्भ का प्रतीक है। इसके विपरीत मोर को ज्ञान, विवेक व परोपकार का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिनिधि माना जाता है। इसीलिये भगवान कृष्ण ने अहंकार व दूसरों से बड़ा समझने वाली भावना उत्पन्न करने वाले रत्न-मणियों की सहायता से शोभा-वृद्धि नहीं की। वह ज्ञान के प्रतीक मोर-पंख से ही सन्तुष्ट रहे। इसका अर्थ है कि वह राजा होते हुए भी भौतिकता की सीमाओं से बहुत दूर थे।

कौमारी का वाहन मोर हमें सद्गुणों के विकास करने की प्रेरणा देता है।

४. वैष्णवी—

विश्व के पालनकर्ता को विष्णु कहते हैं, उसकी शक्ति वैष्णवी कहलाती है।

विष्णु का आधार शेष हैं, शेष का नाम अनन्त है। अनन्त सूर्य और आकाश दोनों कहते हैं। आकाश का हम अन्त नही पा सकते इसलिए उसे अनन्त कहते हैं। विष्णु का शयन-स्थान यही अनन्त अर्थात् आकाश है। हमें भी आकाश जैसी विशाल उदारता का परिचय देना चाहिये।

शतपथ ब्राह्मण (१।२।५।५) ने घोषणा की है 'वामेनाह विष्णुरास' अर्थात् जो विष्णु हैं, वही वामन हैं। वामन को बौना दिखाया गया है। वह पहले छोटा था अल्प था, फिर वही बड़ा और विराट् हो गया अणिमा ही भूमा बनता है। अण ही विस्तार पाकर महत् बनता है। छोटे-से वामन ने अपने छोटे-२ पैरों से सारी सृष्टि को नाप लिया।

ऋग्वेद १०।८।१६ में कहा है—'तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्' वह प्रथम धर्म थे, उन्हीं का धारण-संरक्षण विष्णु करते हैं। वह धर्मों को सँभालते हैं धारण करते हैं।

विष्णु वह तत्व है वह शक्ति विशेष हैं, जो सर्वत्र व्यापक है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में फैला हुआ है, जो तीन पगों में सारी सृष्टि को घेर लेता है। त्रिविक्रम तो वह प्रसिद्ध ही है। उसकी जगमगाहट तीनों लोकों के अणु:अणु में दृष्टि गोचर होती है। प्राणीमात्र में वह समाया हुआ है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णु तीन पग से सारी सृष्टि को नाप लेते हैं। यह 'चलना' उनकी गति, क्रियाशीलता और सतर्कता की ओर इंगित करता है। वह सदैव जागरूक रहते हैं। जो नियम विश्व की उत्पत्ति के समय बने थे उनको धारण किये रहना उनकी देखरेख और संभाल रखना विष्णु का धर्म है।

शतपथ ब्राह्मण १।२ में यज्ञ को ही विष्णु कहा गया है और कहा कि यज्ञ के प्रथम पद से पृथ्वी, द्वितीय से अन्तरिक्ष और तृतीय से आकाश में प्रवेश करता हूँ।

विष्णु सर्वव्यापक शक्ति और बलि आसुरी शक्तियों का प्रतीक है। वामन द्वारा बलि का बाँधा जाना ईश्वर द्वारा विश्व की नियम-बद्धता का सूचक है।

विष्णु सर्वव्यापक है और चारों दिशाओं में व्याप्त हैं, कण-कण में समाए हुए हैं प्राणीमात्र में उनका निवास है। जल में, थल में, पुष्प लताओं, पहाड़ों, कन्दराओं, वनों, पशु, पक्षी, पुरुष और स्त्री में वही दिखाई देते हैं।

ऐसी दृष्टि रखने वाला ही वैष्णवी साधक है।

वैष्णवी शक्ति का वाहन गरुड है। भागवत।१२।१५।१६ में तीनों वेदों को गरुड़ कहा है। उसे ही यज्ञ रूप विष्णु वाहन है। ऋग्वेद साम-वेद और यजुर्वेद से ही यज्ञ की समाप्ति मानी जाती है। अतः वेदात्मा ही गरुड़ है और भगवान विष्णु उन पर विराजते हैं।

स्थूल रूप से गरुड़ और सर्प की शत्रुता है। गरुड़ सर्प—भक्षक है। सर्प क्रोध और दुष्टता का प्रतीक है, वह विष से भरा हुआ है। बिना कारण इस विष का दुरुपयोग करके किसी की भी जीवन-लीला को समाप्त कर देता है—यह उसका स्वभाव है। गरुड़ ज्ञान के प्रतीक हैं। उन्हें यह दुष्टतापूर्ण व्यवहार पसन्द नहीं, इसलिए इसे वह पनपने नहीं देना चाहते। भगवान ऐसी शक्ति को नियन्त्रण में रखते हैं, जो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुष्टों, असुरों और राक्षसों का संहार करने में दक्ष हो। सर्प तम का प्रतीक है। भगवान् सत् से ओतप्रोत रहते हैं। भगवान् की सत् शक्ति तम को खा जाती है। जो भगवान की पूजा, उपासना पाठ और ध्यान आदि करते हैं, उनमें भी सत् विकसित होता है, जो तम को निगल जाता है। यहीं गरुड़ सर्पों को खाता है।

वैष्णवी साधक ज्ञान को लक्ष्य बनाकर अपनी साधना का क्रम बनाता हैं और जब कभी भी आसुरी शक्तियाँ उसके मार्ग में बाधक बनती हैं वह उन्हें शक्तिपूवक नष्ट करने में सावधान रहता है।

५. वाराही–

कालशक्ति का नाम वराह है वर का अर्थ श्रेष्ठ अथवा आत्मा हैं। उसे आहत अथवा आवृति करने वाली शक्ति का नाम वराह है। यही पृथ्वी को दाँतों द्वारा पाताल से निकालती है। इसका अधिष्ठान' वाराही करती हैं।

काल से सभी भयभीत होने को मृत्यु कहते हैं। भारत के तत्व-ज्ञानियों ने इस पर गहन अनुसन्धान और खोज की है। वह इस परि-णाम पर पहुँचे हैं कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर मनुष्य का नाश नहीं समझना चाहिए। उन्होंने सिद्ध किया है कि मनुष्य एक ऐसा अदृश्य गुप्त-तत्व है जो इस पार्थिव शरीर के नष्ट होने पर भी ज्यों-का त्यों बना रहता है। यह शरीर तो आत्मा का खोल है। इसके हट जाने से आत्मा के अस्तित्व पर कोंई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो जैंसा पहले था, बैसा हो बना रहता है।

गीतकार ने इसे यूँ समझाया है कि मृत्यु पुराने वस्त्रों को बदल कर नये ग्रहण करने की क्रिया मात्र है और स्पष्ट कहा गया है कि 'यह शरीर का स्वामी आत्मा नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है" (गीता २।१८,) यह किसी से मारे जाने वाला नहीं है" (२।१९) इसको शास्त्रों से काटा नहीं जा सकता, इसे अग्नि में जलाया नहीं जा सकता, इसे पानी से भिगोया या गलाया नहीं जा सकता और वायु से सुखाया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं जा सकता' (२।२३) "इसकी रक्षा ऐसे यन्त्र करते हैं, जिस पर इस जगत की किसी भी वस्तु का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह ऐसा अदृश्य तत्व है जो सदैव एक-सा बना रहता है जिसकी वृद्धावस्था और नाश कभी नहीं होता जिसमें किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं होता। इससे सम्बन्धित शरीर का वध भी हो जाय, तो यह मारा नहीं जाता" (२।२०)। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है।

अतः हमें काल से डरना नहीं है, वरन् उसे गले लगाने के लिए सदैव तत्पर रहना है। वन ईश्वरीय शक्ति है, उसका स्वागत करना ही हमारा धर्म है।

वाराही का कोई वाहन नहीं है।

६. नारसिंही—

नरसिंह शब्द का विश्लेषण करते हुए 'नरसिंह पूर्वतापिन्युपनिषद्" में कहा है कि सब प्राणियों में मानव का पराक्रम प्रसिद्ध है और सिंह भी सबसे अधिक पराक्रमी होता है। अतः नर और सिंह दोनों में संयुक्त रूप से पराक्रम में अधिक प्रबलता होती है इसीलिए भगवान ने यह रूप धारण किया है। वे अपने इस रुप से विश्व का कल्याण करते हैं। उनका यह स्वरुप अविनाशी एवं सनातन है।

नृसिंह, हिरण्यकश्यप का वध करते हैं। हिरण्यकश्यप आत्मा की उस स्थिति को कहते हैं, जब वह विषयों में लिप्त हो जाती है और उसका पतन आरम्भ होता है। आत्म-ज्ञान का विकास ही उसके उत्थान का एकमात्र उपाय है। यही ब्रह्मविद्या नारसिंही शक्ति है क्योंकि यही जीव को नृसिंह बनाती है।

ब्रह्मविद्या के आधार पर उपलब्ध ज्ञान से मनुष्य अपनी निज की वस्तु-स्थिति को समझ सकता है आत्मज्ञात उपलब्ध कर सकता है। ब्रह्म की महानता और उसके सान्निध्य की उपयोगिता भी उसकी समझ में आती है। प्रिय-अप्रिय परिस्थितियों में जो राग, द्वेष, हर्ष, शोक भरे आवेश उठते रहते हैं, उनकी उत्तेजनात्मक अशुभ प्रतिक्रियाओं से भी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बचे रहना ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर ही सम्भव है। ब्राह्म जीवन में सुख और अन्तःकरण में शांति को समुचित मात्रा में प्राप्त कर सकना भी ब्रह्म-सम्बन्ध की प्रगाढ़ता पर ही निर्भर है। सुख और शांति की निर्झरिणी का मूल उद्गम आत्मा है और उस आत्मा का सर्वांगीण ज्ञान ब्रह्मविद्या के द्वारा ही उपलब्ध होता है। भव-बन्धनों से, शोक-सन्तापों से छुटकारे का मार्ग की प्रशसा करते हैं। ब्रह्म-ज्ञान ही उनका प्रधान विषय है—

अर्थात् 'सम्पूर्ण विद्याओं में ब्रह्मविद्या ही श्रेष्ठ है।' इसे प्राप्त करने की आकांक्षा का उदय होना मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य एवं देवी अनुग्रह का चिन्ह है।

अतः नृसिंह बनने का हमारा प्रयत्न निरन्तर चलते रहना चाहिये।

नारसिंही का कोई वाहन नहीं है।

७. ऐन्द्री—

इन्द्र की अधिष्ठात्री भक्ति ऐन्द्री है। इन्द्र देवताओं के राजा हैं। वैदिक-युग के सर्वोपरि देवता हैं। वेदों और पुराणों में इन्द्र के उज्ज्वल इतिहास की झांकी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युग में इन्द्र एक सर्वोच्च सम्मानित पद था, तभी तो इन्द्र के सम्बन्ध में वेद में सबसे अधिक मन्त्र आये हैं। (इन्द्र से सम्बन्धित लगभग साढ़े तीन हजार मन्त्र वेद में आते हैं) इतने मन्त्र और किसी भी देवता को समर्पित नहीं किए गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र का सारा जीवन अन्यों से संघर्ष और युद्ध करने में ही बीता हो। परन्तु उन्होंने अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध ही युद्ध किया, किसी श्रेष्ठ पुरुष का कभी वध नहीं किया। वह स्वयं कहते हैं—'जो सत्य का पालन नहीं करता और यज्ञ में हवि आदि नहीं देता, उसे मैं नष्ट कर देता हूँ। मैं दुष्कर्मी, पापी को भी मिटा देता हूँ।

—ऋग्वेद ७।२७।१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्द्र की प्रशंसा के में सूक्त वेद भरे पड़े हैं। ऐसा लगता है कि उस युग में इन्द्र ने अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य किये थे और अनार्यों से आर्यों की रक्षा की थी। महान् रक्षक और योद्धा के रूप में इन्द्र ने आर्यों का हृदय जीत लिया था, तभी उन्हें सर्वोच्च आसन पर अवस्थित किया गया था। इसीलिए उनकी कीर्ति देश की सीमाओं को तोड़कर विदेशों में भी फैली। श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह के अनुसार वृत्रहन वहराम'' अथवा राम के रूप में ईरान तथा 'वाहाजन, में एवं पराक्रमी हरकुलेश' के रूप में मध्यपूर्व तथा यूरोप में भी इन्द्र की पूजा हुई तथा वरुण, मित्र एवं नासत्य के साथ इन्द्र नाम से भी यह मिश्र के राजाओं के देवता रहे।'

इन्द्र का जीवन हमें बताता है कि संसार से शांति-द्रोहियों का नाश करना चाहिए, अन्यायों और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखना चाहिए, जब तक कि उनको समाप्त न किया जाय। हर व्यक्ति को असुरता निरन्तर परेशान किए रहती है। अतः उसे निरन्तर संघर्षरत रहना है। जीवन भर उसे अपने आंतरिक शत्रुओं से लड़ते रहना है। उसे तब तक दम नहीं लेता है, जब तक कि उन पर विजय प्राप्त करके इन्द्रासन पर विराजमान न हो जायें। ऐन्द्र-शक्ति की यही प्रेरणा है।

इन्द्र का वाहन एरावत है। 'ईद्' धातु का अर्थ गति है। 'रोवान्' का अर्थ गतिविशिष्ट है। ऐरावत से क्रियाशीलता का ही भास होता है। इन्द्र में यदि क्रियाशीलता का गुण न होता तो वह कैसे आसुरी शक्तियों के महादुर्गों का विध्वंश कर सकने में समर्थ होते। व्यावहारिक क्षेत्र में भी हम इसका समर्थन पाते हैं।

क्रिया से बल प्राप्ति होती है। क्रियाहीन व्यक्ति की शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती है। सरिता का जल क्रियाशील रहता है, तो उसमें जीवनतत्व की मात्रा अधिक पाई जाती है। खड़ा पानी उस पक्षी की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तरह है, जिसके पंख काट लिए जायें ताकि वह उड़ने से मजबूर हो जाए। प्रवाह हीन जल सड़ने लगता है और चलते पानी में शक्ति का इतना विकास हो जाता है कि उसके सहयोग से विद्युत उत्पन्न की जाती है, मशीनें चलाई जाती हैं, अन्य अनेकों कार्य किए जा सकते हैं। शक्ति का प्रयोग जहाँ भी किया जायगा, वही सफलता उनका हार्दिक रूप से स्वागत करेगी।

जो व्यक्ति परिश्रम नहीं करते, उनका स्वास्थ्य गिरने लगता है, खाना हजम नहीं होता, दन्त साफ नहीं होता—जीवन रसहीन होजाता है। क्रियाशील जीवन व्यतीत करने वालों के स्वास्थ्य की सुरक्षा रहती है। उनके मुख-मण्डल पर एक अपूर्व तेज चमकता है, जो क्रियाशीलता का द्योतक है। निरन्तर गद्दी पर बैठने वाले व्यापारी का पेट बढ़ जाता है, शरीर ढीला पड़ जाता है। रोग पनपते हैं, बढ़ते हैं और उन्हें प्रोत्साहन मिलता है। मजदूर सूखी रोटी खाकर भी अत्यन्त परिश्रम का कार्य करने की क्षमता रखता है। दण्ड, बैठक, दौड़, कुश्ती, सुन्दर आदि के व्यायाम से स्वास्थ्य के निखरने का भी यही अभिप्राय है।

केवल चैतन्य जीवों में ही नहीं, जड़ पदार्थों में भी यही नियम लागू होता है। लोहा एक स्थान पर पड़ा रहे तो उसे जग लग जाता है। परन्तु जो सान पर रखा जाता है उसकी धार तेज होती है। हीरा जब खराद पर चढ़ाया जाता है, तभी उसका रूप-रंग निखरता है अन्यथा वह मिट्टी से सना हुआ एक पत्थर ही लगता है। पत्थर से हीरा बनाने का श्रेय क्रियाशीलता को ही है। स्पष्ट है कि हम भी यदि अपने पत्थर-रुप जीवन को हीरा बनाना चाहते हैं, तो हमें इसी अटल सिद्धांत का अनुकरण करना होगा, तभी हमारे जीवन में जीवन आ पायेगा।

इन्द्र साक्षी हैं कि जीवन में सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए हमें निरन्तर गतिशील रहना होगा।

काली ने चण्ड और मुण्ड नामक दो महावीर असुरों का युद्ध में वध किया था, इसलिए उनका नाम चामुण्डा पड़ा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चण्ड प्रवृत्ति और मुण्ड निवृत्ति के बोधक हैं। इन्हें नष्ट करने वाली प्रलय शक्ति ही चामुण्डा कहलाती है। इस जगत में अपार संख्या में चंड और मुण्ड भरे पड़ें हैं और वह निरन्तर आसुरी प्रहार करते हैं। उनके प्रति सावधानी न बरती जाय तो निश्चय ही हमें दुःखकलह क्लेश का ही सामना करना पड़ेगा। हमें अपनी शक्तियों का विकास करना होगा और इनसे युद्धरत रहने के लिए सदैव तैयार रहना होगा अन्यथा जीवन में निराशा-ही-निराशा देखेंगे। आशा और विश्वास के दर्शन के लिये चामुण्डा का आह्वान आवश्यक है।

चामुण्डा का कोई वाहन नहीं है।

यह शक्ति के विभिन्न वाहनों का रहस्य है। यदि इन आध्यात्मिक रहस्यों को जीवन में उतारा जाय, तो जीवन अबाध गति से प्रगति-पथ पर आरुढ़ हो सकता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

—×—

आचार्य शंकर और शाक्त मत

स्वामी शंकराचार्य वैदिक धर्म के संस्थापक माने जाते हैं, साथ ही उन्हें शाक्त-सिद्धान्तों के विवेचन में प्रमाण स्वीकार किया जाता है। कुछ शाक्त उन्हें मायावादी और अपने कुछ सिद्धान्तों का बिरोधी भी समझते हैं। सम्भव है कभी उन्होंने शाक्त-मत का खण्डन भी किया हो। कथा है कि वह एक बार शाक्तमत का खण्डन करने के लिए कश्मीर गये थे। वहाँ दस्तों में वह बिलकुल अशक्त हो गये, तो एक बारह वर्ष की कन्या उनके पास आई और कान में कहा कि आप तो शाक्त-मत का खण्डन करने आये हैं? शंकर ने धीरे से कहा—"मैं आया तो इसी उद्देश्य से था, परन्तु अभी मुझमें बोलने की शक्ति नहीं है। रोग से मुक्त होकर जब स्वस्थ हो जाऊँगा और शक्ति आ जायगी तो कुछ करुँगा। शक्ति के बिना तो कुछ भी करना सम्भव नहीं है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उस कन्या ने कहा—'जब आप शक्ति के अभाव में कुछ भी करने में असमर्थ हैं, तो शाक्तमत का खण्डन और अद्वैत मत का मंडन किस प्रकार कर सकेंगे ? मैं ही शिव की शक्ति शिवा हूँ। शिव तो एक, अद्वितीय, कूटस्थ, अचल, ध्रुव और एकरस हैं। उनमें क्रिया का अभाव है। शिव ने मेरी-शक्ति की रचना की हैं—इससे आप भी सहमत हैं। फिर आप उसका खंडन कैसे कर सकते हैं ! खंडन-मंडन तो में ही करूँगी, शिव कुछ नहीं करेंगे। जिसके अभाव में आप कुछ भी करने में असमर्थ हैं, उसका आप खंडन कैसे करेंगे ? मैं शिव से अभिन्न हूँ, फिर भी जगत् जीव शिव और अपने अस्तित्व की सत्ता को मैं सिद्ध करती हूँ। अतः मेरा खण्डन कैसे करोगे ?

सुनते हैं, शंकर अवाक रह गये और कश्मीर से लौट आये। तब से उन्होंने शक्ति-मत का खण्डन नहीं किया। एक किंवदन्ती और है कि एक वार वह महादेव के दर्शनों के लिए कैलाश गये और उनसे सौन्दर्य-लहरी माँगी, जो शिव ने दी। नन्दी को यह अच्छा नहीं लगा। जब वह चलने लगे तो नन्दी ने झपट्टा मारा और पुस्तक को छीनने का प्रयत्न किया। वह आधी पुस्तक प्राप्त करने में सफल हो गया। शंकर के पास आधी ही रह पाई। यहाँ आकर उन्होंने इसका पुनरुद्धार किया शाक्तों के लिये सोंदर्य-लहरी का प्रत्येक श्लोक मन्त्र-रूप होता है। अतः इससे वह एक महान् शक्ति दृष्टिगोचर होते है।

ऐसा लगता है कि शंकर को शक्ति-दृष्टि, गुरुपरम्परा से ही प्राप्त हूई है। उनके परमगुरु गोड़पाद महान् वेदान्तिक होने के नाते माण्डूक्य-कारिका के रचयिता थे। दूसरी ओर वह योगाचारों के अद्वैतवाद के भी पक्षपाती थे। आगम-मत के वह विशिष्ट विद्वान् थे–यह उनकी 'सुभगोदयस्तुति' से परिलक्षित होता है। इस पर अनेकों टीकाएँ हैं। आचार्य शंकर ने भी इस पर टीका लिखी थी। उन्होंने श्री विद्यारत्न सूत्र' की भी रचना की थी। इसकी अनेकों टीकाएँ हुई हैं।

कुछ प्राचीन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि शंकर गुरु-परम्परा से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शाक्त मत के उपदेष्टा व उपासक रहे हैं। 'श्री क्रमोत्तम' श्रीविद्या का श्रेष्ठ ग्रन्थ है।उसमें शिव से प्रारम्भ करके वसिष्ठ शक्ति, पराशर, व्यास शुकदेव गौड़पाद, गोविन्दपाल और शंकर का नाम आता है। मातंगी पूजा के एक ग्रन्थ 'सुमुखि-पूजा-पद्धति' में भी इस क्रम में कुछ समानता है। अन्तर इतना ही है कि शंकर के बाद 'बोधधन' और 'ज्ञानधन' हैं। 'भुवनेश्वरी रहस्य' में भी इसका वर्णन आता है। इससे स्पष्ट है कि वह भुवनेश्वरी मातङ्गी और श्रीविद्या के उपासक व प्रचारक थे।

शंकर ने तन्त्रमत के प्रसिद्ध छः सम्प्रदायों—शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त गाणपत्य और कापालिक के सिद्धान्तों को स्वीकार किया था और उनकी दृढ़ता से प्रतिष्ठापना की थी। इन सम्प्रदायों के उपास्य देवों की स्तुतियों को भी उन्होंने रचना की थी। इस तरह से तांत्रिक सम्प्रदायों की एकता में उनका व्यक्तित्व आदर्श रहा।

शंकरकृत भवानी-स्तुति प्रसिद्ध है। उसका पहला श्लोक इस प्रकार है—

भवानि ! स्तोतु त्वां प्रभव ति चतुर्भिर्न वदनैः।
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथन पञ्चभिरपि ॥
न षड्भिः सेनानीदर्शशतमुखैरप्यहिपति—
स्तदान्येषां केषां कथमस्मिन्नवसरः ॥

'हे भवानी ! सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा अपने चार मुखों से, त्रिपुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने वाले शंकर अपने पाँच मुखों से, छः मुखों वाले कार्तिकेयजी और हजार मुख वाले शेषजी भी तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ रहते हैं। फिर मेरे जैसे जीवों के लिए तो यह कैसे सम्भव है ?''

ब्रह्मसूत्र के भाष्य में भी उन्होंने शाक्त-मत का प्रतिपादन किया है। यथा—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टव्यं सिध्यति ।
शक्तिरहितस्य यस्य प्रवृत्यनुपत्ततेः ।।

—ब्र० सू० शा० भा० १।४।३

शक्ति के अभाव में ईश्वर सृष्टि की रचना नहीं कर सकते, क्योंकि इसके बिना उनका क्रियाशील होना सम्भव नहीं है ।"

इसी प्रकार—

एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीराद्विवष्ठिचित्रपरिणाम उपपद्यते ।

—ब्र० सू० शा० भा० २।२।२४

इस पर शक्ति की सामर्थ्य से ही ब्रह्मा को शरीर अथवा इन्द्रियों के धारण की अपेक्षा नहीं रहतीं । इनके बिना भी वह सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान रहते हैं ।"

'सौन्दर्य-लहरी' शंकर की एक अनुपम रचना है, जिसे यदि कवित्य और तान्त्रिक ज्ञान की त्रिवेणी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी । इसकी ३५ टीकाएँ प्राप्य हैं, जिनमें कामेश्वरसूक्ति, नरसिंह, अच्युतानंद और कैवल्याश्रम की टीकाएँ अभी तक भी प्रकाशित नहीं हो पाई हैं । लक्ष्मीधर की टीका उत्तम है । शंकर ने इसमें श्रीविद्या का समुद्धार किया है ।

सौंदर्य-लहरी का प्रथम श्लोक ही शिव-शक्ति के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है—

शिवशक्तचायुक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवों न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतत्त्यामाराध्या हरिहरविञ्चादिभिरपि,
प्रणन्तु स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ।

"शिव यदि शक्ति से सचित होता हैं, तो वह प्रभावशाली एवं शक्ति-सम्पन्न हो सकता है और यदि ऐसा नहीं होता, तो वह देव स्पन्दन न करने के लिये भी कुशल नहीं होता है । अतएव आराधना करने के योग्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आप ही हैं, जिसको हरि, हर और ब्रह्मा आदि भी प्रणाम करते हैं तथा स्तवन किया करते हैं अन्यथा अकृत पुण्य वह कैसे समर्थ हो सकता है।"

और भी कहा है—

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम् ।
अतः शेषः शेषीन्ययमभम साधारणतया,
स्थितः सम्वन्धो वां समरसपरानन्दपरयो ।।

"शम्भु का शरीर आप ही हैं, आपके दोनों स्तन शशि और सूर्य हैं। हे भगवती ! मैं आपको ही अनघ नवीन आत्मा मानता हूँ। अतएव शेष और शेषी यह उभय में साधारणता से स्थित सम्बन्ध है, जो समरस परानन्द पर आप दोनों का हैं।"

इसी प्रकार—

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमेव स्वात्मानं परिणतायां न हि परम् ।
त्वमेव स्वात्मान परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकार शिवयुवतिभावेन विभृषे ।

—सौंदर्य-लहरी ३५

"आप ही मन हैं, व्योम तथा वायु भी आप ही हैं और मरुत के सारथि भी आप हैं। आप ही जल हैं। परिणत आप में भूमि है, अन्य नहीं हैं। आप ही स्वकीय आत्मत को विश्ववपु के द्वारा परिणमित करके के लिए ज्ञान तथा आनन्द के आकार वाला स्वरूप शिव और युवती के भाव से धारण किया करती हैं।"

उनके शाक्त-मत का पक्षपाती होने का प्रणाम नीचे के दो-स्तोत्रों से भी भली प्रकार सिद्ध होता है—

शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी,
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्वमयी चिन्मयी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयीं,
सर्वेश्वर्यमयी सदाशिवमयीं मां पाहि मीनाम्बिके ।।
—मीनाक्षी-स्तोत्र

'मीनाक्षी माँ ! तुम शव्द-ब्रह्म से युक्त हो, चराचर में व्याप्त हो प्रकाश स्वरूपा हो, वाणी में व्याप्त हो, नित्य आनन्दमयी हो, निर्लेप हो, हो, तत् और त्वम् पदों से युक्त एवं चैतन्यस्वरूपा हो। तत्वों से पृथक हो, परात्पर हो माया और लक्ष्मी. से परिपूर्ण हो, सारे ऐश्वर्यों की स्वामिनी हो, सदाशिव से युक्त हो, मुझ भक्त की रक्षा करो।''

चकारः निर्गुणब्रह्मोऽपि सगुणब्रह्मविशेषण सद्भाव-समुच्चयपरः सर्वत्रापि द्रष्टव्यः। सच्चिनमयः शिवः साक्षात्तस्या-नन्दमयी शिवा' इति वचनेन स्त्रीरूपां चिन्तयेद्देवीं पुरुषमथवे-श्वरीम्। अथवा निष्कल ध्यायेत् सच्चिदानन्दविग्रहम्' इति स्मृत्या च 'त्वं स्त्री त्वं पुमान्' इति श्वेताश्वतरोपनिषद् उपाधि-कृतनानारूपसम्भवोक्तेश्चा अतएव सेयं देवतैक्षत' इत्यादौ तत्सत्यं स आत्मा' इत्यंते च श्रुतौ स्त्रीलिंगान्तदेवतादिपदानी तत्सत्यमिति नपुंसकान्तस्य, स आत्मेति पुंल्लिगात्मशब्दस्य एकार्थत्वम्। अविवक्षितोपाधिमत्तया तत्वं परलक्ष्यार्थस्यैकात्वात्। तस्मात् तत्वं अक्ष्यार्थे सर्वेऽपि गुणा वर्णितुं सम्भवन्तींति हयग्रीवेण अस्यां त्रिशत्यां वहवः चकारा उपात्ताः।

"चकार निर्गुण ब्रह्म का और सगुण ब्रह्म का बोध कराने वाला समझना चाहिये। 'शिव साक्षात् सत्, चित् और आनन्द से युक्त है' और 'देवी का स्त्री' रूप में अथवा पुरुष रुप में चिन्तन करे' अथवा 'सच्चिदानन्द ब्रह्म के निर्गुण रूप का ध्यान करे—इस स्मृति-वचन से "तुम स्त्री हो और तुम पुरुष भी" इस श्वेताश्वतरोपनिषद से वचन का प्रमाण उपस्थित है। इसलिए 'इस देवी ने देखा', 'वह सत्य है, वही आत्मा है' आदि में, वेद में स्त्रीलिंग शव्दों एवं पुल्लिग शव्दों का एक ही अर्थ है। उपाधि न कहे जाने के कारण लक्ष्य-अर्थ भी एक ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इसलिए तत् और त्वम् पदों द्वारा सारे गुणों का वर्णन भी सम्भव है, इसलिये हयग्रीव ने इसमें बहुत से चकार बताये हैं।''

शंकर वेदान्त तथा अद्वैतवाद के आचार्य माने जाते हैं। तन्त्रों का गम्भीर अवलोकन करने वालों को भी उनमें यही ध्वनि सुनाई देती है। शैव तथा शाक्त आगमों में विभिन्न स्थानों पर इस मत की गरिमा का गान किया गया है। चतुःषष्टि भैरवागमों में भी अद्वैत-तत्व का प्रतिपादन है। यह तन्त्र जीवात्मा को परमात्मा के साथ अभेद सिद्धि मानते हैं। तांत्रिक साधना का पहला सिद्धान्त भी यही है—

देवो भूत्वा यजेद् देवम्।

साधक को अपने उपास्य देव के साथ एकता स्थापित करनी शाक्त-मत की प्रत्येक साधना में अद्वैतवाद की प्रमुखता रहती है। उसकी यही विचार-धारा रहती है—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥

'मैं देवी हूँ, अन्य नहीं। मैं ब्रह्म ही हूँ। शोक का विषय नहीं। सत्, चित् और आनन्द गुणों से युक्त मैं नित्यमुक्त हूँ।''

इससे स्पष्ट है कि शंकर वेदान्त मत के परम आचार्य होते हुए भी शाक्त-मत का समर्थन करते थे और इसके उपदेष्टा थे।

शंकर ने 'प्रपञ्चमार' नाम के तन्त्र की रचना भी की है। इसकी टीका उनके शिष्य पद्मपादाचार्य ने लिखी है। 'सौन्दर्य लहरी' के अतिरिक्त 'ललितात्रिशतीभाष्य' उनकी एक उत्तम कृति मानी जाती है। इसमें शंकर को तंत्र-प्रसार का एक स्तम्भ माना जा सकता है।

शक्ति और वेद

वेद में शक्ति-तत्व का अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वेद के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आर्य-ऋषि ईश्वर के मातृरूप

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की आराधना से परिचित थे। प्रणामस्वरूप अनेकों मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जो इस भावना के बोधक हैं। वेद में कहा है कि एक 'अजा' से ही प्रजाओं की सृष्टि हुई है उस 'अजा' से यह आद्याशक्ति ही अभिप्रेत मानी गई है।

ऋग्वेद में तो एक पूरा सूक्त इसी के लिए सुरक्षित हैं। अम्भृण ऋषि की विदुषी कन्या वाक् को परमात्म-साक्षात्कार हुआ था और ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त करने में वह सफल हुई थी। उनकी अनुभूतियों के सार रूप मन्त्र वेद में दिये हुए हैं जिन्हें देवी-सूक्त के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल का १२५ वाँ सूक्त हैं—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।१।
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।२।
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।३।
मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति,श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।४।
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।५।
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।६।
अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।७।

अर्थ—'मैं ग्यारह रुद्र और आठ वसुओं के रूप में विचरती हूँ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धाता आदि द्वादश आदित्य और विश्वेदेवा रूप से भी विचरती हूँ। मैं मित्रावरुण का भरण करती, इन्द्राग्नि और अश्विद्वय को धारण करती हूँ।१।

मैं ब्रह्मात्मिका दिखाई पड़ने वाले सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ इसलिए आराधकों को ऐश्वर्य प्राप्त कराती हूँ। मैंने परब्रह्म से साक्षात्कार किया है, इसलिये यज्ञयोग्य देवताओं में मैं प्रमुख हूँ। ऐसी मुझे, फलदाता देवता अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार देवगण जो कुछ करते हैं, वह सब मेरे निमित्त ही होता है।३।

मैं स्वयं आत्मरूपा हूँ मैं इन्द्रादि देव और मनुष्यों को भी प्रिय ब्रह्मात्मक वस्तु का उपदेश करती हूँ। मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ उसे प्रवल बनाती हूँ। मैं उसे ईश्वर सृष्टा और ऋषि बनाकर सुन्दर बुद्धि से सम्पन्न करती हूँ।५।

अन्न भक्षण करने वाला भोक्ता मेरे द्वारा ही खाता है। देखना, सुनना श्वांस लेना आदि सभी कार्य मेरे द्वारा ही किये जाते हैं। मैं इस प्रकार अन्तर्यामी रुप से व्याप्त हूँ। जो मुझे नहीं जानते, वह उपक्षीण हो जाते हैं। हे मित्र ! यह भक्ति करने के योग्य जो कुछ, मैंने कहा है, उसे ध्यान से सुन।४।

त्रिपुरासुर को मारने के लिये मैं ही धनुप उठाती और स्तुति करने वालों के लिए युद्ध करती हूँ। मैं स्वर्ग और आकाश को अदृश्य रुप से व्याप्त करती हूँ।६।

शत्रुओं का जहाँ नाश हो जाता है, ऐसे स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं से सम्बन्धित सोम का मैं पोषण करती, त्वष्टा, पूषा और भग देवता का भी मैं ही पोषण करती हूँ और मैं ही हविदाता यजमान को भी यज्ञ का फलरुप ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ।२।

इस दीखते हुए लोक के शिररूप सत्यलोक में निवास करने वाले विधाता को मैं ही उत्पन्न करती हूँ। इस संसार की मैं ही कारणरुप हूँ, ब्रह्म-चैतन्य की निमित्त भी मैं ही हूँ। समुद्र में बड़वानल और विद्युत-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुप तेज भी मेरा है। मैं सब प्राणियों को प्रकट करती, स्वर्ग और ब्रह्म में अध्यस्त विकारों को मायात्मक देह से स्पर्श करती, पृथ्वी के ऊपर पितारुप द्युलोक को प्रेरित करती और आन्तरिक्ष के जन्म विकार रुप देवताओं में जो ब्रह्म व्याप्त है, उसके द्वारा मैं सबको छूती हूँ।७।

मैं किसी अन्य की सहायता लिये बिना सब प्राणियों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ। द्युलोक, पृथ्वी और सम्पूर्ण विकारों से रहित ब्रह्म-चैतन्य-रुप वाली मैं अपनी ही महत्ता से ऐसी शक्तिशालिनी हो गई हूँ।८।

इयम् ददोद्र भसमृणाच्युतं दिवोदासं वह्नयश्वाय दाशुषे।
या शाश्वन्तमाचरवादावसं पणि त ते दात्राणि तविता
सरस्वतिः॥
इयं शुष्मेभि बसखा इवारुजासानु गिरीणां
ततिषेभिरूर्मिभिः॥
पारावतघ्नीमवसे सुवृवितभिः सरस्वतीमा
सरस्वति देवदिदो निवर्हय प्रजां विश्वस्य वृसयस्य
भायिन।
उत क्षितिभ्योऽवनीविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो
वाजिनीवति॥
प्रणो देवी सरस्वती वाजे भिर्वाजिनावती
धीनामवित्र्यवतु।
यस्त्वा देवी सरस्वत्युपब्रू ते धने हिते
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये॥

'सरस्वती ने हविदाता, वध्रयस्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया। उन्होंने अदानशील पणि का शोधन किया। हे सरस्वती तुम्हारे दान विस्तृत हैं। यह सरस्वती पर्वत के तटों को अपनी लहरों से तोड़ती है। हम उन्हीं की सेवा करते हैं। हे सरस्वती ! तुमने देव-निन्दकों और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वष्टा के पुत्रों को मारा तथा मनुष्यों को भूमि देकर जल-वृष्टि की। अन्नवती सरस्वती रक्षा करने वाली हैं वे हमें भली प्रकार तृप्त करें इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है वही पुरुष धन प्राप्ति वाले संग्राम में जाता है। तुम उसकी रक्षक होओ।'

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनी
रदापूषेव न सनिम्‌ ।
उत स्या न सरस्वती घोरा हरण्यवर्तनिः
वृत्रघ्नीं वृष्टि सुष्टुतिम्‌ ॥
यस्या अनन्तो अह्नुतस्त्वेषश्चषणुरणवः
अमश्चवृत्ति रोरुवत्‌ ।
सा नो विश्वा अतिद्विषः स्वसुरन्या ऋतावरी
अतन्नहेव सूर्यः ॥
उत न प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा
सरस्वती स्तोभ्या भूत्‌ ॥

'हे सरस्वती ! तुम युद्ध में रक्षा करो। पूषाके समान हमें उपभोग्य धन दो। शत्रु का नाश करने वाली रथारुढ़ा सरस्वती हमरे श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करें। इन सरस्वती का वेगवान जल शब्द करता हुआ जाता है। सूर्य जैसे दिन को लाते हैं, वैसे ही सरस्वती विजय लेकर अपनी अन्य भगिनियों सहित आती हैं। सरस्वती की प्राचीन ऋषियों ने सेवा की थी वह हमारी स्तुति के योग्य हो।'

आपपर्षा प्राथिवान्यरु रूजो अन्तरिक्षम्‌
सरस्वती निदस्पातु ॥
त्रिषधास्ता सप्तवातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती ।
वाजेताजे ह्व्याभूत ॥
प्रचा महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या
आपसामपस्त मा ।
रथइव वृहती विभवने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा
मा न आ धक् ।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानिगन्म ।।

'जिन सरस्वती ने स्वर्ग और पृथ्वी को तेज से पूर्ण किया है, वे हमें निन्दकों से बचावे । सप्त नदियों वाली सरस्वती संग्राम में आह्वान करने योग्य होती हैं । यशवती, नदियों में श्रेष्ठ, गुणवती सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं । हमें हीन या पीड़ित मत करो । हमारा बन्धुत्व स्वीकार करो । हम निकृष्ट स्थान को प्राप्त न हों ।''

एक विद्वान् ने इन शब्दों में सरस्वती का विवेचन किया है—

'वेद का प्रतीकवाद सरस्वती के अलंकार में अत्यधिक स्पष्टता के साथ अपने आपको प्रकट कर देता है, छुपाकर नहीं रख सकता । वह तो सीधे तौर पर और स्पष्ट रुप से वाणी की देवी हैं, एक दिव्य अन्तः प्रेरणा की देवी हैं । 'सरस्वती का सम्बन्ध न केवल अन्य नदियों के साथ है, किन्तु अन्य देवियों के साथ भी है, जो देवियों की स्पष्ट तौर से आध्यात्पिक प्रतीक है ।—इला, मही या भारती और सरस्वती—ये तीनों उन प्रार्थना-मन्त्रों में, जिनमें कि अग्नि के साथ देवताओं को यज्ञ में पुकारा गया है, एक स्थिर सूत्र के रुप में इकट्ठी आती हैं ।'

ऋग्वेद के श्रीसूक्त में भगवती के जड़ और चेतन रुप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

का सोऽस्मितां हिरण्यप्रकारामार्द्रा,
ज्वलन्ती तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णा
तामिहोपह्वये श्रियम् ।।

'किसी आनन्द-सम्मुख तथा सुस्थ, स्निग्ध प्रेमास्पद, प्रकाशशील जड़स्वरुप और अपने लोक में सोने के महल वाली, अपने आप तृप्त और दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करने वाली,पद्माकर सिंहासन में विराजमान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और मन्त्रों में पूज्य रूप अर्चावतार में स्थिति पद्म वर्ण वाली उस भगवती का मैं ध्यान करता हूँ ।'

अथर्ववेद के चौथे कांड में ३० वें सूक्त की देवता भी वाक् है । इसमें भी ८ मन्त्र हैं और यह वही ऋग्वेद वाले ही मन्त्र उद्धृत हैं, परन्तु प्रस्तुत करने में कुछ अन्तर है । अथर्ववेद के ऋषि को वाक् देवी की वाणी ने प्रभावित किया, तभी पूरे-का-पूरा सूक्त उसी प्रकार दे दिया जैसा ऋग्वेद में है । इससे वेद की शक्ति-विषयक मान्यता और दृढ़ होती है । दुर्गा की स्तुति करते हुए अथर्ववेद का ऋषि कहता है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणीं ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी ॥
यस्या परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिताः ।
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ॥
नमामि भयभीतोऽहं संसारार्णव तारिणीम् ।

'मन्त्रों में मातृका, शब्दों में ज्ञान, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्य-साक्षिणी रूप से और जिससे परे और कुछ नहीं है, वही है माँ दुर्गा उन्हीं दुर्विज्ञेय, दुर्गम, दुराचारनाशिनी, संसार से पार करने वाली भगवती दुर्गा को मैं भयभीत जन नमस्कार करता हूँ ।'

ईश्वर के मातृरूप को ऋग्वेद में अदिति कहा गया है वही वेद में मातृत्व-रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं । इस अखण्ड आनन्द और चैतन्य को स्फुरित करने वाली शक्ति का रहस्यमय नाम 'अदिति' रखा गया है । उसे देवतामयी भी कहा गया है । 'अदिति' के रूप का वर्णन करते हुए (१।८६।१०) में कहा गया है—

अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिजनित्वम् ॥

'आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, सभी जातियाँ अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा, वह सभी अदिति के रूप हैं ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋग्वेद ८।२५।३ में इसे सत्यनिष्ठा और महिमामयी कहा गया है और तेजस्वी तथा ऐश्वर्यशाली मित्रावरुण को राक्षसों का बल मिटाने के लिये प्रकट करने का गौरव प्राप्त हुआ है। ८।४७।२ में मित्र, वरुण और अर्यमा की माता कहकर उसे सुखदाता, धनदाता और मंगलकारक कहा गया है। २।२७।७ में शत्रुओं से सुरक्षा के लिये अदिति से प्रार्थना की गई है।१।१३६।३ में अदिति को पृथ्वी की धारक और आकाश से युक्त कहा गया है, जिनकी मित्र, वरुण नित्य सेवा करते हैं। ८।६७।१२ में पुत्र को जीवित रखने के लिए रक्षा की प्रार्थना की गई है। ५।६४।६ में अदिति को सर्वव्यापक स्वीकार किया गया है।७।४०।४में अदिति को प्रकाशमयी का विशेषण दिया गया है।२।४०।६ में अदिति को तेजस्विनी कहा गया है और शत्रुओं से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है ।७।९६।६ में अदिति से दोषमुक्त करने की प्रार्थना की गई है अर्थात् वह इस शक्ति से सम्पन्न है।

यजुर्वेद (२१।५) में अदिति के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

महीमूषु मातरँसुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
ताविक्षत्रांम जरन्तीमुरूचीँसुरामणिदितिँसुप्रणीतिम् ।।

महान् यशवाली श्रेष्ठ कर्मों की माता और सत्यरुप यज्ञ की पालिका वहुक्षत से रक्षा करने वाली दीर्घ मार्ग में गमनशील और अजर तथा कल्याण अदिति को रक्षा के लिये आहुत करते हैं।'

अथर्ववेद ६।४।१—२ में अदिति को अजेय बल की रक्षक कहा गया है।

श्री अरविन्द ने अदिति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'अदिति वह अनन्त सत्ता है जिससे देवता उत्पन्न हुए है और जो अपने सात नामों और स्थानों (धामानि) के साथ माता के रुप में वर्णित की गई है। यह भी माना गया है कि वह अनन्त चेतना है, गौ है या वह आद्याज्योति है, जो 'सप्तगावः' में व्यक्त होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदों की अदिति—अनन्त अखण्ड शक्ति–देवताओं की माँ है। मूल-रुप से अदिति एकमेव और स्वयं प्रकाशित अनन्त सत्ता की शुद्ध चेतना है। अदिति वह ज्योति है जो समस्त वस्तुओं की माँ है। यह वह गाय है, जिसका धन समस्त विश्व का पोषण करता है। यहाँ निम्नसत्ता में वह भू-सिद्धान्त के रुप में व्यक्त हुई है। अदिति-अनन्त माँ–अपने बालकों देवताओं—के जन्म तथा कार्य के द्वारा मानव सत्ता में अपने को उप-लब्ध है।'

दिति दैत्यों की माता है–इसका भी वेद में वर्णन आता है। अदिति और दिति की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए एक अधिकारी विद्वान ने एक बार लिखा था—

जिस प्रकार व्यक्ति को जन्म देने वाली माता होती है, उसी प्रकार जगत और ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाली माता भी है। निःसीम विश्वातीतता (ट्रांसकान्सेन्स) में से विश्व को जन्म देना विश्वमाता का काम है। परन्तु विश्व की उत्पत्ति के बारे में बिलकुल ही अलग फिर भी अविरोधी और एक दूसरे के पूरक दो दृष्टिबिन्दु है। एक के अनु-सार विश्व की उत्पत्ति विश्वातीत परचेतना (सुपरकान्सेन्स) में हुई है, जब कि दूसरे के अनुसार अचेतना (इनकान्सेन्स) में से। पहला दृष्टि बिन्दु आत्मवादी है और दूसरा भौतिकवादी का। दोनों सच्चे हैं। एक ही घटना को ये अस्तित्व दो छोरों से देखते हैं।

जब ऊपर के छोर से विश्व की उत्पत्ति को देखते हैं तो विश्व की माता निःसीम अविभक्त चित्-शक्ति हैं। ऋग्वेद की भाषा में चित्ति' तथा देवों की माता 'अदिति' है। जब नीचे के छोर से देखते हैं, तब विश्व की माता विभक्त एवं विभाजक अचेतना है। वेद की भाषा में 'अचित्ति' तथा दैत्यों की माता 'दिति' है। चित्त एवं अचित्त, अदिति एवं दिति दोनों एक साथ ही जगत् की माताएं हैं। पहली है निःसीम चेतना और दूसरी है उसी का दर्पण में पड़ता उल्टा प्रतिबिम्ब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(मिरर इमेज)। पुराणों के अनुसार अदिति और दिति दोनों कश्यप की पत्नियाँ हैं। कश्यप सूर्य है और सूर्य अतिमानस चेतना का प्रतीक है अतिमानस चेतना विश्व को उत्पन्न करने वाली हैं–उसके भीतर अदिति और दिति अर्थात् निःसीमता और असीमता, एकत्व और अनेकत्व अखण्डता और खण्डितता–दोनों का सम्पूर्ण समन्वय है, संवादिता है।

अदिति अथवा निःसीम चेतना देवों की–आदित्यों की माता है। दिति अथवा विभक्त हुई—टुकड़े हुई (दो-अवखंडने) धातु पर से चेतना दैत्यों की माता है। देव तथा आदित्य दिव्य-तत्व हैं, वे सभी को अविभक्तता, संवादिता की ओर ले जाते हैं। दैत्य-अदित्य तत्व हैं, वे सभी में विभक्तता एवं विसंवादिता का निर्माण करते हैं।

अदिति की विरोधिनी सलिन सत्ताको दिति कहा जाता है। इसलिये उसके पुत्रों का नाम दैत्य पड़ा। दिति के विरुद्ध अदिति हैं। दैत्य के विरुद्ध आदित्य है, असुर के विरुद्ध देव हैं। ऋग्वेद ७।१५।१२में दितिश्च दाति वार्यमम' दिति को इच्छित फल देवी कहा गया है।४।२।११ में भी दिति को प्रदान करने वाला कहा गया है। अथर्ववेद १५।१८।४ और १६।६।७ में देवी के रुप में दिति का वर्णन किया गया है। ७।७।१ में दिति के पुत्रों का उल्लेख है।

कुछ अन्य देवियों का वर्णन भी वेद में आता है। सूर्यादेवी के सूक्तों में शक्ति के पत्नी-भाव का उल्लेख है। ऋग्वेद के परिशिष्ट में लक्ष्मी-सूक्त आता है। ऊषादेवी के सूक्तों में शक्ति के कुमारी-भाव का वर्णन है। श्री अरविन्द ने इन सुन्दर और सुगठित शब्दों मे ऊषादेवी की व्याख्या की है–

'ऊषा स्वर्ग की पुत्री, अदिति की शक्ति और मुख है। वह सर्वदा मानवों पर दिव्य ज्योति की उन्मुक्तता बिखेरती है। वह आध्यात्मिक समृद्धि की आगमनी है। भू-सत्ता हर स्वर्ग के स्वर्णिम कोष की वर्षा है। ऊषा मानव को अज्ञान की रात्रिमें सर्वोच्च आलोक की दिशा का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीक हैं। उषा का मूल चिन्तन और अंगिरस की कथा वैदिक विचार का हृदय है। ऊषा देवमाता भी है। वह उन्हें मानव की क्षुद्रता से बिना दवाये और हमारी प्रज्ञा में बिना आवृत्त किए ही मानवता में जन्म देती है।'

ऋग्वेद में अनेकों सूक्त उषा के लिए समर्पित हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ६२ वें सूक्त में इसकी महिमा वर्णित है। यहाँ से आकाश की पुत्री और अद्‌भुत प्रकाश से युक्त कहा गया है। (५) प्रिय सत्य की ओर प्रेरित करने वाली गौतमों द्वारा स्तुत्य है, उससे पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है (७) वह सौभाग्यवती है (८), वह सब लोकों को देखती है और चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है (६) वह 'आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है। प्रथम मण्डल का ११३ वाँ सूक्त भी पूरा उषा के लिए विहित है। वहाँ इसे कर्मक्षेत्र का द्वार खोलने वाला कहा गया है (४), सिकुड़ कर सोते हुए को यह घनेश्वरी चैतन्य करती है। वह भोग पूजा, धन, दृष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई सब भुवनों को प्रकाश से भर देतीं है (५), सब भुवनों पर इसका अधिकार है (६), यह उज्ज्वल युवती सभी पार्थिव धनों की स्वामिनी है (७) यह जीवित को प्रेरणा देने वाली, मृत को चैतन्यता प्रदान करती है, (८) अजर अमर यह ऊषा अपनी इच्छा से गतिमान है।

ऋग्वेद (पाँचवें मण्डल) के ७६-८० सूक्तों के देवता भी ऊषा है। ७६ वें सूक्त में इसे श्रेष्ठ बुद्धिदाता (१) धनदाता (२) अन्धकार मिटाने वाली (३) ऐश्वर्यशालिनी (४) अन्नदाता (५) कहा है। ८० वाँ सूक्त में सर्वव्यापनी, यज्ञों की उत्तम प्रकार से पूजनीय हैं। (१)।

वेद में देवताओं की पत्नियों के नाम भी देवियों के रुप में आते हैं। जैसे इन्द्र की इन्द्राणी, वरुण और वरुणानी, अग्नि की आग्नेयी, रुद्र की रुद्राणी, अश्विनी की अश्विनी आदि।

मरुतों की माता को पृश्नि कहा गया है। द्यौस् को भी एक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलग सूक्त दिया गया है । 'रात्रि का भी १०।१२७ में आह्वान किया गया है । 'पुरंधि' समृद्धि की देवी है । इसका वेद में ९ बार नाम आया है । प्रचुरता की देवी 'धिषरणा' है । दूध और घी की आहुतियों का स्थूलीकरण 'इला' में किया गया है । 'इडा' गाय से सम्बन्धित है । राका उदारता और समृद्धि की देवी है । सिनीवाली' वहुप्रसूता परिवार की स्वामिनी, सन्तान प्रदाता है । अथर्ववेद (८।४६।२) के इसे विष्णु-पत्नी घोषित किया है । 'नव-चन्द्रमा' का प्रतीक 'कुहू' का भी उल्लेख आता है ।

ऋग्वेद १।१३।९ में इला, सरस्वती और मही को सुख देने वाली कहा गया है ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेदों में भी ईश्वर के मातृरूप को स्वीकार किया गया है, देवियों की महिमा का यशोगान किया गया है, उनकी उपासना की प्रेरणा दी गई और उन्हें सुख एवं सौभाग्य प्रदान करने वाली बताया गया है । अतः इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वेद मातृ-उपासना—शक्ति-उपासना को मानते हैं ।

—×—

शक्ति और उपनिषद्

आत्म-विद्या, ब्रह्मविद्या के रहस्य का उपनिषदों में विवेचन हुआ है । उपनिषद् शब्द का अर्थ ही है—परमात्मा की प्राप्ति का रहस्यमय ज्ञान ।' भारतीय तत्वज्ञान का जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदों में मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं है । संसार के समस्त तत्वज्ञानियों के लिए यह ज्ञान अमृतोपम रहा है । जिसने इसका जितना ही अवगाहन किया है, उसे उतना ही आनन्द मिला है । आत्म-कल्याण का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए उपनिषदों से बढ़कर प्रकाश-स्तम्भ और कोई हो नहीं सकता । विदेशी दार्शनिक का भी यही अभिमत है कि उपनिषदों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के समान आत्मा को ऊँचा उठाने वाला ज्ञान संसार में और कहीं नहीं है।

भारतीय आध्यात्मवाद के प्रतीक उपनिषदों ने शक्ति और उसके तत्वज्ञान को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अनेकों उपनिषदें इसी के लिए अभिहित की गई हैं। वहवृच, देवी त्रिपुरा, त्रिपुरातापिनी, सीता, सौभाग्यलक्ष्मी, तारा, काली, कौल, सरस्वती-हृदय, अरुण, अद्वैतभाव और श्री विद्यातारक–शक्ति के बोधक उपनिषद् माने जाते हैं। इनमें से कौल, त्रिपुरा और भावना उपनिषद् का भाष्य प्रसिद्ध तांत्रिक दार्शनिक भास्कर राय ने लिखा है और त्रिपुरा व भावना पर अप्पय दीक्षित ने इनका प्रकाशन 'ताँत्रिक टेक्ट ग्रन्थमाला' कलकत्ता द्वारा हुआ है।

भावोपनिषद् देवी के परस्वरूप का प्रतिपादक है। इसमें श्रीविद्या की आध्यात्मक प्रतिष्ठा शक्ति है। शक्ति अद्वैतभाव की आधारशिला इसी उपनिषद् पर रखी गई प्रतीत होती है।

'त्रिपुरातापिनी में मूल श्रीविद्या की पञ्चदाक्षरी का उद्धार मिलता है। इसमें देवी की स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार की पूजन पद्धति का विवेचन है। यह नृसिंह-तापिनी से मिलता जुलता है।

'सरस्वती-हृदय' में ऋग्वेद के सरस्वती से सम्बन्धित मन्त्र हैं। उनका ताँत्रिक विनियोग भी दिया हुआ है। अरुणोपनिषद् तैत्तरीय आरण्यक से सम्बन्धित है।

देवी उपनिषद् तो सम्पूर्ण इसी विषय का विवेचन करता है। देवताओं की जिज्ञासा पर देवी ने उत्तर दिया—

'मैं ब्रह्मस्वरुपिणी हूँ। यह कार्य, कारण, रुप' प्रकृति और पुरुषात्मक विश्व मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दरुपिणी तथा आनन्द-रहित रुप वाली हूँ। मैं विज्ञानमयी और अविज्ञान रुप हूँ। मैं ज्ञातव्य ब्रह्म तथा ब्रह्म से परे भी हूँ। मैं पञ्चीकृत महाभूत हूँ। दिखाई पड़ने वाला यह सम्पूर्ण विश्व मैं ही हूँ। विद्या-अविद्या, वेद-अवेद अजा और अनजा मैं ही हूँ। मैं नीचे भी हूँ और ऊपर भी हूँ अगल-बगल में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी मैं हूँ। मैं रुद्रों और वसुओं के रुप में सवार करने वाली हूँ। आदित्यों और विश्वेदेवों के रुप में संचार भ्रमण करती रहती हूँ। मैं ही मित्रवरुण, इन्द्राग्नि और अश्विद्वय की पालिका हूँ। सोम, पूषा, भग और त्यष्टा को मैं ही धारण करती हूँ। तीनों लोकों को आक्रान्त करने के उद्देश्य से पदक्षेप करने वाले विष्णु व्रह्मा व प्रजापति को धारण करने वाली हूँ। देवताओं के लिए हवि-वाहक और सोमाभिषव वाले यजमान के निमित्त हवियुक्त धनों को धारण करती हूँ। मैं उपासकों के लिए धनदायिनी, ज्ञानवती, यज्ञों में नायिका तथा सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ। विश्व के पितारुप आकाश को परमात्मा के ऊपर मैं ही प्रकट करती हूँ। मेरा स्थान आतमरुप को धारियित्री बुद्धि-वृत्ति में हैं। इस प्रकार जानने वाला ज्ञानी पुरुष दिव्य सम्पत्ति प्राप्त करता है।'

फिर देवताओं ने देवी की स्तुति करते हुए तथा दक्ष को सम्वोधित करते हुए कहा है—

हे दक्ष ! आपकी कन्या अदिति के प्रसूता होने पर अमृतत्व गुण वाले देवताओं की उत्पत्ति हुई। काम, योनि, कमल वज्री, गुहा सकल-रुपा वण एवं माया यह सव उस जगत्माता की व्रह्मरुपिणी सूत्रविद्या हैं। यह विश्व को मोहित करने वाली, पाश, अंकुश, धनुष-बाण-धारिणी पुरुष शोक-सन्ताप से मुक्त हो जाता है। हे जगत् माता तुम्हें नमस्कार नमस्कार है। तुम सभी प्रकार से हमारी रक्षा करने वाली बनो।

वही यह एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य और अष्टवसु है। वही यह सोमपायी विश्वदेवा है। वही यह जातुधान, दैत्य, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध है। वही यह विष्णु और रुद्र रुप वाली तथा सत्व-रज-कला-काष्ठादि सहित काल-स्वरुपा हैं। भोग और मोक्षदायिनी, पापनाशिनी, विश्व की अधिष्ठात्री अन्त से अतीत, कल्याण-मङ्गल रुप वाली, दोष-रहित एवं आश्रयवादी भी यही हैं। हम इन देवी को सदा नमस्कार करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदय-कमल में निवास करने वाली, अरुणोदय के समान प्रभा वाली, पाश-अंकुश-धारिणी मनोहर रुप वाली वरद हस्त और अभय मुद्रा वाली, त्रिनेत्र, लोहितवसना, कामना पूर्ण करने वाली देवी का मैं सदा भजन करता हूँ। हे महादेवि ! तुम महान भग और महान सङ्कट को दूर करने वाली तथा करुणामय मूर्ति हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मादि भी जिनके यथार्थ रुप को नहीं जानते, इसलिए जो अज्ञेय तथा अन्त न होने से अनन्ता कही जाती हैं, जो दिखाई न पड़ने से अलक्ष्या, जन्म रहित होने से अजा एक ही सर्वत्र व्यास होने से एका तथा विश्वरुप में अकेली ही सुशोभित से नैका कही जाती है। समस्त अक्षरों में मूलाधार रुप रहने वाली, चिन्मयातीता, शुन्धसाक्षिणी वे सर्वश्रेष्ठ दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध हैं। उस संसार-सागर से पार करने वाली, दुराचार को नष्ट करने वाली दुर्गा देवी को मैं भवसागर से भयभीत हुआ नमस्कार करता हूँ।"

वृहत्तोपनिषद् में देवी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—'देवी ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की और वही संसार की उत्पत्ति से पहले थीं। वह ही कामकला और शृंगारकला के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हीं से ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं से सारे मरुद्गण गन्धर्व, अप्सरायें और किन्नर उत्पन्न हुए। समस्त भोग सामग्री का कारण वही हुईं। सब कुछ उन्हीं से सृजन हुआ, शक्ति से सब कुछ बना मनुष्य तथा समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियों (अण्डज, स्वदेश, उद्भिज, जरायुज) की उत्पत्ति उन्हीं से हुई। उन्हीं को अपराशक्ति, शाम्भवी विद्या, कादिविद्या, हादिविद्या, सादिविद्या व रहस्यरुपा कहते हैं। वे ही वह अक्षर तत्व है, जो प्रणव का प्रतिपादन करती हैं—प्रणवस्वरुपा हैं, प्रत्येक प्राणी की वाणी पर अधिष्ठित हैं वे ही तीनों अवस्थाओं (जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति) व तीनों प्रकार के शरीरों (स्थूल सूक्ष्म और कारण) में व्याप्त हो रही हैं और वही उनको प्रशाशित कर रही हैं। वे प्रत्येक प्राणी में चेतना उत्पन्न करती हैं। उन्हीं को आत्मा कहा जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनको छोड़कर सब कुछ असत्य और अनात्म है। वे परब्रह्म का बोध कराने वाली विद्या-शक्ति। वे ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली है। वे सत् चित् और आनन्दस्वरूपा है, वे प्रत्येक वस्तु के बाहर और भीतर व्याप्त हो रही हैं। उनके अस्ति, भाति और प्रिय तीनों रूप सत् चित् और आनन्द के बोधक हैं। इस प्रकार से वह महात्रिपुर सुन्दरी समस्त स्थूल वस्तुओं में अधिष्ठित हैं। मैं और तुम, देवता, सारा संसार व शेष सब कुछ वे देवी ही हैं। ललिता ही सत्य है, वे ही परब्रह्म तत्व हैं। पाँच रूपों (अस्ति, भाति, प्रिय, नाम, रूप) के त्यागने और अपने रूप के न त्यागने से जो सत्ता शेष रह जाती है, उसी को परम तत्व कहते हैं।

"वह (शक्ति) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की परमशोभा है, वह सत्, चित् आनन्द की लहरों में हैं। वह भीतर बाहर व्याप्त रहती हुई स्वयं प्रकाशित हो रही है। वह समस्त दृश्य पदार्थों के पीछे रहने वाली वस्तु-सत्ता है। वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् अनात्म है। वह नित्य, निर्विकार, अद्वितीय, परमात्मा की परम दिव्य चेतना की आदि अभिव्यक्ति है। सृष्टि के आदि में देवी ही थी और इसी पराशक्ति भगवती से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सम्पूर्ण स्थावर जड़ात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई। संसार में जो कुछ है इसी में सन्निविष्ट है। भुवनेश्वरीप्रत्यंगिरा, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मानन्दकला आदि अनेक नाम एक ही पराशक्ति के हैं।"

सरस्वती रहस्योपनिषद् में सरस्वती देवी से इस प्रकार दीन भाव से प्रार्थना की गई।

जिस सरस्वती का स्वरूप वेदांत का सार भूत ब्रह्मतत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपों में प्रकट हैं। वे सरस्वती मेरी रक्षिका हों।' दान से सुशोभित होने वाली स्तोताओं की रक्षिका एवं अन्नवती भगवती सरस्वती इन साधकों को अन्न से परिपूर्ण करें।

"वेदों और उनके अंग-उपाँगों में जिन एक देव की स्तुति की जाती

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है तथा जो परब्रह्म की अद्वैत शक्ति हैं, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हों।"

"जो वर्ण, पद, वाक्य में अर्थों सहित सर्वत्र व्याप्त है जो आदि अन्त से परे एवं अनन्त रूप वाणी हैं, वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हों।

"जो सरस्वती देवताओं की प्रेरणात्मिका शक्ति अधिदैवरूपिणी एवं हमारे भीतर वाणी रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे भगवती मेरी रक्षिका हों।

"जो सरस्वती अन्तर्यामी रूप से लोकत्रय का नियन्त्रण करने वाली है तथा जो रुद्र-आदित्य आदि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित हैं वे हमारी रक्षिका हों।

जिन सरस्वती देवी में ब्रह्मतत्ववेत्ताजन नाम-रूप वाले सम्पूर्ण प्रपञ्च को आविष्ट करते हुए उनका ध्यान करते हैं, वे देवी मेरी रक्षिका हों।

"जो सरस्वती देवी अन्तर्दृग वाले जीवों के समक्ष विभिन्न रूपों में प्रकट होती तथा जो प्राप्ति रूप से व्याप्त हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका बनें।"

सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् में देवताओं के पूछने पर भगवान आदि नारायण ने उपदेश देते हुए कहा।

देवताओं! एकाग्र मन से सुनो। स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप अवस्थाओं से जो तुरीयावस्था, वरन तुरीयावस्था ने भी पूरे निर्गुण एवं विराट रूप वाली हैं जो मन्त्र रूप आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली हैं, पीठों और उपपीठों में बिराजमान देवगणों से घिरी हुई हैं, उन चार भुजा बाली लक्ष्मी का श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओं के द्वारा चिंतन करना चाहिये।"

राधोपनिषद् में श्री राधा का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—

"श्री कृष्ण ही प्रकृति से परे और अविनाशी हैं। आह्लादिनी,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्धिनी, ज्ञानेच्छा, क्रिया, इत्यादि इनकी अनेक शक्तियाँ हैं इन सबमें 'आह्लादिनी' सबसे प्रधान है। यह उनकी सर्वाधिक अन्तरग है, इन्हीं को राधा कहते हैं। भगवान कृष्ण स्वयं इनकी आराधना करते हैं। श्री राधाजी सदैव कृष्ण की आराधना करती हैं। राधिका को 'गन्धर्वा' भी कहा जाता है। समस्त गोपियाँ, श्रीकृष्ण भगवान की महिषियाँ और लक्ष्मी का आविर्भाव भी राधाजी के शरीर से ही हुआ है। रस-सागर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही क्रीडार्थ एक से दो रूपों में विभक्त हो गये हैं।

श्रीराधा सर्वेश्वर भगवान कृष्ण की भी सर्वेश्वरी है, उनकी समस्त विद्याओं में सनातनी है। ये श्री कृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिय देवी है। चारों वेद भी एकान्त भाव से इनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मज्ञानी ऋषि इनकी गति को जानते और कहते हैं। इनकी महिमा इतनी अधिक है कि मैं चाहे अपनी समस्त आयु उसे कहता रहूँ तो भी उनका पार नहीं मिल सकता। श्री राधा जी जिस पर प्रसन्न होती हैं, उसे तुरन्त परमधाम की प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई राधाजी की अवज्ञा करके कृष्ण भगवान की आराधना करने की इच्छा व्यक्त करता है तो वह सर्वाधिक मूढ़ है।

सीतोपनिषद् में सीता को मूल प्रकृति स्वीकार करते हुए कहा गया है :—

सीताजी शक्तिरूपिणी है। मूल-प्रकृति होने से वे ही प्रकृति कहीं जाती हैं। प्रणव की प्रकृति रूपा होने से भी उन्हें प्रकृति कहते हैं। वे साक्षात् योगमाया ही हैं। उनका सीता नाम तीन वर्णों का है। सम्पूर्ण विश्व प्रपंच के बीच भगवान विष्णु हैं। उनकी योगमाया का रूप ईकार है। 'स' कार को सत्य, अमृत, सिद्धि, चन्द्र तथा प्राप्ति का वाचक कहते हैं। दीर्घ अकारयुक्त 'त' कार विस्तार करने वाला एवं महालक्ष्मी रूप वाला कहा गया है। ईकार वाली अव्यक्त महामाया अपने अमृतमय, अवयवों और दिव्य भूषणों से विभूषित रूपसे व्यक्त होती है, वे त्रयरूपा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने प्रथम रूप में शब्द ब्रह्म से युक्त हैं। वे प्रसन्न होकर बुद्धि रुप से बोध देह वाली है। वे अपने अद्वितीय रूप में जब इस भूतल पर व्यक्त हुई तब जनक की यज्ञ भूमि में हल्के अग्रभाग से प्रकट हुयीं। उनका तृतीय रूप ईकार का एवं अव्यक्त है। यही तीन रूप पर्याप्त रूप से सीता के कहे गये हैं। शौनकीय तन्त्र में कहा है कि श्रीराम के नित्य सान्निध्य के कारण सीता जी विश्व का कल्याण करने वाली है। वे ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वही मूल प्रकृति के रूप में प्रसिद्ध षडैश्वर्य से युक्त भगवती हैं। प्राणस्वरूपा होने से ब्रह्मवेत्ता उन्हें प्रकृति कहते हैं। वे सीताजी सर्वदेवता स्वरूप सर्ववेद रुपिणीं, सर्वलोकमयी, सबकी आश्रयभूता, सर्वकीर्तियों से सम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सब देव गन्धर्व, मनुष्य आदि प्राणियों की स्वरूप हैं। वे सभी प्राणियों की देहरूपा और समस्त विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं। वे बलवान से भिन्न और अभिन्न भी कही जाती है।

वे शक्तिरुपिणी होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात् शक्ति के रूप में प्रकट होती हैं। उनको इच्छाशक्ति से युक्त स्वरूप भी तीन प्रकार का हैं। श्रीदेवी, भूदेवी, नीलदेव के रूप में वे मंगल-रुपिणी, प्रभावरूपिणी तथा चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूप में अत्यन्त तेजमयी होती हैं। चन्द्ररूपिणी होकर औषधियों को पुष्ट करती हैं। वे कल्पवृक्ष, लता, गुल्म, पुष्प पत्र, फल तथा औषधियों-महौषधियों के स्वरूप को प्रकट करने वाली हैं। उसी चन्द्र रूप में देवताओं को 'महस्तोंम यज्ञ का फल देती हैं। अन्न द्वारा प्राणियों को और अमृत द्वारा देवताओं को वे ही तृप्त करती हैं।

वे ही सब लोकों को प्रकाशित करती हैं। दिवस, रात्री निमेष, घड़ी, पक्ष, मांस, ऋतु, अयन, और सम्वत्सर आदि के भेद से मनुष्य को शतायु प्रदान करती हुई स्वयं प्रकाशित होती हैं। निमेष से परधि तक तथा विलम्ब और शीघ्रता के भेद से परिपूर्ण कालचक्र तथा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगत्-चक्रादि के भेदकाल से काल के सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग उन्हीं के स्वरूप है। इसीलिये वे प्रकाशरुपा और कामरुपा है।"

'केनोपनिषद्' की कथा के अनुसार जब देवताओं को अपनी सफलता पर गर्व होने लगा कि यह उनकी अपनी शक्तियों के द्वारा हुआ है तो ब्रह्म ने उसके इस अहङ्कार को चूर करना चाहा। वे एक यक्ष के रूप में प्रकट हुए। सभी देवताओं ने अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया परन्तु सभी असफल रहे। उन्हें वास्तविकता से परिचित कराने के लिए हेमवती उमा प्रकट हुईं और कहा कि वह परब्रह्म है। इसमें ब्रह्म का परिचय देने का श्रेय देवी को ही दिया गया है।

'राम पूर्वतापनीयोपनिषद्' में ब्रह्माण्ड का प्राकट्य शक्ति से स्वीकार करते हुए कहा है—

कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजस्सत्वतमोगुणै. ।
यथैव वटबीजस्थ: प्राकृतोऽयं महाद्रुम: ।

"प्राकृत ब्राह्मण्ड की चिच्छक्ति से उसी तरह उत्पत्ति होती है जैसे एक वटबीज में सूक्ष्म रूप से एक महान वृक्ष अवस्थित रहता है और उत्पन्न होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाता है।"

जावालोपनिषद् में शक्ति का महत्व प्रदर्शन करते हुए कहा गया है—

आधारशक्त्यावधृत: कालाग्निरयमूर्ध्वग: ।
तथेव निम्नग: सोम: शिवशक्तिपदास्पद: ।।
विद्याशक्ति: समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।

अर्थात् आधार शक्ति से अवधारण किया हुआ—कालाग्नि यह ऊर्ध्वगामी है। उसी भांति निम्नगामी भी है। यही सोम शिवशक्ति के स्थान में आलय रखने वाला है। समस्तों की विद्याशक्ति शक्ति नाम से कही जाती है।

'माण्डूक्योपनिषद्' में काली का विवेचन करते हुए कहा गया है :—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काली कराली च मनोजवा
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥

अर्थात्—"काली अत्यन्त उग्र, मन के समान चञ्चल, लालीयुक्त, धूम्र वर्णा, चिंगारियों से युक्त की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह वह तत्व है जो मन, वाणी और इन्द्रियों को दिखाई नहीं देता है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह।

विद्युत अग्नि आदि भी वहाँ नहीं पहुँच सकते।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
न विद्युतो तो भान्नि कुतोऽयमग्निः।

'वृहदारण्यकोपनिषद्' में 'वाल्येन तिष्ठासेत्' वाक्य द्वारा मातृभाव की उपासना का उपदेश दिया गया है।

'छान्दोग्योपनिषद्' (६।३।२) में ब्रह्म के लिए स्त्री वाचक देवता शब्द का प्रयोग हुआ है। यह भी कहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व वह चिति शक्ति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है—

आसीदेवेदमग्र आसींत् तत्समभवत्।

(७।२४।१) में नारदजी के पूछने पर सनत्कुमार ने कहा—

स्वे महम्नि यदि वा न महिम्नोति।

भूमि अपनी ही महिमा में स्थिति है और वस्तुतः तो उसमें भी नही है अर्थात् आश्रय रहित है।"

'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में ऋषि इस प्रकार घोषणा करते हैं—

माया तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

"प्रकृति को माया और महेश्वर को माया का स्वामी समझे। उसी के अंगों से यह अखिल विश्व व्याप्त हो रहा है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परा तस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।
स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च ॥

"उस परमेश्वर की स्वाभाविक पराशक्ति, ज्ञान, बज और क्रिया विभिन्न प्रकार की सुनी गई है ।"

जिस परमेश्वर को अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, नक्षत्र जल प्रजापति और ब्रह्म कहा गया है (२।३), उसे ही स्त्री और कुमारी भी घोषित किया गया है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥
(४।३)

तू स्त्री है पुरुष भी तू है । तू ही कुमार और कुमारी है, तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे से चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है ।'

एक और स्थान पर कहा—

य एको वर्णः शक्तियोगाद्वर्णान् निहितार्थो दधाति ।

'(लय में) जो एक होकर भी शक्ति के योग से सृष्टि में अनेक हो जाता है ।'

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी यही भाव व्यक्त किये गये हैं 'आनन्द रुपी चित्-शक्ति से सब भूत उत्पन्न होते हैं, उसी से जाते और उसी में लीन हो जाते हैं ।

"नृसिंह उत्तर तापनीयोपनिषद्" में शक्ति तत्व को विभिन्न नामों में स्मरण किया गया है । वह नाम हैं—आत्मा, अव्यक्त अलता, असंग, अलिंग, अभय अगन्ध, अशण्ड, अस्पर्श, अरुप, शुद्ध, अद्वय, अबोद्धव्य, अगन्तव्य आदि ।

"कठोपनिषत्" में कहा गया है—जिस तरह अग्नि सर्वव्यापक है, उसी तरह चिति शक्ति भी सारे जगत में व्याप्त हैं ।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति और पुराण

पुराण भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। वे भी तन्त्र से प्रभावित दिखाई देते हैं। इसका प्रमाण यह है कि उनमें तांत्रिक सिद्धांतों और विधि साधनों का प्रवेश हुआ। कुछ आधुतिक विद्वानों ने इस विषय पर खोज की है। डा० हाजरा ने अपनी पुस्तक "Puranic records on Hindu Rites and customs." में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला हैं और कहा है—अष्टम शती से प्राचीनस्तर पुराणांशों में तांत्रिक पूजा का लेश भी विद्यमान नहीं है। प्रथमतः पुराणों में किसी देव विशेष के मुद्रा-मांस आदि का वर्णन किया गया है और तदन्तर समग्र ताँत्रिक विधियों का उपन्यास स्मार्त कर्मों के सङ्ग में ही बिना किसी वैषम्य के पुराणों ने प्रस्तुत किया। दशम और एकादश शती में पुराणों में तन्त्र ने अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा तथा प्रादाण्य प्राप्त कर लिया। गरुड़ और अग्नि पुराण में उपलब्ध तान्त्रिक विधान इनके प्रमाण हैं।

देवी भागवत पुराण–

"देवी भागवत" को भले ही उप-पुराण माना जाता हो परन्तु शाक्तों के लिए वह किसी भी महापुराण से कम नहीं है, क्योंकि उसमें शक्ति-तत्व का विस्तृत प्रतिपादन है। इसमें जहाँ भी दृष्टि दौड़ायें तंत्र का प्रभाव परिलक्षित हाता है। इसमें शक्ति की प्रधानता को खुले रूप में स्वीकार किया गया है। शक्ति की महिमा पर प्रकाश डालते हुए एक स्थान पर कहा है—

वर्तंते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप।
शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वदा ॥

अर्थात् "हे राजन्! समस्त भूतों में सर्वरूप से शक्ति विद्यमान है। है। शक्ति के बिना प्राणी शव की तरह हो जाता है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मा ने भगवती से प्रश्न किया कि जिस ब्रह्म को वेद एकम्' अद्वितीयम्' स्वीकार करते हैं, वह ब्रह्म आप ही हैं। यदि है तो पुरुष हैं या स्त्री ? इस पर भगवती ने यूं उत्तर दिया—

'सदैकत्व न भेदोऽस्ति सर्वदेव ममास्य च।
तोऽसौसाहमह योऽमो भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥

''मेरा और ब्रह्म का सदैव से एकत्व रहा है। किसी तरह का भेद नहीं रहता। मैं वही हूँ जो वे हैं, और वे वही हैं, जो मैं हूँ मति-विभ्रम से ही यह भेद दिखाई देता है।

सृजसि जननि देवान् विष्णुरुद्राजमुख्यान्।
तेंऽस्थितिविलयजननं कारयस्येकरूपा ॥

—देवी भागवत

अर्थात् "हे जननि ! विष्णु रुद्र और अज प्रमुख देवों का आप सृजन किया करती हैं। उनके द्वारा एक रूप वाली आप स्थिति-लय और जन्म लिया करती है।

सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यांच धीमहि।
·········बुद्धि यो नः प्रचोदयात् ॥

अर्थात्—'सबका आत्मरूप जो ईश्वर की पराशक्ति है उसका मैं ध्यान करता हूँ।''

देवी भागवत में जहाँ-जहाँ देवी का उल्लेख आया है वहाँ-वहाँ उससे शक्ति विशिष्ट परब्रह्म से ही अभिप्राय स्वीकार किया गया।

नूनं सर्वेषु नाना नामधरा ह्ययम्।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥
गौरी ब्रह्मा तथा रौद्री बाराही वैष्णवी शिवा।
वारुणी चाथ कौमारी नारसिंही च वैष्णवी ॥

अर्थात्—'समस्त देवों में निश्चय ही मैं नाना रूप धारण करने वाली हूँ। मैं शक्ति रूप में होती हूँ और पराक्रम किया करती हूँ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं ही गौरी ब्राह्मी-रौद्री-वाराही-वैष्णवी-शिवा-वरुणी-कौबेरी-नारसिंह तथा वैष्णवी रूप वाली हूँ।'

तृतीय स्कन्ध के २६ वें अध्याय में नारद के उपदेश से भगवान् राम ने शक्ति की आराधना की और परिणाम स्वरुप रावण से सीता को छुड़ाने में सफल हुए।

एक स्थान पर कहा है कि समस्त देवता भी शक्ति की प्रेरणा से सुख दुःख का अनुभव करते हैं। मनुष्य तथा अन्य जीवों की तो बात ही क्या ?'

देवी से पूछने पर स्वयं उन्होंने एक स्थान पर कहा है :—

"एक मात्र ब्रह्म ही अद्वितीय है वह नित्य और सनातन है, परन्तु जब वह विश्व-रचना में तत्पर होता है, तब एक से अनेक हो जाता है। जैसे किसी उपाधि के कारण दीपक एक का दो दिखाई देता है, या दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई देने से एक का अनेकत्व प्रतीत होता है, जैसे ही ब्रह्म या मुझमें अनेकत्व की प्रतीति होती है। यह भेद सृष्टिकाल में विश्व-सृजन के लिए ही होता है और इसके भी दृश्य और अदृश्य रूप से दो भेद हैं। सृष्टि का अन्त होने पर मैं पुरुष, स्त्री या नपुंसक कुछ नहीं रहती है। यह भेद सृष्टि कार्य के अवसर पर ही उत्पन्न होता है जिसे मैंने ही स्वकल्पना द्वारा रचा है।"

मैं ही बुद्धि हूँ, श्री धृति, कीर्ति, मति, श्रद्धा, मेधा, दया लज्जा, क्षुधा, तृष्णा एवं क्षमा भी मैं ही हूँ। कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा अजरा, विद्या-अविद्या, मेधा, शक्ति और अशक्ति भी मैं हूँ। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं जिसमें मेरी सत्ता न हो जो कुछ दिखाई देते हैं वे सब मेरे ही रुप हैं। मैं ही सब देवताओं के रुप में विभिन्न नामों से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती हूँ। जल में जो शीलता है वह मैं हूँ। अग्नि में उष्णता, सूर्य हैं ज्योति और चन्द्रमा में ठण्डक मैं ही हूँ। संसार के सम्पूर्ण जीवों की स्पन्दन क्रिया मेरी शक्ति से होती है, यह निश्चय है कि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरे अभाव में वह नहीं हो सकती। मेरे बिना शिवजी दैत्यों का संसार नहीं कर सकते। संसार में जो व्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे शक्ति-हीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नहीं कहता।

"पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होती है तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति-शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नहीं उठा सकती। शेष, कूर्म तथा दसों दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने कार्य की सिद्धि में समर्थ होते हैं। मैं सम्पूर्ण संसार में जल को पी सकती हूँ। विश्व में कभी किसी तत्व का अभाव नहीं होता। जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती और जिस वस्तु का आदि हैं वह अनन्त समय तक टिक नहीं सकती। जिस प्रकार घड़ा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रकार अगर यह समग्र पृथ्वी ध्वंस हो जाय तो भी परमाणु के रूप में उसका अस्तित्व बना ही रहेगा।"

मार्कण्डेय पुराण–

"मार्कण्डेय पुराण" पर भी तांत्रिक प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि शक्तिवाद का प्रसिद्ध ग्रन्थ सप्तशती, इसी पुराण का अंश है जिसमें भगवती की कथा विस्तृत रूप से वर्णित है। देवी माहात्म्य मधु-कैटभ-बध, महिषासुर-सैन्य-वध, देवताओं के सम्मिलित तेज से देवी का आविर्भाव और उसका महिषासुर की सेना से भयंकर संग्राम, महिषासुर-वध, उसके प्रमुख सेनाध्यक्षों का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ, शुम्भ आदि का वध, देवी स्तोत्र, देवताओं को देवी का वरदान आदि विषय विस्तार से आये हैं, जिनमें देवी की महान् महिमा प्रकट होती हैं। देवी-माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—

"देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है, तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है। मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान-स्वरूपा, विद्या एवं संसार-बन्धन की कारण-रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अधीश्वरी है।'

शक्रादिकृत देवीस्तव का काफी विस्तार है। कुछ श्लोकों का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं :—

'देवताओं ने कहा—इस प्राणिजगत् को अपने प्रभाव से विस्तृत करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रुप में परिणत हुई है, एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या है, हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं। वह हम सबका कल्याण करें। अनन्त भगवान् ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिए आकांक्षित हों। पुनीत कार्य करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मीस्वरुप, पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र-स्वरुप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि-स्वरुप, सदाचरण वालों के लिए श्रद्धा-स्वरुप और पवित्र कुछ में उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरुप है, उन देवी को नमस्कार करते हैं। हे देवी ! आप जगत् का पौषण करें। आपका चिन्त्य स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं। हे देवी ! आपका दानवों का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एवं दानवों व देवगणों के प्रति रणक्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार वर्णन करें। हे देवि ! आप विकारहीन आद्याप्रकृति हैं, अथ च सत्व, रज एवं तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याण कारी हों। राग-द्वेष आदि से युक्त विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्व नहीं जानते। हे देवि ! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आश्रय-स्वरूप हैं, यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है।'

उपरोक्त विवरण से ही स्पष्ट है कि पुराणकार किस रूप में देवी को देखते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्नि पुराण—

'अग्नि पुराण' पर शक्ति अथवा शैव-तन्त्रों का कुछ भी प्रभाव नहीं है। केवल वैष्णव पञ्चरात्रों का प्रभाव है जिनके सम्बन्ध में २४ पंचरात्र संहिताओं का उल्लेख भी ३१वें अध्याय में आया है। इसमें तांत्रिक विधि-विधानों तथा कर्मों का पर्याप्त वर्णन है। दीक्षा-विधान पर पूरा प्रकाश डाला गया है। मन्त्रों का विस्तार भी काफी है। गणेश; विंध्य-वासिनी, त्रिपुरा, बटुक तथा योगिनी और वागीश्वरी के पूजा-विधान दिये हुए है। षट् कर्मों से सम्बन्धित मन्त्र दिये गये हैं—

शान्तिवश्यस्तम्भनादि-विद्वेषोच्चाटने ततः।
मारणान्तानि शसन्ति षट् कर्माणि मनीषिणः ॥

'शान्ति—वश्य—स्तम्भन—विद्वेषण—उच्चाटन और मारण ये छै कर्म मनीषी लोग कहते हैं।'

त्रैलोक्य मोहन मन्त्र, संग्राम विजय मन्त्र भी दिये गये हैं।

अग्नि पुराण के अनुशीलन से तो ऐसा लगता है जैसे पुराणकार किसी तन्त्र ग्रन्थ की रचना करने जा रहे हों।

कालिका पुराण—

'कालिका पुराण' तो शक्तिवाद का स्वतन्त्र पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण के दूसरे भाग के अन्तर्गत 'ललिता सहस्र नाम' का ३२० श्लोकों का पूरा प्रकरण आता है। कूर्म पुराण में परमेश्वरी के आठ हजार नाम आये हैं। वही ऐसा उल्लेख है कि अर्धनारीश्वर के पुरुष अंश में से शिव प्रकट हुए और स्त्री अंश में से शक्तियाँ। वाराह-पुराण ७०।२४-२५ और पद्म-पुराण ६।५३।४-५ के अनुसार चारों युगों में क्रम से वेद-स्मृति पुराण और तन्त्र का प्रचार रहा है। परिणाम-स्वरूप कलियुग के प्राणियों के लिए तन्त्र ही कल्याणकारक माना गया है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण—

'विष्णु धर्मोत्तर' में चण्डिका का वर्णन है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निगद्यते ह्यथो चण्डी हेमाभा सा सुरूपिणी।
त्रिनेत्रा यौवनस्था च क्रुद्धा चोर्ध्वस्थितामता॥

'इसके अनन्तर वह सुरूप वाली हेम की आभा के समान आभा वाली—तीन नेत्रों से युक्त, यौवन में स्थित, परम क्रुद्ध और ऊर्ध्व में अवस्थित चण्डी कही जाती है।'

भद्रकाली का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

अष्टादशभुजा कार्या भद्रकाली मनोहरा।
आलीढस्वामनस्या च चतुः सिंहे रथे स्थिता॥
अक्षमाला त्रिशूलं च खड्गश्चन्द्रश्च यादव।
वाणचापे च कर्तव्ये शंखपद्मे तथैव च॥

'अर्थात्–भद्रकाली अठारह भुजाओं वाली, मनोहर—आलीढ़ अपने आसन पर स्थित, चार सिंहों वाले रथ में विराजमान अक्ष-माला, त्रिशूल—खंग—चन्द्र—वाण—चाप—शंख और पद्म को धारण करने वाली हैं।

भागवत पुराण-

'भागवत' (१०।२।१०-११) में भगवान ने योगमाया को व्रज में जन्म लेने की आज्ञा देते हुए कहा था—

अर्चिष्यन्ति मनुस्ष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥
नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि नरा भुवि।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च॥

अर्थात्—'समस्त कामना तथा वरों की ईश्वरी आपको मनुष्य धूप उपहार और बलि के द्वारा सर्व काम वरप्रद की भाँति अर्चना किया करते हैं। मनुष्य भूमण्डल में नामधेय और स्थानों को किया करते हैं। दुर्गा—भद्रकाली विजया और वैष्णवी ये नाम धर लिया करते हैं।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मवैवर्त पुराण–

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' (प्रकृति० २।२६।७—१०) में स्वयं भगवान कृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूल-प्रकृतिश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।
कार्यार्थे सगुणा त्वां च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।
तेजः स्वरूप परमा भक्तानुग्रहविग्रहः।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्व-बीज-स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रय।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गला मङ्गला॥

'तुम सबकी जननी-भूत प्रकृति ईश्वरी हो, सृष्टि उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में रहती हो और अपनी इच्छा से त्रिगुणात्मिक बन जाती हो, तुम कार्य के लिए सगुण बन जाती हो परन्तु वास्तव में तुम निर्गुण ही हो, तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य और सनातनी हो, तेज स्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हो, सर्व-स्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार और परात्पर हो। तुम बिना आश्रय के, सर्व पूज्या और सर्व बीज स्वरूपा हो, तुम सर्वज्ञ, सब तरह के मंगलकारक और सब प्रकार के मंगलों की भी मंगल हो।

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में एक और स्थान पर कृष्ण राधा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

'हे राधे! जिस तरह तुम हों, उसी तरह मैं भी हूँ। हम दोनों में अभेद हैं। जिस तरह क्षीर में धवलता, अग्नि में जलाने की शक्ति और पृथ्वी में गन्ध विद्यमान है, उस तरह मैं तुम में हूँ। जिस तरह कुम्हार मिट्टी के बिना और सुनार बिना सोने के आभूषण नहीं बना सकता। उसी तरह मैं तुम्हारे बिना सृजन-क्रिया में असमर्थ रहता हूँ। सृजन-क्रिया का मैं बीज रूप और तुम आधार भूता हो, तुम्हारे बिना मैं केवल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'कृष्ण' पुकारा जाता हूँ परन्तु तुम्हारे साथ लोग 'श्रीकृष्ण' कहते हैं। तुम ही सम्पति, विश्व की आधार भूता और मेरी सबकी सर्वशक्ति रुपा हो।

कूर्म पुराण–

"कूर्म पुराण" में देवी तत्व की व्याख्या इस प्रकार की है :—

एकं सर्वगतं सूक्ष्म कूटक्षथमचलं ध्रुवम्।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परम परम्॥
परात्परतरं तत्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।
अनन्ते प्रकृतौ लीनं देव्यास्तत् परमं पदम्॥

अर्थात्–"वह देवी ही एक मात्र अद्वितीय, सर्वगामी, सूक्ष्म, कूटस्था, अचल और नित्य स्वरुपा है। योगीजन ही उसके उपाधि-रहित परमपद के दर्शन करने में समर्थ हैं और वे ही उसके परात्पर तत्व, शाश्वत, कल्याणकारी और अविनाशी स्वरूप का अनुभव कर सकते हैं।

शिव पुराण–

पुंल्लिगमखिलं धत्ते भगवान् पुरशासनः।
स्त्रीलिङ्ग चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा॥

(शिवपुराण वा० उ० अं० ४)

"पुरारि भगवान् शिव संसार-व्यापी पुंलिगता को धारण करते हैं और देवप्रिया शिवा समस्त स्त्रीलिंगता को धारण करने वाली हैं।"

"गरुड़ पुराण" में भी तान्त्रिक-विधि-विधान अध्याय ७—११, २१-२३, ३५, ३७-३८ में दिये हुए हैं।

इससे स्पष्ट है कि इन पुराणों ने शक्ति के महत्व को स्वीकार किया है और इस सिद्धांत के व्यापक प्रसार में सहयोग दिया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति और योग-वासिष्ठ

योग-वासिष्ठ भारतीय दार्शनिक साहित्य में एक उच्च स्थान रखता है। इसे भारतीय मस्तिष्क की सर्वोत्तम उपज और कृति स्वीकार किया जाता है। ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने का यह सरल व श्रेष्ठ साधन है। दर्शन के अतिरिक्त इसका काव्य भी उच्चकोटि का है। इसकी श्रेष्ठता का मूल्यांकन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि अनेकों उपनिषदों में "योग-वासिष्ठ" के श्लोक ज्यों के त्यों ले लिये गये हैं और अधिकांश में उसके भाव ग्रहण किये प्रतीत होते हैं। महोपनिषद्, याज्ञवल्क्य-उपनिषद्, योग-कुण्डली-उपनिषद्, वराह-उपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद् शांडिल्य—उपनिषद्, अक्षि-उपनिषद्, अन्नपूर्णा-उपनिषद्, ब्रह्मसंन्यासोपनिषद् और पैंगल-उपनिषद् में कहीं श्लोक और कहीं पूरे अध्याय के अध्याय ले लिये गये हैं। तेजो-बिन्दु, योगशिखा, अमृत बिन्दु, सौभाग्य-लक्ष्मी, मैत्रायणी, त्रिपुरातापिनी और जाबाल-उपनिषद् में प्रायः सिद्धान्त योगवासिष्ठ से मिलते-जुलते हैं। ऐसा लगता है कि इनके रचयिताओं ने इनकी निर्माण-सामग्री इसी मूल स्रोत से ग्रहण की है। इसलिए भारतीय दार्शनिक साहित्य में इसका स्थान गीता और उपनिषदों से किसी भी तरह कम नहीं है वरन् अधिक ही है।

भारतीय दर्शन के इस सिरमौर ग्रन्थ ने शक्ति का सुन्दर प्रतिपादन किया है। योग-वासिष्ठ के प्रसिद्ध भाष्यकार दार्शनिक श्री भीखनलाल आत्रेय ने योग-वासिष्ठ में शक्ति-विषयक सिद्धान्त का विवेचन करते हुए लिखा है, 'ब्रह्म' और 'माया' अथवा 'शिव' और 'शक्ति' दो तत्व नहीं हैं। शिव+'शक्ति' अथवा 'चिच्छक्ति' उस एक ही परम तत्व का नाम है जो जगत में दो रूप में प्रकट हो रहा है। एक वह रूप जो हमारा तथा संसार के समस्त पदार्थों का 'आत्मा' है। वह सदा एक रस, निर्विकार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और अखण्ड रहता हुआ सब विकारों का साक्षी है। दूसरा वह रूप है जो दृश्यमान है, जिसमें नाना रूपात्मक विकार सदा ही होते रहते हैं। संसार के जितने क्षण-क्षण में रूप बदलने वाले दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी परम तत्व के इस रूप के रूपान्तर हैं। एक का नाम 'शक्ति' है। दूसरे रूप का नाम 'शिव' है। एक रूप क्रियात्मक है, दूसरा शान्त्यात्मक। एक का दर्शन वाह्य पदार्थों में होता है, दूसरे का हृद्गुहा में। एक की उपासना करने से अभ्युदय की सिद्धि होती है दूसरे के ध्यान से निःश्रेयस की, सदा से कुछ मनुष्यों की रुचि एक की ओर रही और दूसरों की दूसरी ओर। पहली श्रेणी के मनुष्यों को हिन्दू शास्त्रों में प्रवृत्ति-मार्ग के पथिक और दूसरी श्रेणी के मनुष्यों को निवृत्ति-मार्ग के पथिक कहा है। इनसे उच्चकोटि के वे सौभाग्यशाली महात्मा हैं जिनके जीवन में दोनों की उपासना का अविरोधात्मक समन्वय है। उन लोगों के लिए एक रूप के विना दूसरा अधूरा है।"

'योग-वासिष्ठ' व्रह्म को सर्वशक्तिमान स्वीकार करता है।

समस्तशक्तिखचितं व्रह्म सर्वेश्वरं सदा।
यथैव शक्त्या स्फुरति प्राप्तां तामेव पश्यति ॥

(३।६७।२)

'वह सर्वेश्वर ब्रह्म समस्त शक्तियों से युक्त है। उसमें प्रत्येक शक्ति को अपनी इच्छानुसार प्रकट करने की क्षमता है।'

सर्वशक्तिपरं व्रह्म नित्यमापूर्णमव्ययम्।
न वदस्ति न तस्मिन्यद्विद्यते विततात्मनि ॥

(३।१००।५)

वह सर्वशक्तिमय व्रह्म नित्य, सर्वथा, पूर्ण और अव्यय है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उस विस्तृत स्वरूप में अवस्थित न हो।

सर्वशक्तिर्हि भगवान्यैव तस्मै हि रोचते।
शक्तिः तामेव विततां प्रकाशयति सर्वगः ॥

(३।१००।६)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भगवान सब तरह की शक्तियों से सम्पन्न हैं और सभी स्थानों पर निवास करता है। वह जहाँ भी चाहे, शक्ति को वहीं प्रकट कर सकता है।"

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः कर्तृताऽकर्तृताऽपि च।
इत्यादिकानां शक्तिनामन्तो नास्ति शिवात्मनः॥
(४-१।३७।६१)

'ज्ञान, क्रिया, कर्तृत्व और ककर्तृत्व आदि शक्तियों का रस शिवात्मा में कोई अन्त नहीं है।'

ब्राह्मणः सर्वशक्तिर्हि दृश्यते दशदिग्गता।
नाशशक्तिर्विनाशेषु शोकशक्तिश्च शोकिषु॥
(३।१००।९)

'ब्रह्म की चेतन शक्ति सभी दसों दिशाओं सब में साधारण शक्ति नाशों में नाश शक्ति, शोक करने वालों में शक्ति दृष्टिगोचर होती है।"

आनन्दशक्तिर्मुदिते वीर्यशक्तिस्तथा भटे।
सर्गेषु सर्गशक्तिश्च कल्पान्ते सर्वशक्तिता॥
(३।१००।१०)

"प्रसन्न चित्त वालों में आनन्द शक्ति, वीर्य शक्ति, सृष्टि में सृजन शक्ति और कल्पांत में समस्त शक्तियाँ उसी में दिखाई देती हैं।

सर्वशक्तिमयो ह्यात्मा यद्यथा भावयत्यलम्।
तत्तथा पश्यति तदा स्वसंकल्पविजृम्भितम्॥
(६-१।३३।४१)

"आत्मा सब शक्तिगों से सम्पन्न है, वह जहाँ जिस शक्ति की याचना करती है, वह अपनी सङ्कल्प शक्ति द्वारा उसे प्रकट देखती है।

ब्रह्म की स्पन्द-शक्ति से सृष्टि की रचना होती है। योग-वासिष्ठ के अनुसार—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पन्दशक्तिस्तथेच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा ।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम् ।।

'जैसे शरीर धारण करने वाले व्यक्ति की इच्छा कल्पना-नगर के निर्माण की क्षमता रखती है, उसी तरह भगवान की स्पन्दशक्ति रूपी इच्छा इस दृश्य जगत का निर्माण करती है ।'

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता विवेच्छा पारमेश्वरी ।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ।।

(६।२८०।१४)

'हे राम ! शिव की स्वाभाविक स्पन्दशक्ति को प्रकृति कहते हैं, वही जगत-माता आदि नामों से विख्यात है ।'

इस महाशक्ति को दूसरे नामों से भी पुकारा जाता है जैसे दुर्गा, उषा, गौरी, भवानी, काली, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, चंडिका अपराजिता, विजया, जयन्ती, सिद्धा, जया, उत्पला और शुष्का आदि । इन सबके नाम विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों में भी मिलते हैं ।

प्रकृति ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, वह तो उसी का एक रुप है—

ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जडः ।
नित्यात्प्रबुद्धात्पुरुषादब्रह्मणः प्रकृतिस्तथा ।।

(३।९६।७१)

'जैसे चेतन मकड़ी से जड़ वाला उत्पन्न होता है, उसी तरह नित्य प्रबुद्ध पुरुष ब्रह्म से कृति उत्पन्न होती है ।'

सूक्ष्मा मध्यमा तथा स्थूला चेते सा कल्प्यते त्रिधा ।
सत्वं रजतम इति एवैव प्रकृतिः स्मृता ।।

(६।१।९।५)

'उस प्रकृति के तीन रुप हैं—सूक्ष्म-मध्यम और स्थूल । इन्हीं को सत, रज, तम कहा जाता है ।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिव और शक्ति की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

यथैकं पवनस्पन्दमेकमोष्ण्यानलौ यथा ।
चिन्मात्रं स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥
(६।२।८४।३)

'जैसे वायु और उसकी क्रियाशीलता, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति को एक माना जाता हैं, उसी तरह से चिन्मात्र शिव और उसकी स्पन्द शक्ति एक ही है ।'

अनन्यां तस्य तां विद्धि स्पन्दशक्तिं मनोमयीम् ।
(६–२।८४।२)

मनोमयी स्पन्दन शक्ति उससे अन्य पदार्थ नहीं हैं—

व्यावृत्यैव तथत्वास्ते शिव इत्युच्यते तदा ।
चितिशक्तेः क्रियादेव्याः प्रतिस्थानं यदात्मनि ॥
(६।२।८३।२६)

'शिव—शक्ति की उस अवस्था का नाम है जब वह चिति शक्ति क्रिया देवी, क्रिया करके अपने मूल स्थान आत्मा को लौटती है और वहाँ पर शान्त भाव से अवस्थित हो जाती हैं ।

कथमास्तां वदं प्राज्ञ मरिचं तिक्ताँ विना ।
(६।२।८२।७)

विना तिष्ठति माधुर्यं कथयेक्षुरसः कथम् ॥
(६।२।८२।६)

'जैसे तिक्तता के बिना मिर्च और मधुरता के बिना गन्ने का रस नहीं रहता उसी तरह शक्ति के बिना शिव नहीं रहता ।'

संविन्मात्रै कधार्मित्वात्काकतालीययोगतः ।
सवित्देवी शिवं स्पृष्ट्वा प्रकृतित्वं समुज्झति ॥
(६।२।८५।१८)

'संवित मात्र सत्ता से जब भी प्रकृति का तादात्म्य हो जाता है और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दैवयोग से पुरुष का स्पर्श हो जाता है, तब वह अपने प्रकृतितत्व से निवृत्त होकर पुरुष के साथ ऐक्य स्थापित कर लेती है।'

प्रकृतिः पुरुषं स्पृष्ट्वा तन्मयीव भवत्यलम् ।
तदन्तरेकतां गत्वा नदीरूपमिवार्णवे ॥

(६-२।८५।१९)

'समुद्र में नदी मिलकर जैसे अपना रुप छोड़ देती है और समुद्र का ही रुप धारण कर लेती है, उसी तरह प्रकृति पुरुष के साथ मिल कर पुरुष रुप ही हो जाती है।'

प्रकृति जब पुरुष से मिलती है, उसी को निर्माण पद कहा जाता है—

चितिनिर्वाणरूपं यत्प्रकृतिः परमं पदम् ।
प्राप्य तत्तामवाप्नोति सरिदब्धात्रिवाधिताम् ॥

(६।२।८५।२६)

प्रकृति की परमगति संवित में निर्माण प्राप्त करना है। जब वह इस स्थिति में आ जाती हैं, तब ऐसे ही होती है जैसे नदी समुद्र में पड़ कर उसीं का रुप धारण कर लेती है।

शक्ति जगत को अपने में धारणा करती है और विभिन्न रुपों में सर्वत्र व्याप्त है—

चित्स्पन्दोऽन्तर्जगद्धत्ते कल्पनेव पुरं हृदि ।
सर्वं वा जगदित्येव कल्पनैव यथा पुरम् ॥
पवनस्य यथा स्पन्दस्तथैवेच्छः शिवस्य सा ।
यथा स्पन्दोऽनिलयान्तः प्रशान्तेच्छस्तथा शिवः ॥
अमूर्तो मूर्तमाकाशे शब्दाऽम्बरमानिलः ।
यथा स्पन्दस्तनोत्येव शिवेच्छा कुरुते जगत् ॥

(योग व० ६-२।८५।४-६)

'वह चित्स्पन्दरुपी शक्ति जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कल्पना अपने भीतर कल्पित नगर को। अथवा यों कहना चाहिए कि जैसे कल्पना स्वयं ही कल्पित नगर है वैसे ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह शक्ति ही स्वयं जगत है । वह शक्ति शिव की इच्छा है और वायु के स्पन्दन की तरह शिव का ही स्पन्दन है । जैसे स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र पर शान्ति रहती है उसी प्रकार महाशक्ति रुप स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र में शान्त इच्छा वाला शिव वर्तमान है । यह शिव की इच्छा अव्यक्त शिव में इस प्रकार जगत को प्रकट कर देती है जैसे कि अमृत आकाश में वायु का स्पन्दन मूर्त शब्द को प्रकट कर देता है ।'

सा हि क्रिया भगवती परिस्यन्दैक रूपिणी ।
चितिशक्तिरनाद्यन्ता तथा भूतात्मनात्मनि ।।
देव्यास्तथा हि याः काल्पा नानाभिनय नर्त्तनाः ।
त इमा ब्रह्मणः सर्ग जरामरणरीतयः ।।
क्रियासौ ग्राम-नगर-द्वीप-मण्डल-मालिकः ।
स्पन्दान् करोति धत्तेऽन्तः कल्पितावयवात्मका ।।
काली कमलिनी क्राली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका ।
धत्ते स्वावयवीयुतां दृश्यलक्ष्मीमिमां हृदि ।।

'यह भगवती क्रिया, स्पन्दन ही जिसका स्वरुप है, अनादि और अनन्त चिति-शक्ति, जगत् रुप से अपने आप ही अपने भीतर प्रकट हुई है । उस देवी के सामयिक अभिनय और नर्तन ही ब्रह्म को सृष्टि वृद्धि और लय के नियम हैं । यही कल्पित अवयव वाली क्रिया देवी ग्राम, नगर द्वीप मण्डल आदि स्पन्दनों की माला रचती है और अपने भीतर धारण करती है । यह ब्रह्माण्ड रुप से स्पन्दित होने वाली काली क्रिया अपने अवयव रुप इस जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कि कमलिनी अपने भीतर दृश्यलक्ष्मी को ।'

चिच्छक्ति ब्रह्मणो राम शरीरेऽभिदृश्यते ।
स्पन्दशक्तिश्च वातेपु जड़शक्तिस्तथोपले ।।

अर्थात्—'ब्रह्म की चित्-शक्ति चैतन्य-शरीर में, स्पन्दन-शक्ति वायु में और जड-शक्ति पत्थर आदि में दृष्टिगोचर होती है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार से योग-वासिष्ठकार ने शक्ति-सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या की है जो तन्त्र सिद्धान्त के अनुकूल है।

शक्ति और महाभारत

'महाभारत' में भगवती को परम पूज्या स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत काल में शक्ति की उपासना प्रचलित थी। इस तथ्य से पुष्टि होती है कि संग्राम के आरम्भ के पूर्व सौति ने दुर्गा की भक्ति की प्रेरणा की है। विराट् पर्व में दुर्गा का स्तोत्र उपलब्ध होता है। यहाँ इसे श्रीकृष्ण की बहिन, कंस द्वारा पत्थर पर पछाड़ी जाने वाली और यशोदा के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है।

'भीष्म पर्व' के ३२ वें अध्याय में वर्णित दुर्गा का स्तोत्र तो स्कन्द पुराण की ही तरह है। महाभारत युद्ध के समय जो भगवान कृष्ण ने कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओं को आपने सामने देखा तो अर्जुन को प्रेरणा दी कि विजय प्राप्ति के लिए तुम दुर्गा का स्तवन करो। अर्जुन ने कहा—हे आर्य ! हे सिद्ध-सेनापति ! हे मन्दिर-पर्वत-वासनी देवि ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कुमारी, भद्रकाली, कपाली, कृष्णे, पिंगले, महाकाली, चण्डि, चण्डे, तारणि-वरवर्णिनि, मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कात्यायिनि, महाभागे, करालि, विजयाजया, मयूरपंख-ध्वजा धारिणी, महिषासुर-मर्दिनी, कौशिल, नित्य पीत-वसिनी, अट्टहासकारिणी, चक्रसमान मुख वाली, रणप्रिये मेरा आपको नमस्कार है। हे उमे, शाकम्भरि, श्वेत, कृष्णे, कैटभ दैत्य—नाशिनी, हिरण्याक्षि, विरुपाक्षि, सुन्दर धूम्राक्षि, मेरा आपको प्रणाम है। हे ब्रह्मण्ये ! भूतकालज्ञा, जम्बूद्वीपवासिनी, वेद जिनकी महा-पुण्यदायिनी महिमा का गान करते हैं, आपको मेरा प्रणाम है। हे स्वामिकार्तिक की माता, दुर्गे, भगवति वनवासिनी, मेरा आपको प्रणाम है। आप

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही स्वाहाकार' स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेद-माता सरस्वती और वेदान्त स्वरुप हैं। हे महादेवी ! मैंने पवित्र मन से आपका स्तवन किया है, आपकी कृपा से युद्धक्षेत्र में मेरी विजय हो। अपनी, मोहिनी, माया, ह्री, सन्ध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी आप ही हैं। आप ही तुष्टि-पुष्टि, धृति, सावित्री, चन्द्र और सूर्य की वृद्धि करने वाली हैं। आप ऐश्वर्यवानों का ऐश्वर्य हैं। युद्ध में सिद्ध और चारण आपका दर्शन करके धन्य होते हैं।'

अर्जुन के पवित्र भाव से स्तुति करने पर देवी आकाश में प्रकट हुई और बोली—हे पाण्डव ! तुम कुछ ही समय में शत्रु पर विजय प्राप्त कर लोगे। यदि इन्द्र भी तुम्हारा विरोधी हो जाय' तव भी कोई शत्रु तुम्हें पराजित नहीं कर सकता।

इस वर्णन से महाभारण काल में प्रचलित दुर्गा-उपासना पर प्रकाश पड़ता है। कृष्ण और अर्जुन इसको स्वीकार करते हैं।

—×—

शक्ति और वेदान्त दर्शन

तन्त्र का मुख्य सिद्धान्त शक्ति की उपासना है। इसमें योगेश्वरी का ध्यान किया जाता है जब कि वेदान्त में योगेश्वर का ध्यान किया जाता है। वेदान्त ज्ञान का मार्ग है। योगेश्वर से अभिप्राय उस चिन्मय पुरुष से है जो जानने, देखने, आकर्षित करने और शासन करने की क्षमता रखता है। तन्त्र में यह गुण योगेश्वरी के पाये जाते हैं जो शक्ति-रुपा, संकल्प-रुपा, विश्व की अधिष्ठात्री, देवी हैं।

तन्त्र का मत है—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितं विश्ववपषा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिदानन्दाकारे शिव-युवति भावेन विभृषे ।।

(सौदर्य-लहरी ३५)

इससे अभिप्रेत है कि यह समस्त व्यक्त जगत अर्थात् पञ्चतत्वों का बना हुआ यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकार शिव की प्रधान अर्द्धांगिनी भगवती जगदम्बा के ही रूप हैं ।

इसी प्रकार का सिद्धान्त वेदान्त का भी है । 'छान्दोग्योपनिषद्' ६।३।२।३ में कहा है--

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवमा अनेन
जीवेनात्मानुप्रविष्य नामरूपे व्याकरवाणीति ।।
तासां त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं
देवतेमा तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य
तामरूपे व्याकरोत् ।

'तब उस सत् रुप देवता ने संकल्प किया--'अब मैं इन तीनों देवताओं में जीव रुप में प्रवेश कर जाऊँ और नाम तथा रूप को स्पष्ट करुँ और उनमें से एक-एक को त्रिवृत्ति (तीन प्रकार का) करुँ ।' ऐसा संकल्प करके उस देवता ने इन तीनों मैं प्रवेश करके नाम रुप को स्पष्ट किया ।'

'तैत्तिरीयोपनिषद्' २।६ में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है—

सोऽकामयत । बहुस्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत ।
स तपस्तप्त्वा इदं् सर्वमसृजत यदि किं च ।
तत्सृष्टवा तदेवानुप्राविशत् ।
तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् ।।
निरुक्तं चानिरुक्त च
निलयनं चानिलयनं च ।
विज्ञानं चाबिज्ञानं च ।
सत्य चानत च सत्यम् भवत् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदिद किं च । तत्सत्यमित्याचक्षते ।
तदप्येष श्लोको भवति ।

'परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और तप से तेजस्वी होकर इस दृश्य जगत को रचा और उसी में प्रविष्ट हो गया। फिर वह साकार और आकार-रहित हुआ। निरुक्त, अनिरुक्त तथा आश्रय रुप एवं अनाश्रय रुप हुआ। वही चैतन्य स्वरुप और चेतना हीन भी हुआ, वही सत्यरूप हुआ। बुद्धिमानों का कहना है कि जो कुछ देखा, सुना या अनुभव में आया, वही सत्य है। मिथ्या भी वही हुआ (क्योंकि दिखाई न देने के कारण उसके सम्बन्ध में शंका उत्पन्न होती है)।

ऋग्वेद के नारदीय सूक्त में दर्शन का सुन्दर विवेचन किया गया है, उसकी व्याख्या सप्तशती के प्रथम अध्याय में की गई है—

यच्च किंचिद् क्वचिद् वस्तु सदसदाखिलात्मिके ।
यस्य सर्वस्य या शक्तिः सा स्वयम्……..॥

इसमें भगवती की सद् और असद् दोनों प्रकार की वस्तुओं के भीतर शक्ति के रूप में व्याख्या की गई है।

वेदान्त में अद्वैत वाद का सुन्दर निदर्शन है। 'सप्तशती' में अनेकों स्थलों पर इन भावों की व्याख्या की गई है। दसवें अध्याय में देवी कहती है :—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
'इस विश्व में मैं अकेली हूँ। मेरे अतिरिक्त और कौन है ?'
वेदान्त का दूसरा सूत्र है—
जन्माद्यस्य यतः ॥

'सबके देखने, सुनने और अनुभव में आने वाले इस अद्भुत विश्व का ही रचयिता जो परमात्मा इसका धारण पोषण करके अन्त में सबको अपने में ही लीन कर लेता है, वही ब्रह्म है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'सप्तशती' के प्रथम अध्याय में यही बात ब्रह्माजी के माध्यम से कहलाई गई है—

……त्वयैतत् सृज्यते जगत् ।

त्वयैतन् पाल्यते देवि त्वयैतन् सृज्यते जगत् ॥

"हे देवी ! तू ही विश्व का सृजन कर्त्ती है, तू ही इसका पालन करती है और अन्त में तू ही इसे अपने में लीन कर लेती है।"

अद्वैतवाद तान्त्रिक उपासना का भी प्रमुख सिद्धान्त है जहाँ उपासक का दृष्टिकोण रहता है—

देवो भूत्वा यजेद् देवम् ।

अर्थात् "देव स्वयं बनकर ही देव का यजन करे।" शक्तिधर्म ही अद्वैत का साधन पथ है। साधक कहता है—

अहं देवीं न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाह न शोक भक् ।

सच्चिदानन्द रूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ।

अर्थात्—"मैं देवी हूँ और अन्य नहीं हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ और शोक को भजने वाला नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्द रूप वाला हूँ। मैं नित्य मुक्त होने के स्वभाव वाला हूँ।"

तान्त्रिक महायोगी भास्कर राय ने ब्रह्म और जगत की एकता को प्रतिपादित करते हुए कहा है—

वस्तुतस्तु जगतो ब्रह्मपरिणामकत्वं स्वीकुर्वता तान्त्रिकाणां मते जगतः सत्यत्वमेव मृगघटयोरिव ब्रह्मजगतोरत्यन्ताभेदेन ब्रह्मणे। सत्यत्वेन जगतोपि सत्यत्वावश्यम्भावात् भेदमात्रस्य मिथ्यात्वस्वीकारेणद्वैतश्रुतीनांमखिलानां निर्वाहः भेदस्य मिथ्यात्वादेव भेदघटिताधाराधेयभावसम्बन्धोऽपि मिथ्यैव

—सौभाग्य भास्कर पृ० १५१

अर्थात्—"वास्तव में इस जगत् को ब्रह्म का परिणामक मानने वाले तांत्रिकों के मत में यह जगत् सत्य ही है। मिट्टी और घट की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तरह ब्रह्म और जगत का अत्यन्त अभेद होने से और ब्रह्म की सत्यता से इस तरह की भी सत्यता अवश्यम्भावी है। जो भेद है उसको मिथ्या मान लेने से समस्त अद्वैत-प्रतिपादक श्रुतियों का निर्वाह हो जाता है। भेद के मिथ्या होने से ही भेद में घटित आधार और आधेय भाव सम्बन्ध भी मिथ्या ही होता है।"

तन्त्र और वेदान्त में कुछ मतभेद भी है। वेदान्त जगत को असत्य और मिथ्या घोषित करता है। यहाँ तन्त्र की दृष्टिकोण दूसरा है। उस जगत में रहने वाले जीवों को शिव की अनुभूति मानता है। जीव को भी वह मन और शरीर से विभूषित शिव ही स्वीकार करता है। इनके अनुसार शिव यदि चेतना का अव्यक्त रूप हैं तो शक्ति उसका सक्रिय रूप है। अतः तन्त्र का मत है कि विश्व दिव्य रूप से सत्य हैं और इसमें निवास करने वाला हर जीव ईश्वर की सत्य सत्ता की आकृति है। यहाँ चारों ओर सत्य ही बिखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। अतः इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। इसमें रहकर यहाँ उत्पन्न वस्तुओं का अलिप्त भाव से उपयोग करते हुए सत्य सत्ता का अनुभव करना ही शक्ति दर्शन का अभीष्ट है। इस मत में शक्तिवाद वेदांत से भी उच्च और श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

—×—

शक्ति और सांख्य-दर्शन

"सांख्य-दर्शन" भारतीय दर्शनों में सबसे प्राचीन माना जाता है। सांख्य-सिद्धान्त का दर्जा ज्ञान की दृष्टि से बहुत ऊँचा है। प्राचीनकाल से विद्वानों में यह कहावत चली आ रही है कि—

"नहि सांख्यसमं ज्ञानं नहि योगसमं बलम्।"

वास्तव में सृष्टि के निर्माण में प्रकृति का विकास किस प्रकार हुआ और उसमें आत्मा का क्या स्थान है इसका विवेचन कपिल ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से किया है, वह सराहनीय है। सांख्य-दर्शन वास्तव में एक मनो-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैज्ञानिक दर्शन है। 'भगवद्गीता' में भी सांख्य-निष्ठा को बहुत महत्व दिया गया है और उसको 'निष्काम कर्मयोग' का पूरक ही माना है। इसीलिए गीताकार सांख्य और योग में भेदभाव करने वालों को अज्ञानी समझते हैं—

सांख्य योगो पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः।

सृष्टि-निर्माण के सम्बन्ध में सांख्य की अलग धारणा है। सांख्य-शास्त्र में यह समस्त विश्व २५ तत्वों का खेल माना गया है। इनके दो मुख्य विभाग हैं—पुरुष और प्रकृति। इनमें से 'पुरुष' अथवा आत्मा तो चैतन्य स्वरूप है, वह न किसी तत्व से बनता है और न उससे कुछ बनता है। प्रकृति के आठ विभाग माने गये हैं और उनमें से सोलह विकारों (विकृति) की उत्पत्ति कही गई है। आठ प्रकृतियाँ ये हैं—

१. मूल प्रकृति २. महत्तत्व (बुद्धि) ३. अहङ्कार ४. शब्द ५. स्पर्श ६. रूप, ७. रस, ८. गन्ध।

शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती हैं। सांख्य में प्रकृति उसको कहते हैं, जिससे आगे चलकर कोई अन्य तत्व उत्पन्न हो। इसलिए बुद्धि और अहङ्कार के साथ पांचों तन्मात्राओं को भी प्रकृति माना गया है क्योंकि उनसे ही सोलह, विकृतियों की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार हैं—

पाँच स्थूलभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण) पाँच कर्मेन्द्रियां (वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा) और ग्यारहवाँ मन कहा गया है।

यह पाँच स्थूलभूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष हैं और इनसे आगे चलकर किसी अन्य तत्व की उत्पत्ति नहीं होती, इस-लिए इन्हें विकृति कहा गया है! ये ग्यारह जिन सूक्ष्म तन्मात्राओं से उत्पन्न होती हैं, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है तो उसे सूक्ष्म और निर्बल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ध्यान होता है। जब इन पाँचों के भी मूल उद्गम की खोज की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाती हैं तो 'अहंवृत्ति' का साक्षात्कार होता है। 'अहङ्कार' से भी ऊपर उठकर विचार करने से 'महत्तत्व' अथवा 'अस्मितावृत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नहीं चलता तो अनुमान द्वारा 'महतत्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है जो कि अनादि हैं। इस प्रकार महर्षि कपिल ने जड़तत्व के जो चौबीस विभाग बतलायें हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किए गए हैं। यह मूल प्रकृति ही तीन गुणों सत्, रज और तम की न्यूनाधिकता के कारण जगत् के विभिन्न तत्वों तथा नाम रूपों में प्रकट होकर विश्व की रचना करती रहती है।

तन्त्र का मत सांख्य से भिन्न है। तन्त्र दार्शनिक विश्व को ३६ तत्वों से निर्मित स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सांख्य में पुरुष के ऊपर पंच कंचुक अर्थात् पाँच आवरण हैं—नियति, काल, रांग, विद्या और कला। इन पाँच आवरणों में से कला के ऊपर माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव हैं। इस तरह से २५ तत्वों के अतिरिक्त तन्त्र-मन्त्र से ११ तत्व और हैं। शिव तत्व को एक अलग तत्व माना जाता है। सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या तत्व कहा जाता है। माया से लेकर नीचे वाले ३२ तत्वों को आत्म-तत्व कहा जाता है। इस तरह से तात्विक दृष्टि से दोनों दर्शनों में अन्तर है।

सांख्य में पुरुष तथा प्रकृति के द्वैत सिद्धान्त को माना गया है परन्तु तन्त्र अद्वैत मत का समर्थक है।

विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कारिका में लिखा है—

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥

इस तरह से पुरुष और प्रकृति के मिलने से इस चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई।

सांख्य पुरुष और प्रकृति दोनों को अनादि मानता है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृतिपुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।

श्री शंकराचार्य ने इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कहा कि ईश्वर सनातन प्रभु हैं। यह स्वीकार करना ठीक है कि उसकी दोनों प्रकृतियाँ परा और अपरा भी सनातन और शाश्वत हैं। इस पर शंकराचार्य का मत है कि यदि प्रकृति और पुरुष को सनातन अनादि और स्वतन्त्र स्वीकार करलें तो इस ईश्वर की प्रभुता कम हो जाती है।

वास्तव में सांख्य में जिस प्रकृति का वर्णन है वह अत्यन्त ही स्थूल है। इसे अशुद्ध प्रकृति कहते हैं। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्य की तरह जड़ है। वह पूर्ण चैतन्यमयी है। सौन्दर्य-लहरी के प्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मी-धर ने (३४) श्लोक में परावाक् को प्रकृति कहा है। परा कहते हैं— सत् रज और तम की साम्यावस्था को। यह तीनों गुण ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक माने जाते हैं। इस पर को ही शुद्ध प्रकृति माना जाता है।

तन्त्र की प्रकृति निश्चल, परावाक रूप प्रणवात्मक कुण्डलिनी शक्ति है। प्रपंचसार-तन्त्र के अनुसार—

प्रकृतिः निश्चला परावाग्रूपिणी प्रणवात्मिका
कुण्डलिनीशक्तिः ।

अर्थात् "प्रकृति निश्चला होती है तथा वह परावाक् रूप वाली है और पर प्रणवस्वरूप से युक्त कुण्डलिनी शक्ति है।

(प्र० क्र० दी० ४००)

अत्र मच्छब्देन स्वसंवेद्यस्वरूपा
सेत्युक्ता परा प्रकृतिः गृह्यते ।

प्रकृति "यहाँ पर मन इस शब्द से अपने ही द्वारा वेदन करने के योग्य वह कही गई परा प्रकृति ग्रहण की जाती है।"

(प्र० क्र० दी० पृ० ४००)

प्रकृतिरिहारोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

अर्थात्, "यहाँ पर प्रकृति अपर से उपलक्षित परा कही गई है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"प्रपञ्चसार तन्त्र" में परा-प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

स्वामिन् प्रसीद विश्वेश के वयं केन भाविताः ।
किं मूलाः किं क्रियाः सर्वमस्मभ्यं वक्तुमर्हसि ।१६
इति पृष्टा परं ज्योतिरुवाच प्रमिताक्षरम् ।
यूयमक्षरसम्भूताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ।१७
तैरेव विक्रतिं यातास्तेषु वो जायते लयः ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा तमपृच्छत् सरौजभूः ।१८
अक्षरं नाम किं नाथ कुतो जात किमात्मकम् ।
इति पृष्ठो हरिस्तेन सरोजोदरयोनिना ।१९
मूलवर्णविक्रतिः विक्रतेर्विक्रतीरपि ।
तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगांश्च पृथग्विधान् ।२०
वैदिकांस्तान्त्रिकांश्चापि सर्वानित्यमुवाच ह ।
प्रक्रतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सद्यम् ।२१
अणोरणीयसी स्थूलात् स्थूला व्याप्तचराचरा ।
आदित्येन्द्राग्नितेजोमद यद्यत्तत्तनमयी विभुः ।२२
न श्वेतरक्तपीतादिवर्णैर्निधार्य चोच्यते ।
गणेषु न भूतेषु विशेषेण व्यवस्थिता ।२३
अन्तरान्तबहिश्चैव देहिनां देहपूरणी ।
स्वसंवेद्यस्वरूपा सा हृश्यदेशिकदर्शितैः ।२४
यथाकाशस्तमो वापि लब्धा या नोपलभ्यते ।
पुन्नपुंसकयोतुल्यापङ्गनासु विशिष्यते ।२५
प्रधानमिति यामाहुर्या शक्तिरिति कथ्यते ।
या युष्मानपि माँ नित्यमवष्टभ्यातिवर्तते ।२६
साहं यूयं तथैवान्यद् यद्वेद्यं तस्तु सा स्मृता ।
प्रलये ध्यायते तस्यां वदामिदं जगत् ।२७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सैव स्वांधेत्तिपरमा तस्या नाग्योनिस्त वेदिता ।
सा कालात्मना सम्यक् मयैव ज्ञायते सदा ।२८

(प्रथम पटल)

"हे स्वामिन् ! आप प्रसन्न होइये। हे विश्वेश ! हम कौन हैं जिसके द्वारा भावित हैं, क्या हमारा मूल है और क्या क्रिया–यह सभी हमको आप बताइये ! इस प्रकार से पूछी गई परम ज्योति प्रमित अक्षरों में बोली–आप लोग अक्षर में समुत्पन्न हैं और सृजन, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं। उनके द्वारा ही विकृति को व्याप्त हुए हैं और उनमें ही लय को प्राप्त होते हैं। उसके इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मा ने उनसे पूछा—हे नाय ! अक्षर वाला क्या है ? वह कहाँ से उत्पन्न हुआ है और उसका क्या स्वरूप है ? इस प्रकार कमलोद्भव के द्वारा पूछने पर हरि ने कहा मूलवर्ण विकृति है और विकृति की भी विकृति ये अभिन्न मन्त्र हैं और अनेक प्रकार के प्रयोग हैं जो चाहें वैदिक हों अथवा तन्त्रोक्त हों। हे सत्तम प्रकृति और पुरष नित्य हैं तथा काल नित्य है। अणु से भी अणु और स्थूल से भी स्थूल चराचर में व्याप्त हैं। सूर्य-चन्द्र अग्नि तेजयुक्त हैं और तन्मय ही विभु हैं। उसका कोई भी श्वेत रक्त आदि वर्ण के द्वारा कथन नहीं किया जा सकता है। गुणों में और भूतों में विशेष रूप से व्यवस्थित नहीं है। अन्दर बाहर देहधारियों के देह की पूर्ति करने वाली है। आचार्यों के द्वारा वह स्वयं संवेद्य-स्वरूप वाली है तथा दृश्यमान हैं आकाश तम में भी उपलब्ध वह लभ्यमान नहीं होती है। पुरष और नपुंसक में वह समान है। अंगनाओं में विशेषता वाली होती है। उसको प्रधान या शक्ति कहा जाता है। जो आप सबको और प्रभु को अब प्रसन्न करके अतिवर्जित होती है वही मैं हूँ और आप हैं तथा अन्य भी हैं जो वेद्य हैं, वह बताई गई है, प्रलय में यह चराचर जगत उसमें व्याप्त हो जाता है।

वही अपने आपको जानती है, वह परमा है और अन्य उसका ज्ञाता नहीं है। उसको काल के स्वरूप से ही सर्वहर मेरे द्वारा जानी जाती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शारदा तिलक तन्त्र में पराप्रकृति का वर्णन इस प्रकार है—

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशवर्णे क्रमाद्
व्याप्तं येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूपं जगत् ।
शब्दब्रह्म यदूचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तगंतं
तद्वोऽव्यादनिशं शशाङ्कसदनं वाचामधीशं महः ।१

अर्थात्—नित्य आनन्द वपु वाली हैं और निरन्तर गलत पचास वर्णों के द्वारा क्रम से जिसके द्वारा यह चराचर शब्दार्थ-रूप जगत् व्याप्त हो रहा है सुकृतीगण, अन्तर्गत चैतन्य उसको शब्द ब्रह्म कहते हैं, वह वाणियों का अधीश चन्द्र में सदन वाला तेज आपकी निरन्तर रक्षा करें।

इस तरह सांख्य दर्शन की विचार-धारा शक्ति दर्शन के सामने फीकी पड़ती दिखाई देती है। क्योंकि सांख्य की प्रकृति स्थूल है और शक्तिवाद की सूक्ष्म है।

शक्ति और आरण्यक

आरण्यक में त्रिपुरा का वर्णन आता है जिसे श्री त्रिद्या भी कहते हैं। यह धर्म, अर्थ, और काम की देने वाली है। वहाँ इसकी सुभगा, अम्बिका, सुन्दरी की संज्ञा भी गई है। सुभगा इसलिए कहा गया है कि यह श्री, यश, ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान और वैराग्य इन छः दिव्य गुणों को देने वाली है।

तैत्तिरीय आरण्यक के १० वें प्रपाठक में वेद-माता की स्तुति की गई है।

आयातु वरदा देवि अक्षरं ब्रह्मसम्मितम् ।

"हे देवि ! ब्रह्म के समान अक्षर अर्थात् नाश रहित और वरदान देने वाली आप आवें।"

भद्रकाली के स्तोत्र भी देव आरण्य में हैं जो इसी पाठक के आरम्भ में दिये हुए हैं—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भद्रं शुद्धांतमविज्ञानं भद्रलोकानुरूपं मङ्गलं ।
च वा कलयति जनयतीति भद्रकाली ।

'भद्र अर्थात् परम विशुद्ध आत्म ज्ञान और भद्रलोक के अनुरूप मङ्गल का जो कलन करती हैं अर्थात् प्रजनन क्रिया करती हैं वही भद्र-काली कही जाती है ।

भद्रं कर्णेभि: श्रृणुयाम देवा:
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्रा:

'हे देवगण ! हम कानों से भद्र अर्थात् मंगलमय श्रवण करें । हे यजत्र वृन्द ! हम नेत्रों से भद्र देखें ।'

'वृहद्वारण्यक' में कई स्थानों पर शक्ति का उल्लेख है जिसका उदाहरण अन्यत्र दिया गया है ।

इस तरह से आरण्यक से शक्ति का सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

गीता में शक्ति तत्व

गीता का शक्ति तत्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है शक्ति के पर्याय प्रकृति का अनेक स्थानों पर स्पष्टीकरण किया गया है ।

गीता (९।१०) में कहा है—'मैं अध्यक्ष होकर प्रकृति से सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ । हे कौंतेय । इस कारण जगत का यह बनना बिगड़ना हुआ करता है । प्रकृति और पुरुष, दोनों को ही अनादि समझकर विकार और गुणों को प्रकृति से उपजा हुआ ज्ञान जानो (१३।१९) । 'क्योंकि प्रकृति में अधिष्ठित होकर प्रकृति के गुणों का उपयोग करता है और प्रकृति के गुणों का यह संयोग पुरुष को भली-बुरी योनियों में जन्म लेने के लिए कारण होता है ।' (१३।२१) । 'हे भारत ! महद ब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरी ही योनि है । मैं उसमें गर्भ रखता हूँ । फिर उससे समस्त भूत उत्पन्न होने लगते हैं ।' (१४।३७) ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे कौन्तये ! पशु, पक्षी आदि सब योनियों में जो मूर्तियाँ जन्मती हैं, उनकी योनि महत् ब्रह्म है और मैं बीजदाता पिता हूँ।" (१४।४)। हे महाबाहु ! प्रकृति से उत्पन्न हुए सत्व रज और तम रूपी गुण देह में रहने वाले अव्यय अर्थात् निर्विकार आत्मा को देह में बाँध लेते हैं।' (१४।५)। और भी स्पष्ट शब्दों में भगवान ने कहा है 'पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश, (यह पाँच सूक्ष्म भूत) मन, बुद्धि और अहङ्कार इन आठ प्रकारों में मेरी प्रकृति विभाजित है।' (७।४) यह अपरा अर्थात् निम्न श्रेणी की, (प्रकृति) हैं। हे महाबाहु अर्जुन ! यह जानो कि इससे भिन्न, जगत को धारण करने वाली मेरी दूसरी प्रकृति है।' (७।५)। समझ रखो कि इन्हीं दोनों से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। सारे जगत का प्रभव अर्थात् मूल और प्रलय अर्थात् अन्त मैं ही हूँ (६)।

शक्ति मन्त्र–

गीता में शक्ति तत्व का ऐसा सजीव व सक्रिय चित्रण व आवाहन है कि कायर से कायर पुरुष को भी अपनी सुप्त शक्तियों का आभास लगता है। वह यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि वह कठिनाई से घबराकर, जीवन से निराश होकर अन्धकार में भटक रहा था, यह आशा की जीवन ज्योति पाकर तो मैं धन्य हो गया। अर्जुन जैसे करोड़ों व्यक्ति मानसिक निर्वलता से आक्रान्त होकर जीवन को भाग्य भरोसे ही छोड़ देते हैं, परिस्थितियाँ जैसे भी मोड़ खाती रहें उस पर सन्तोष कर लेते हैं। उन्हें अपने अन्तर्निहिन शक्तियों पर विश्वास नहीं होता। वे नहीं जानते कि प्राणी की शक्ति पहाड़ों को चूर-चूर कर सकती है, समुद्रों को सोख सकती है, हवाओं का रुख मोड़ सकती है, राक्षसी शक्तियों का दलन करने की क्षमता रखती है, प्राकृतिक शक्तियों पर अपना आधिपत्य स्थापित करके अपनी इच्छानुसार कार्य करा सकती है। उसे सहज में यह विश्वास नहीं होता कि मानव शक्ति का आगार है अंग-अंग में शक्ति के खजाने भरे पड़े हैं। उसकी नस-नस से शक्ति की ध्वनि आती है परन्तु खेद है कि भोग-विलास के इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भौतिक वासनामय जीवन में फँस कर वह अपने को क्षुद्र समझने लगता है। दुर्बलता के साधनों को अपनाना ही उसके जीवन का स्वभाव बन जाता है। चारों ओर उसे अपने शत्रु दिखाई देने लगते हैं। धन, वैभव आदि की सुरक्षा के लिए उसे भय सताने लगता है। सामाजिक बाधाएँ उसे रुलाती हैं और दिन-दिन कायर, बुजदिल और निर्बल बनाती चलती हैं। अर्जुन की भी यही स्थिति थी। उसके मन में भी निर्बलता ने स्थान बना लिया था। अब यह युद्ध से कतरा कर बहाने बनाने लगा था। और नाना प्रकार के तर्क वितर्क उपस्थित करने लगा था। तभी भगवान ने शक्ति मन्त्र को फूँका और स्पष्ट कहा—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थं नैतत्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

(गीता २।३)

"हे अर्जुन ! कायर मत बन, यह तेरे लिए उचित नहीं है। हृदय की तुच्छ-सी निर्बलता को त्याग और युद्ध के लिए उठ खड़ा हो।"

जीवन संघर्ष का दूसरा नाम है। पग-पग पर हमें विभिन्न प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। यदि हमने बाधाओं के समक्ष अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित कर दिए तो हमें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि संघर्ष करके जीवन को विकसित करने के लिए तो हमें यह सौभाग्य मिला है। यदि इसका उचित उपयोग न किया तो दुर्भाग्य में परिवर्तित होने में देर न लगेगी क्योंकि कायर ही दुःखी दरिद्र और क्षुद्र होते हैं। वीर और साहसी, पुरुषार्थी का इन क्षुद्र वृत्तियों से क्या सम्बन्ध ? अतः भगवान ने उपदेश दिया कि 'हे अर्जुन ! तुम्हें यह निर्बलता शोभा नहीं देती। शक्तिहीन का कहीं सम्मान नहीं होता। उठो अपने शस्त्रों को सम्भालो और हृदय को निर्बल करने वाली आसुरी शक्तियों का विनाश करो।"

गीता का यह शक्ति-मन्त्र कायरों को भी वीर सेनानी बनाने की क्षमता रखता है, क्योंकि वह शरीर से सम्बन्धित क्षुद्र वासनाओं तक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही सीमित नहीं रहने देता वरन वस्तुस्थिति से परिचय कराता है। गीता का स्पष्ट उपदेश है कि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो शरीर के स्वभागवत गुणों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि इसकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है, यह अनित्य और नाशवान है। इसलिए शरीर के नाश से शोक करना व्यर्थ है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तास्तितिक्षस्व भारत ।।

(गीता २।१४)

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।

(गीता २।१८)

भगवान ने कहा कि 'जब तुम शरीर नहीं हो तो उसका शोक क्यों करते हो ? तुम तो आत्मा हो जो जन्म-मरण आदि व्याधियों से रहित है। यह तो नित अविनाशी और अचिन्त्य है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।

(गीता १।१८)

वास्तव में न तो मरता है, न मारा ही जाता है।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।

यह तो सर्वथा अवध्य है—

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्व भारत ।

(गीता २।३०)

इसे शस्त्र मार नहीं सकते अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो अथवा गला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न नैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

(गीता २।२३)

अतः यह अटल सत्य है कि न मरने वाला, न जलने वाला, न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीगने वाला और न सूखने वाला यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और चिरन्तन हैं'—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।

(गीता २।२४)

'जो इस आत्म ज्ञान की व्यावहारिक रूप देकर शारीरिक सुख और दुःख को समान समझकर उसकी व्यथा से प्रभावित नहीं होता। वही अमृतत्व का अधिकारी होता है'—

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।

(गीता २।२५)

'जिस व्यक्ति का आत्म तत्व से परिचय हो जाता है वही एटम बम्बों के भीषण प्रहारों से भी भयभीत नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि नाश तो शरीर का स्वभाव है, वही जन्म लेता है उसी की मृत्यु होती है। (गीता २।१७) आत्मा न जन्म लेता है और न उसकी मृत्यु होती है। वह तो पुराने वस्त्रों के बदलने की भाँति पुराने जीर्ण शरीर को छोड़कर नए धारण करता रहता है।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराऽणि विहाय जीर्णान्यन्यानि
संयाति नवानिदेही । (गीता २।२२)

'अतः शरीर के विनाश से भय क्यों! वह तो नए जीवन का सन्देश है।'

गीता का यह शक्ति-मन्त्र पहिले से अधिक शक्तिशाली है। यह विश्वास दिलाता है कि हम इतनी महान शक्तियों के पुञ्ज हैं कि विश्व की भीषणतम शक्ति भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। उनके प्रहार हमारे ब्राह्म जगत को ही प्रभावित कर सकते हैं, अन्तर्जगत में उनका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रवेश सम्भव नहीं है। यह शक्ति मन्त्र हमें जगत की समस्त व्याधियों से सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है।

शक्ति विकास के दो साधन-यज्ञ और योग

१—यज्ञ—

आत्म-विकास के लिए भगवान ने दो प्रमुख साधनों का निर्देश किया है। वे हैं—यज्ञ और योग। यह दोनों शक्ति-विकास के श्रेष्ठ साधन है। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परोपकार, निस्वार्थ सेवा। यह भोगवाद का विरोधी है। यज्ञ यह जीवन भोगवाद का समर्थन नहीं करता क्योंकि भोगों से शक्ति का व्यय होता है। इस शक्ति व्यय को रोकने के लिए श्रेष्ठतम कर्म-यज्ञ का सहारा लेना पड़ता है। वहाँ शत्रु मित्र का कोई भेद भाव नहीं। सब अपने ही आप दिखाई देते हैं। यज्ञ-कर्ता चारों ओर अपने आत्मीयजनों के ही दर्शन करता है। तभी भगवान ने स्वयं यज्ञ-रूप होने की घोषणा की—

'अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहममेवर्वाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ (९।१६)

अर्थ—(भगवान कहते हैं) 'श्रौत कर्म मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा में हूँ, औषधि मैं हूँ मन्त्र मैं हूँ, आज्य (घृत) मैं हूँ अग्नि मैं हूँ और हवन रूपी क्रिया भी मैं ही हूँ।

तभी यज्ञ को ब्रह्ममय व्यक्त किया गया है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (४।२४)

अर्थ—'अर्पण (श्रुवादिक) भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूपकर्त्ता के द्वारा जो हवन किया गया है तथा ब्रह्मरूप कर्म में समाधिस्थ हुए उस पुरुष के द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही हैं।'

जब चारों ओर ब्रह्म का ही विस्तार है तब अपने को शेष विश्व से अलग मानकर स्वार्थपरता की भावना में लिप्त रहना और वैसा कर्म

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करना क्षुद्रता और अज्ञानता का चिन्ह है। इसे भगवान् ने चोर की संज्ञा दी है और अकेले खाने को पाप भक्षण कहा है—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तैन एव सः (३।१२)

अर्थ—'यज्ञभाविताः देवगण तुम लोगों को इष्ट भोग प्रदान करेंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष उनको अर्पण किये बिना भोग करता है, वह निश्चय ही चोर है।'

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्तेसर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। (३।१३)

अर्थ—यज्ञ से वचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सव पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने ही शरीर-पोषण के लिए पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

यज्ञ की यह एक्य भावना मुक्ति के द्वार खोलती है क्योंकि जव तक द्वैत में स्थिति रहती है तव तक बन्धन रहता है, अद्वैत में प्रवेश करनें पर स्वतन्त्रता के दर्शन होने लगते हैं। तभी भगवान ने कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंग समाचर ॥ (३।९)

अर्थ—'यज्ञ के निमित्त किये गये काम के सिवाय दूसरे काम को करने से यह मनुष्य कर्म-बन्धन में बँधता है, इसलिए हे अर्जुन ! मुक्त-संग रह कर तदर्थ कर्म को ही भली भाँति आचरण कर।'

यज्ञ की इस श्रेष्ठता के कारण भगवान ने इसे ग्रहण करने की प्रेरणा की है—

यज्ञदानतपः-कर्म न त्याज्यं कार्य मेववत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ (१८।५)

अर्थ—'यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। वरन् वह कर्म तो करने ही योग्य है, करना कर्त्तव्य ही है। यश दान और तप, यह तीनों तो मनीषियों को पवित्र करने वाले हैं।"

वेद में यज्ञ के लाभों पर विशिष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद में कहा है—

"यज्ञ से ज्ञान बुद्धि और बल की वृद्धि होती है (१।१३।३) यज्ञ सुखों की वर्षा करने वाला है। (१।१६।१।१)........यज्ञ से सब तरह का कल्याण होता है (५।४।७) जो यज्ञ करता है, वह धन, ऐश्वर्य से, तेज तथा यश और कीर्ति से मनुष्यों में चमकता है और अन्त में आत्मज्ञानी होकर अमर हो जाता है (६।५।५।५)........वेद-पाठ के देवता उठो ! देवताओं को यज्ञ का सन्देश सुनाओ। आयु, प्राण, प्रजा पशु और कीर्ति बढ़ाओ। यज्ञ-कर्त्ता को हर पकार से वढ़ाओ। (१०।१६।४।२)" यजुर्वेद में यज्ञ पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

"यज्ञ से अशुद्ध तत्वों का नाश होता है (१।१३) यज्ञ से आरोग्यता प्राप्त होती है। (१।१४।४।१५)........यज्ञ से दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है। (१।१५) यज्ञ से आन्तरिक शत्रुओं का नाश होता है। (१।१७) यह नेत्र रक्षक है। (२।१६) यज्ञ से असुरों का नाश होता है। (२३०) यज्ञ सुखों का संचय करने वाला है। (३।४६,४।६) यज्ञ निश्चय से कल्याणकारी है। वह दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, ऐश्वर्य, समृद्धि, सुसतति व बल-पराक्रम प्रदान करता है। (३।६३) यज्ञ वीरता-दायक और कायरता-विनाशक है। (४।३७) यज्ञ ऋषियों के हृदय को पवित्र करने वाला है। (३।४) यज्ञ बन्धन से मुक्ति का साधन है। (५।३०) देवताओं मनुष्यों पितृजनों और अपने प्रति किए गए, जाने या अनजाने किए गए पापों से बचाने वाला है। (८।१३)........यज्ञ करने वाले के लिए वायु और नदियाँ मधुर रस बहाती हैं (१३।२७)........यज्ञ से आत्मबल की वृद्धि होती है। (१७।६५)........मन, आत्मा, वाणी,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राण, ज्ञान ज्योति, श्री वेद आयु, नेत्र, यज्ञ से सम्पन्न होते हैं (१८। २८……यज्ञ से ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति होती हैं। (१९।१९)…… यज्ञ से सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है। (२०।८५)……यज्ञ से तीनों छन्दों (तीनों लोकों) जगती, त्रिष्टुप् और गायत्री में कल्याण होता है। (२।२५. ५।१३।१८)।

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में यज्ञ से अनन्त लाभों का प्रार्थना के रूप में इस प्रकार वर्णन है 'मेरा अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, ध्यान, प्रजा स्वर, प्रशंसा, कीर्ति, ज्ञान, सुख, प्राण, चित्त विचार, वाणी, मन, चक्षु चातुर्य, बल-ओज, साहस, स्वामित्व, मानसकोष, क्रोध, उद्वेग, सौम्य-भाव, उदार भाव, दीर्घ जीवन, लोक, धनधान्य, बुद्धि, समृद्धि, सत्य, श्रद्धा, तेज, व्यवहार, हर्ष, सुन्दर वचन, श्रेष्ठ कर्म, दान, अमर स्वरूप, आरोग्य, स्वास्थ्य, शत्रु हित्य, निर्भयता, संयमशक्ति, धारणशक्ति, धैर्य प्रेरणा, कल्याण, कामना, प्रसन्नता, भूत भविष्य, सुमार्ग और सुपथ समर्थ और शक्ति उद्देश्य यज्ञ से सुसम्पन्न हों।"

यदि रोगी अपनी जीवनी-शक्ति को खो भी चुका हो निराशा-जनक स्थिति को पहुँच गया हो, मरण काल भी समीप आ पहुँचा हो तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चंगुल से बचा लेता है और सौ वर्ष जीवित रहने के लिये पुनः बलवान कर देता है (अथर्व वेद ३।११।२)

इससे स्पष्ट है कि गीता में निर्देशित यज्ञक्रिया शक्ति का महान स्रोत है, इससे भौतिक और आध्यात्मिक–दोनों प्रकार की शक्तियों का विकास होता है।

योग–

शक्ति-विकास का दूसरा साधन योग को बताया गया है। तभी योगी बनने की प्रेरणा देते हुए भगवान ने कहा है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुनः । (६।४६)

अर्थात्—योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ हैं और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ है तथा सकाम कर्म (कर्मकाण्ड पूजा-पाठ-आदि) करने वालों से भी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन तू योगी बन ।

वास्तव में भगवद्गीता को यदि योग का एक प्रमुख कार्य ग्रन्थ कहा जाय तो उसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है । गीता में 'योग' 'योगी' और 'योगयुक्त' का शब्द जितना अधिक आया है, उतना किसी बड़े ग्रन्थ में भी कदाचित् ही मिलेगा । गीता के प्रत्येक अध्याय का नाम किसी प्रकार के योग माँग पर ही है, जैसे दूसरा अध्याय 'सांख्य योग' तीसरा 'कर्मयोग', चौथा 'ज्ञान-कर्म संन्यास योग', पाँचवा 'कर्म सन्यास योग' छठा 'आत्म-संयम योग' सातवाँ 'ज्ञानयोग' आदि । प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' ये शब्द भी लिखे जाते हैं । इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि गीता का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को ऐसा योगमुक्त जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना ही है जिससे इहलौकिक जीवन में सफल मनोरथ होकर परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सकें । यह सत्य है कि गीता में सबसे अधिक प्रधानता 'निष्काम कर्मयोग' को दी गई है और योग की सबसे श्रेष्ठ व्याख्या 'योग. कर्मसुकौशलम्' बतलाई गई है फिर भी उसमें पातञ्जल योगदर्शन में वर्णित अष्टांग-योग की विधि का भी सर्वथा अभाव नहीं है । गीता में प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है और छठे अध्याय में तो पातञ्जल योग-दर्शन में दी गई योग विधि का यथानथ्य वर्णन पाया जाता है ।

इस प्रकार के योग का फल भी महान कहा गया है । ऐसे योगा-भ्यासी को संसार के दुःख क्लेश, चढ़ाव-उतार, विघ्न-बाधायें किसी भी समय व्यथित या व्याकुल नहीं कर सकतीं । वह प्रत्येक अवस्था में पूण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शान्त, सन्तुष्ट और निश्चल रहता है। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है—

यथा दीपो निवातस्थोयो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ (६।१९)
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नत्मनि तुष्यति ॥ (६।२०)
तं विद्याद् दुःख-संयोग-वियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ (६।२३)

अर्थात्—जिस प्रकार वायुरहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही अवस्था परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित् की होती है। जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम होजाता है और जिस अवस्था में परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है तो योगी सच्चिदानन्द परमात्मा में ही सन्तुष्ट होता है। जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिनका नाम योग है उसी को जानना चाहिए। वह योग बिना उकताये हुए अर्थात् तत्पर हुए चित्त से निश्चय पूर्वक करना कर्तव्य है।

गीता में जो योग प्रतिपादित किया गया है। वह अधिकांश वेदान्तियों के सिद्धान्त की तरह शुष्क अथवा वर्तमान समय के भक्तों की तरह अपने ही उद्धार की आकांक्षा रखने वाला नहीं है, वरन् उसका मुख्य आधार सर्वव्यापी प्रेम है जो अपने साथ सब जीवों के उद्धार की कामना करता है। यही भाव निम्न श्लोक से स्पष्ट व्यक्त होता है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुख वा यदि दुःख स योगी परमो मतः ॥ (६-३२)

अर्थात्—"जो दूसरों को आत्मवत् समझकर उनके सुख-दुख को अपना सुख-दुःख समझता है, वही परम योगी है।" यही बात गीता के इस श्लोक में कही गई है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

—भगवद्गीता ६-२९

अर्थात्—योगयुक्त पुरुष सब पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है। इस प्रकार उसे संसार की वास्तविकता एकता का ज्ञान हो जाता है और वह समदर्शी बन जाता है।'

समता का व्यवहारिक रूप और उसके आर्थिक लाभ का वर्णन करते हुए गीता ५–१८, १९ में कहा गया है—

विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैवश्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोष हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।

अर्थात्—'ज्ञानियों की दृष्टि में विद्या विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल समान रहते हैं। जिन साधकों का मन साम्यावस्था में स्थिरता को प्राप्त हो जाता है वे इसी जीवन में मृत्यु-लोक पर विजय प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है। अतः मृत्यु की प्रतीक्षा न करके वे यहीं ब्रह्मभूत हो जाते हैं।'

यही बात गीता १८।५४ में कही गई है कि समस्त प्राणीमात्र में सम होकर वह मेरी परम भक्ति की प्राप्ति कर लेता है—

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।

यह गीता का साम्ययोग है। वही योग का वास्तविक लाभ है। संसार में मनुष्य को जो कुछ भय, विरक्ति व दुःख का अनुभव होता है, उसका एक मात्र कारण भिन्नता अथवा परायापन का बोध ही होता है। दो भिन्न पदार्थों अथवा व्यक्तियों में ही प्रतियोगिता अथवा संघर्ष हो सकता है। पर जब पृथकता की भावना को मिटाकर मनुष्य संसार में सर्वत्र एक ही सत्ता, एक ही तत्व का अनुभव करने लगेगा तो न तो वह किसी से भयभीत हो सकता है, न घृणा कर सकता है, न क्रोध कर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकता है। ऐसा व्यक्ति ही पूर्ण निर्भय निर्द्वन्द हो सच्ची शान्ति और सुख का उपभोग कर सकता है।

अपने समस्त साधनों को भगवान के अर्पण करने पर गीता में विशेष बल दिया गया है। यथा—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (९।२७)

अर्थात्—'हे कौन्तेय! तू जो कुछ काम करता है, आहार ग्रहण करता है, यज्ञ करता है, दान अथवा तप करता है, वह सब मुझे ही सर्मपित कर।'

फिर कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः। (९।३४)

अर्थात्—'मुझमें मन लगा, मेरी भक्ति करो, मेरी उपासना करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह से मत्परायण होकर योगाभ्यास करने में तुझे मेरी प्राप्ति होगी।'

यही बात २८ वें श्लोक में कही गई है—

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

अर्थात्—इस प्रकार कर्म करके कर्मों के शुभाशुभ परिणाम के बन्धन से तुझे मुक्ति मिलेगी ओर इस कर्मफल के संन्यास से युक्तात्मा होकर तू मुक्त हो जायेगा और मुझसे एकात्मता प्राप्त कर लेगा।'

इस योग की विवेचना एक विद्वान् ने इस प्रकार की है—

'गीता के योग का सार भगवान ने अठारहवें अध्याय के ६५ वें श्लोक में कह दिया है कि 'मेरे (भगवान के) मन में अपना मन मिला दो, मेरे भक्त हो जाओ, मेरा भजन करो, मुझे प्रणाम करो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम मुझको ही प्राप्त होगे, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो।' यह तत्व गीता का हृदय है जैसा हम समझ सकते हैं, यह वह योग है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो मानव प्रकृति के सब अंगों को एक सूत्र में ले आता है। इसके विना योग क्या है ? ऐसा विकास किस काम का जिसमें सब अङ्गों का सामञ्जस्य न हो ? सभी अंश शुद्ध, पवित्र और दिव्य न बनें ? यदि कोई कहे कि यह बडा कठिन और दुर्गम मार्ग है तो उत्तर यही है कि इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है। यदि अधोगति से वाहर निकलना है, तो अन्त में इसी को अङ्गीकार करना पड़ेगा। भगवान कृष्ण ने स्वयं कह दिया है कि 'अनेक जन्मों के पश्चात् ज्ञानी पुरुष मेरे पास आता है। अभी या पीछे सभी को इसी दुर्गम मार्ग या 'क्षुरस्य धारा' (तलवार की धार) पर चलना होगा। चलते हुए पाँवों से चाहे कितना ही रक्त निकले और हृदय का साहस टूटे पर इसमें सन्देह नहीं कि भगवान सदा हमारे पार्श्व में रहते हैं, एक क्षण के लिए भी अकेला नहीं छोड़ते।

योग की जितनी भी प्रणालियों का वर्णन गीता में किया गया है उन सबका आशय एक ही है—शक्तिहीनता अर्थात् बन्धन का निवारण शक्ति-सम्पन्नता अर्थात् स्वतन्त्रता–मोक्ष की ओर बढ़ना।

माया—प्रकृति—शक्ति

गीता (४-६) में 'माया' शब्द आया है जहाँ भगवान ने कहा है अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ। भगवान शंकराचार्य ने इस माया को शक्तिरूपिणी कहा है—

अव्यक्तनम्नी परमेशशक्ति-
रनादिविद्या त्रिगुणात्मिकापरा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया
यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥

अर्थात्–परमेश्वर की अव्यक्तनाम्नी शक्ति जिसने इस संसार रूपी जगत को रचा है अनादि अविद्या, त्रिगुणात्मिका और संसार रूपी कार्य के परे हैं। कार्य रूपी विश्व को दृष्टि में रखकर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीता (६-१४) में भगवान ने कहा है कि 'मेरी यह गुणात्मक और दिव्य माया बड़ी दुस्तर है।'

दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

फिर कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

'अपवी योगमाया से निहित मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता ।

भगवान ने चेतावनी देते हुए कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरभावमाश्रिताः ।।

'माया ने जिनके ज्ञान को विनष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि में पकड़कर मेरी शरण में नहीं आते ।

अपनी शरण में आने में भगवान ने माया को पार करने का उपाय गीता में बताया है—

श्रुति ने कहा है कि त्रिगुणमयी माया में स्थित यह सारा चराचर जगत ईश्वर से व्याप्त है ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । (७-१४)
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगष्यां जगत् ।

(ईशोपनिषद् १)

श्वेताश्वतरोपनिषद् ४-१० में प्रकृति को माया और माया के अधिपति को परमेश्वर कहा है—

'माया तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।'

इस प्रकृति को गीता १३।१९ में अनादि कहा है और विकार व व गुणों को इसी से उपजा हुआ माना है । गीता (१४-३) में सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही मानी है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् हे भारत ! मेरी महद्ब्रह्म रूपी प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है और मैं उस योनि में चेतन रूप बीज की स्थापना करता हूँ। उस जड़-चेतन के सहयोग से ही समस्त भूतों की सृष्टि होती है—

न केवलं ब्रह्मैव जगत्कारणा निर्विकारत्वात् । नापि केवलं शक्तिः कारणं स्वातन्त्र्याभावात् । तस्मादुभयं मिलित्वैव जगत्कारणं भवति ।

'निर्विकार होने के कारण केवल ब्रह्म जगत् का कारण नहीं है। केवल शक्ति को भी कारण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें भी स्वतन्त्रता का अभाव है। इसलिये ब्रह्म और शक्ति दोनों के संयोग से ही विश्व की उत्पत्ति मानी है—

गीता (३।२७) में प्रकृति के गुणों—सत्, रज और तम से ही समस्त कर्मों की उत्पत्ति होती है।'

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

गीता (१०-२०) से कार्य और कारण (शरीर और इन्द्रियाँ) के कार्यों के लिये प्रकृति को ही कारण माना है—

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।

गीता (१४) में सत्, रज और तम को भी प्रकृति के ही कारण माना है—

सत्व रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।।

यही निर्विकार आत्मा को शरीर से बाँधते हैं--

निवध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् । (गीता १४-५)

इस पृथ्वी, आकाश अथवा देवलोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो प्रकृति के इन गुणों से मुक्त हो ।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्मिभिर्गुणैः ।।

(गीता १८-४०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह प्रकृति आठ प्रकार की है--गीता (४।५) के अनुसार--

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

पांच सूक्ष्म भूत--पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मन, बुद्धि, अहंकार यह आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है । इसे अपरा प्रकृति कहते हैं जो निम्न श्रेणी की है। दूसरी प्रकृति है जो उच्च श्रेणी की है जो जगत् को धारण करती है ।

भगवान ने कहा है जो इस रहस्य को नहीं जानता, वह अहं से मोहित होकर अपने को ही कर्ता मानने लगता है । वह अज्ञानी है--

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।
अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ।

गीता १३-१९ में कहा है--

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ।।

अर्थात् "जिसने यह समझ लिया कि सब कर्म सब तरह से प्रकृति से ही क्रियान्वित होते हैं और आत्मा अकर्ता है समझना चाहिए कि उसने वास्तविक तत्व को जान लिया ।'

इसी प्रकृति को शक्ति के नाम से अभिहित किया गया है । गीता का यह सिद्धान्त शक्ति-सिद्धान्त से मिलता जुलता है । गीता में शक्ति सिद्धान्त बड़े ही सशक्त रूप में वर्णित किया गया है । चौथे अध्याय के श्लोक ६ से ९ में जहाँ अवतारवाद का विवेचन किया गया है, यह सिद्धान्त और निखर कर आया है। गीता में शक्ति के ऊँचे से ऊँचे स्वरूप का वर्णन है । उसके स्तर को क्रमशः बढ़ाया गया है शक्ति की स्वतन्त्र सत्ता भी बताई गई है। उसे ईश्वर के आधीन बताया गया है-

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृतस्नमवंशं प्रकृतेर्वशात् ।। (गीता ९-८)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं अपनी प्रकृति को अपने हाथ में लेकर भूतों के इस समग्र समुदाय को बार-बार उत्पन्न करता हूँ।' गीता में शक्ति और पुरुष की अभिन्नता का भी सिद्धान्त स्वीकार किया गया हैं--

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववथितः ।। (९-४)

मैंने अपने अव्यक्त रूप से इस सारे विश्व को विस्तृत और व्यापक किया सारे भूत मुझमें हैं।

यथाकाशस्थितो नित्यम् वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।।

सब ओर प्रकाशित होने वाली महान वायु जिस तरह सब ओर अकाश में रहती है, उसी तरह सब भूतों को मुझमें जान।

गीता के शक्तिवाद की यह महान विवेचना हैं जिसे तन्त्र और वेद मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं।

दुर्गा-सप्तशती और गीता में अनुकूलता

दुर्गा-सप्तशती गीता की परवर्ती मानी जाती है। यूँ कहना चहिए कि भगवद्गीता की आधारशिला पर ही सप्तशती की रचना हुई है। दोनों का अध्ययन विषयों में साम्य प्रदर्शित करता है।

गीता में ७०० श्लोक हैं। सप्तशती में ५३५ श्लोक, ४२ अर्ध श्लोक, ६६ अवदान और ५७ उवाच हैं। उनका योग ७०० होता है।

गीता 'महाभारत' का एक अङ्ग है। महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास हैं। अतः गीता व्यास की ही रचना है। सप्तशती 'मार्कण्डेय पुराण का एक भाग है, पुराणों के रचियता भी व्यासजी ही माने जाते हैं। अतः सप्तशती के लेखक भी व्यास ही सिद्ध होते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीता में ज्ञान के उपदेष्टा स्वयं भगवान कृष्ण हैं और श्रोता हैं अर्जुन। सप्तशती के उपदेशक हैं-मेधा ऋषि और श्रोता हैं-सुरथ--क्षत्रिय राजा और समाधि वैश्य। मेधा का अर्थ है--आत्म ज्ञान। शंकर-भाष्य गीता (१८-१०) में कहा है--

मेधया आत्मज्ञान लक्षयया प्रज्ञयया।

सुरथ का अर्थ करते हुए कहा गया है--

सुष्ठुरम्यतेऽत्र इति सुरथः।

यहाँ सत्य प्रवृति मार्ग के पथिक को सुरथ कहा है। दुर्गा १।४ में भी कहा है--

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥

अर्थात्-'पहले स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्र के वंश में उत्पन्न होने वाला सुरथ नाम का राजा इस समस्त भूमण्डल पर हुआ था।'

रमन्तेऽस्मिन इति रथः। शोभनो रथो यस्य स सुरथः।

दुर्गा सप्तशती (शान्तनवी टीका) के अनुसार--

समाधिः-समाधीयते सर्वमस्मिन्।

अर्थात्--जिसमें देवता रमण किया करते हैं वह रथ। अर्थात् शोभन जिसका रथ है वह सुरथ है।'

समाधि का अभिप्राय निवृतिमार्ग के पथिक साधक से है।

समाधीयतेऽस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वमिति समाधिः।

अर्थात्--जिसमें सभी कुछ का समाधन किया है उसे समाधि कहा जाता है।

अर्थात्-जिसमें पुरुष के उपभोग के लिए सबका समाधान किया जाता है। भली-भाँति ग्रहण करने को समाधान कहा जाता है।'

अर्जुन ज्ञानी था। परन्तु जब मिथ्या-अज्ञान ने उसे आ घेरा तब उसे ज्ञानयोग के उपदेश की आवश्यकता हुई। अविवेक से ही अज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस महारोग की रामबाण औषधि विवेक ही हो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकती है। इसीलिये भगवान ने अर्जुन को बुद्धि की शरण में जाने का उपदेश दिया।

'बुद्धौ शरणमन्विच्छ' (गीता, २।४९)

मेधा ऋषि भी तत्व के प्रतीक हैं। सुरथ और समाधि को जब जीवन-मार्ग में बाधा और विपत्ति आती है और चारों ओर निराशा ही निराशा दिखाई देतीहै तो बुद्धि की शरणमें जाने के अतिरिक्त और कौनसा मार्ग हो सकता है? बाधाएँ आने पर चिंतामग्न रहना, अपने भाग्य और उसके निर्माता को कोसना, जिनसे प्रत्यक्ष रूप से कष्ट हो रहा है, उन पर आरोप-प्रत्यारोप लगाना ही कायरता और अज्ञानता के चिन्ह हैं। इसका उपाय ही केवल बुद्धि के निर्देशन में चलना है। वही सप्तशती के दोनों पात्रों ने किया है।

अज्ञान को शास्त्रीय भाषा में असुर कहते हैं और ज्ञान को देव। मानव मन में दोनों विद्यमान रहते हैं। उसकी प्रवृति में तीन गुण हैं- सत्, रज और तम। जब रज और तम मिलकर सत् को दबा लेते हैं अर्थात् जब मनुष्य भोग एश्वर्योंमें लिप्त होकर अपने सत तत्वको निर्वल कर देता है, तो उसे असुरता का देवत्व पर आधिपत्य होना कहते हैं।

आसुरी बुद्धि की परिभाषा करते हुए गीता (१७।५।६) में कहा गया है-

अशास्त्रविहितं घोर तप्यन्ते ये तपो गना।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्रामचेतसः
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान्

अर्थात् 'जो व्यक्ति दम्भ और अहंकार के वशीभूत होकर काम लौर आशक्ति की पूर्ति में शास्त्र विरुद्ध कार्यों में लीन रहते हैं, और जो न केवल देहके पचमहाभूतों को ही बल्कि उसमें निवास करने वाले मुझको भी कष्ट दिया करते हैं, उन अविवेकी जनों को आसुरी बुद्धि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रमुख असुरों का वर्णन सप्तशती में आता है। उन्हीं का वध देवी का उद्देश्य था। वे असुर है-मधु, कैटभ, महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ, धूम्रलोचन, रक्तबीज, चण्ड, मुण्ड, सुग्रीव, ।

मधुकैटभ का आध्यात्मिक अर्थ-राग और द्वेष, महिषासुर तामस् अहंभाव है, शुम्भ का अर्थ है-अहङ्कार और निशुम्भ का अर्थ है। ममकार, धूम्रलोचन लोभ है रक्तबीज का अभिप्राय है-विषयाभिलाष। शुम्भ और निशुम्भ के भृत्य हैं-चण्ड और मुण्ड अर्थात् काम और क्रोध। सुग्रीव इनका काम करता है, वह परिग्रह का प्रतीक है। सप्तशती (५।५।१४) में कहा है-

परमैश्वर्यमतुल प्राप्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद्बुद्धया समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ।।

अर्थात् 'मेरा परिग्रह प्राप्त करने से अर्थात् मेरी प्रपत्ति में प्राप्त हो जाने पर अत्यधिक एवं असीमित वैभव की प्राप्ति कर लेगा। इसको अपनी बुद्धि से भलीभाँति विचार करके मेरी परिग्रहता को ग्रहण करो।'

गीता में भी कहा है कि जो व्यक्ति काम, क्रोध, अहंकार, बल, दर्प को आधार मानकर अपने और अन्य शरीरों में निवास करने वाले मुझको द्वेष करते हैं और सन्मार्ग के पथिकों की निन्दा करते हैं, वे असुर हैं और अशान्त रहते हैं शान्त अवस्था प्राप्त करने के लिए इस आसुरी सम्पत्ति का त्याग करना होगा। (१६।१८) काम-क्रोध और लोभको नरक का द्वार कहा गयाहै जो हमारा नाश करते हैं। इसलिए इनके त्याग की प्रेरणा दी गई है-

त्रिविध नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् ।।
(गीता १६।२)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu-Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनेक प्रकार की कल्पनाओं के भ्रमित, मोहक चंगुल में फँसे और विषय वासनाओं में आसक्त अपवित्र नरकों में आते हैं -

अनेक चित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृता: ।
प्रसक्ता: कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।
(गीता १६-१६)

भगवान कहते हैं कि 'अशुभ काम करने वाले इन द्वेषी और क्रूर अधम व्यक्तियों को सदैव पाप योनियों में पटका जाता है'-

तानहं द्विषत: क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ।। गीता १६-१९ ।।

गीता (३।१६) में भी काम और क्रोध को मानव का शत्रु कहा है। ३।३८ में काम को कभी तृप्त न होने वाली अग्नि कहा है। इस पर ज्ञान को ढकने का आरोप लगाया गया है। (३।४०।४३) में इस कामरूपी शत्रु को मार डालने की प्रेरणा दी गई है। सप्तशती में भी देवता देवी से यही प्रार्थना करते हैं।

असुरविनाश का उद्देश्य सप्तशती और गीता दोनों में है। गीता में इसके माध्यम अर्जुन बनते हैं परन्तु प्रोत्साहन मिलता है भगवान कृष्ण से। अर्जुन तो केवल औजार मात्र बनते हैं। दोनों के सम्मिलित प्रयत्न का उद्देश्य है समाज में व्यापक रूप से फैले हुए आसुरी भाव को पूरा करना। सप्तशती में भी भगवती का यही उद्देश्य है परन्तु इस कार्य को वह स्वयं करती है और रण में आसुरों को ललकार कर एक-एक करके उनका वध करती है।

दोनों ग्रन्थों की उपासनापद्धति में कुछ अन्तर प्रतीत होता है। जहाँ सप्तशती में सकाम उपासना पर बल दिया गया है और कहागया है रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो देहि, वहाँ गीता में निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि काम करते जाओ परन्तु फल की इच्छा मत करो।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीता में भगवान ने अपने अवतार का उद्देश्य बताते हुए कहा हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात्--'हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म प्रबल हो जाता है तब मैं स्वयं अवतार लिया करता हूँ । साधुओं के संरक्षण और दुष्टों के विनाश के लिए, युग-युग में धर्म की संस्थापनाके लिए मैं जन्म लिया करता हूँ ।'

सप्तशती के अनुसार जब देवता भोगों में लिप्त होते हैं तो उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है तभी उनके अधिकार छीन लिये जाते हैं, परन्तु जब वे भगवान का स्मरण करते हैं और भगवती के दर्शन करते हैं तो उनका संरक्षण होता है और असुरों का नाश होता है। दोनों का मूल उद्देश्य एक ही है।

सप्तशती में जब देवता असुरों से पराजित होते हैं तो वह भगवती की शरण में जाते हैं और शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड और सुग्रीव असुरों के विनाश की प्रार्थना करते हैं। सप्तशती के असुर आलंकारिक रूप से वर्णित किये गये हैं। परन्तु गीता का स्पष्ट प्रतिपादन है-ये हैं अहंकार, ममत्व, काम, क्रोध, बध, दप और परिग्रह। गीता के अनुसार जो व्यक्ति इन्हें आश्रय देते हैं वह भगवान से द्वेष करते हैं और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। इसके विपरीत जो इन आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करते हैं,वह परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

सप्तशती में देवताओं ने 'या देवी सर्वभूतेषु' आदि स्तुति की है। इसमें भगवती के अव्यय व अविनाशी वपु का वर्णन है। इन स्तुतिमें सात्विक ज्ञान की झलक मिलती है। गीता में सात्विक ज्ञान का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है--

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ।।
(गीता १८।२०)

अर्थात् 'जिस ज्ञान से यह प्रतीत हो कि भिन्न-भिन्न प्राणियोंमें एक ही अविभक्त भाव और अव्यय भाव हैं, वह सात्विक ज्ञान है ।'

सप्तशती में देवता भगवती की इस प्रकार स्तुति करते हैं--

देव्या यथा ततमिदं जगदात्मशक्त्या: ।

अर्थात् 'जिस जगज्जननी देवी ने यह सम्पूर्ण जगत् अपनी शक्ति के द्वारा विस्तार वाला निर्मित किया है ।'

यस्या: प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ।
ब्रह्माहरश्च नहि वक्तुमलं बलं च ।

अर्थात्--'जिस महामाया के इस असीम प्रभाव को साक्षात् अनन्त भगवान--ब्रह्मा और शिव भी बतलाने की क्षमता नहीं रखते हैं और देवी के बल विक्रम को भी जो कि अतुल है, वे नहीं कह सकते हैं ।

'हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे ....'

'सत्व-रज-तम इन तीनों गुणों वाली आप हैं और समस्त लोकों के सृजन का कारण भी हैं, किन्तु दोषों से आपका स्वरूप जाना नहीं जाता है ।

'स्वर्गं प्रदाति च ततो भवती प्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ।

'फिर हे देवि ! आपके प्रसाद से स्वर्ग को प्राप्त किया करता है । इससे आप तीनों लोकों में फल प्रदान करने वाली हैं-इसमें कोई सन्देह नहीं है ।'

इसका अभिप्राय यह है कि जब देवताओं में दोष उत्पन्न हो जाते हैं तब वह भगवती को भूल जाते हैं । उनकी निवृत्ति होने पर ही उसका स्मरण होता है ।

इन भावों को 'गीता' में इस प्रकार व्यक्त किया गया है--

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥

अर्थात्--'हे भारत ! इच्छा और द्वेष से उपजने वाले द्वन्द्वों के मोह से इस सृष्टि में समस्त प्राणी भ्रम में फँस जाते हैं ।'

'सप्तशती' के ११ वें अध्याय के आठवें श्लोक से २३ वें श्लोक तक नारायणी स्तुति है । यहाँ देवी के विभिन्न रूपोंका वर्णन है । उसे विश्व का उपसंहार करने वाली (९) कल्याणदायिनी, शरणागतवत्सला (१०),सृष्टि, पालक और संहार की शक्ति भूता बताया गया(११-१२) है । ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, शिव-दूती, मुण्डमर्दिनी चामुण्डा सभी रूप उसी देवी के हैं और सहस्र नेत्रों वाली (१३-२१) लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा,ध्रुवा, (२२) मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, ऐश्वर्य-रूप, संयम-परायणा और सबकी अधीश्वरी वही है (२३) वह सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी और सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न है (२४), जो साधक भगवती के इस तत्वज्ञान को जानता हैं, वही उसे पाने का अधिकारी है--

'गीता' ७।१९ में भी यही भाव है--

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

अर्थात्--अनेक जन्मों के बाद जब यह ज्ञान हो जाये कि जो कुछ है वह सब वासुदेव ही हैं, तब ज्ञानवान् मुझे पा लेता है, ऐसा महात्मा दुर्लभ है ।'

दोनों भावों में अनुकूलता है ।

'सप्तशती' के मध्यम चरित्र के अनुसार जब महिषासुर ने देवताओं को पराजित किया और इन्द्रासन का अधिकारी होगया तो देवता ब्रह्मा को लेकर विष्णु और शिव के पास गये । हरि-हर को देवताओं पर दया आयी । उनके मुख से तेज निकला । अन्य देवताओं ने भी अपने तेज को इसमें सम्मिलित कर लिया और वह तेज [illegible] देवी के रूप में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिणित हुआ । इस देवी ने महिषासुर का वध किया और देवी की इच्छा पूर्ण हुई । हरि-हर की शरण में जाने से निश्चित रूप से यही परिणाम होता है ।

गीता ८।१४ में भी यही भाव व्यक्त किया है--

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।।

अर्थात्--हे पार्थ ! अनन्य भाव से जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस नित्य युक्त योगी को मेरी प्राप्ति सुविधापूर्वक होती है ।

देवी के मध्यम चरित्र के अनुसार जब निशुम्भ मारा गया तब शुम्भ ने दुर्गा से कहा कि तू तो व्यर्थ ही विजय का घमण्ड कर रही है तू तो दूसरी स्त्रियों के बल पर युद्ध कर रही है । (१०।३) इस पर देवी ने उत्तर दिया--

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यीमद्विभूततः ।। (१०।५)

'मैं अकेली ही हूँ । इस जगत् में मेरे अतिरिक्त और कौन है । देखो यह मेरी ही विभूतियाँ मुझ में ही विलुप्त हो रही है ।'

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ।। (१०।६)

इसके बाद ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवी के शरीर में प्रविष्ट हो गईं । उस समय केवल अम्बिका देवी ही शेष रह गईं ।

फिर देवी ने कहा--

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकेव तिष्ठण्म्याजो स्थिरो भव ।। (१०।८)

'मैं अपनी विभूति से विभिन्न रूपोंमें यहाँ प्रस्तुत हुई थी,उन्हें मैंने समेट लिया। अब अकेली ही युद्धमें स्थित हूँ ।तुम भी स्थित हो जाओ।'

उपरोक्त श्लोकों में देवी ने अद्वैत भावना को व्यक्त किया है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीता में भी कहा गया है--

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप (१०।४०)

मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है ।'

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥

वह सभी वस्तुएं मेरे ही तेज से उपजी हुई समझो जो वैभव, लक्ष्मी या प्रभाव से मुक्त है ।'

भगवान ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है कि मैं रुद्रों में शंकर, यक्ष और राक्षसोंमें कुबेर, वसुओं में पावक, पर्वतोंमें मेरु (१०-२३) पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में स्कन्द, जलाशयों में समुद्र (२४), महर्षियों में भृगु, वाणी में ॐकार, यज्ञों में जपयज्ञ, स्थावर पदार्थों में हिमालय (२५), वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, सिद्धों में कपिल (२६) घोड़ों में उच्चैःश्रवा, गजेन्द्रों में ऐरावत, मनुष्यों में राजा (२७), आयुधों में वज्र, गौओं में कामधेनु, सर्गों में वासुकि (२८), नागों में अनन्त, जलचर प्राणियों में वरुण, पितरों में अर्यमा और नियमन करने वालों में यम हूँ (२९), दैत्यों में प्रह्लाद, ग्रसने वालों में काल, पशुओं में सिंह, पक्षियों गरुड़, वेग वालों में वायु, अस्त्र धारियों में राम, मछलियों में मगर, नदियों में भागीरथी (३१) विद्याओंमें आत्म-विद्या (३२) वैदिक स्तोत्रोंमें बृहत्साम, छंदोंमें गायत्री मासों में मार्गशीर्ष, ऋतुओं बसन्त (३५) यादवों में वसुदेव, पांडवों में धनञ्जय, मुनियों में व्यास और कवियों में शुक्राचार्य (३६) मैं हूँ । अन्त में भगवान कहते हैं कि सब भूतों का जो कुछ बीज है, मैं हूँ, ऐसा कोई चर-अचर भूत नहीं जो मुझे छोड़ दे (३८) ।

भगवान ने सभी भूतों और प्राणियों के साथ अपना एकत्व प्रदर्शित किया है ।

'सप्तशती' और 'गीता' के ढंग अलग-अलग हैं तो भी अद्वैत-भावना को व्यक्त करने की भावना दोनों की एक ही है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'सप्तशती' के तीनों चरित्रों में ब्रह्मविद्या का चित्रण किया गया है। प्रथम अध्याय के श्लोक ५४-५८ तक महामाया भगवती (ब्रह्म-विद्या) का विवेचन है। सूत-संहिता में भी पार्वती को परम विद्या और ब्रह्म-विद्या प्रदान करने वाली कहा है–

'पार्वती परमा विद्या ब्रह्म-विद्या प्रदायिनी ।'

गीता का भी विषय ब्रह्म-विद्या है, इसके तो प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे' लिखा है, इससे दोनों का प्रतिपाद्य विषय एक ही प्रतीत होता है।

सप्तशती के प्रथम चरित्र की कथा के अनुसार जब मधु और कैटभ नामक दैत्यों ने ब्रह्मा को ग्रसने का प्रयत्न किया तो ब्रह्मा ने परमा शक्ति से रक्षा की प्रार्थना की। इसका अभिप्राय है कि ब्रह्माको परम-शक्ति का ज्ञान था जो गुणत्रय से परे परम भाव की प्रतीक है।

इस भाव का प्रतिपादन गीता में इस प्रकार है–

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदाद्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भाव सोऽधिगच्छति ।।१४।१९।।

'द्रष्टा जब यह समझ जाता है कि (प्रकृति) गुणों के सिवाय और कोई कर्ता नहीं है और जब तीनों गुणों से परे तत्व को भली प्रकार जान लेता है, तो वह मुझमें मिल जाता है।

यही बात गीता ३।२७। में कही गई है-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकार-विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ।।

'प्रकृति के सत्व-रज-तम गुणों से ही सब काम होते हैं, पर अहंकार से मोहित अज्ञानी अपने को कर्ता समझता है।'

ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता हैं, परन्तु, उनमें अहंकार नहीं था, इसी तरह जो साधक प्रकृति को कर्ता मानकर अपने को निरहंकार स्थिति में रखते हैं, उन्हें ही परम ज्ञान हो पाता है।

इस तरह से दुर्गा-सप्तशती और गीता के विचारों में अनुकूलता सिद्ध होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र-महासिद्धि

दुर्गा-उपासना का बौद्धिक अध्ययन

परिभाषा--

दुर्गा–दुर्गतिनाशिनी है। दुर्गया होने के कारण दुर्गा को प्रकृति को दुर्गा कहा जाता है। दुर्गा में 'दु' अक्षर दारिद्र, दु:ख, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन आदि दैत्यों के नाम का प्रतीक है। 'रेफ' रोगघ्न है, गणा पापघ्न और अन्याय, अत्याचार, अधर्म, अनेकता, आलस्यादि आसुरी प्रकृतियों का नाश-वाचक है।

प्राचीनता--

भारत में प्राचीन काल से दुर्गा की उपासना इसी उद्देश्य के लिए चली आ रही है। महाभारतके समय भगवान कृष्णने विजय श्री प्राप्त करने के लिए दुर्गा पूजा करने की प्रेरणा की थी। महाभारतकालीन गोपों ने अम्बिका की पूजा की थी। भागवत के अनुसार गोपियोंने 'कात्ययनी' देवी की आराधना की थी। यादवों ने दुर्गा की साधनाको अपनाया था -दुर्गा करणंपलब्धये' (भागवत)। रुक्मिणी जी ने अम्बिका की उपासना की थी।

दुर्गा संघ-शक्ति की प्रतीक हैं, क्योंकि उनका आविर्भाव ही देवताओं की संगठन शक्तिसे हुआ है। 'मार्कण्डेय पुराण' में इसका रोचक वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है–

क्रोध से युक्त विष्णु भगवान, शिवजी एवं ब्रह्माजी के मुखों से एक विस्तृत तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार इन्द्र और दूसरे देवताओं के मुखों से भी तेज निकला। अनन्ततः निकला हुआ समस्त तेज मिलकर एक हो गया। इसके पश्चात् मिलकर एक हुए उस अत्यन्त तेज पुन्ज

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को, जिसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गई थीं, पर्वत तुल्य जलते हुए देखा। फिर वह एकत्रित त्रिभुवन को अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज-पुञ्ज स्त्री रूप में परिवर्तित होने लगा। शिवजी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, राम के तेज से केश तथा विष्णु के तेज से उनकी दो भुजाएँ बन गईं। चन्द्र के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जघा और ऊरू, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियाँ, वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियाँ, कुवेर के तेज से नासिका, प्रजापति के तेज से दन्तावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र, दोनों संध्याओं के तेज से भृकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये, एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अन्य अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मंगलकारी देवी ने जन्म लिया, फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदानकिये। उसके पश्चात् शिवजीने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया। विष्णु भगवान ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया। वरुण ने उन्हें शंख, हुताशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व वाण प्रदान किये।

सहस्राक्ष अमरेश्वर इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी का घण्टा खोलकर दिया। यमराज ने काल दण्ड से एक दण्ड उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया। वरुण ने पाश, दक्ष प्रजापति ने अक्षमाला एवं ब्रह्माजी ने उन्हें कमण्डल प्रदान किया। दिनकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणें प्रदान की। काल ने उन्हें स्वच्छ तलवार और ढाल दीं। क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोतियों का हार, दो स्वस्थ वस्त्र सुन्दर चूड़ामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन प्रदान किये। अर्द्ध चन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनों बाहुओं में बाजूबन्द, कण्ठ के लिए सुन्दर आभूषण एवं समस्त अंगुलियों में अनुपम अँगूठियाँ दीं। विश्वकर्मा जी ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हें प्रदान किया। समुद्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ने खिले हुए कमल पुष्पों की शोभायमान मालायें कण्ठ एवं सिर पर धारण करने के लिए दीं। हिमालय ने देवी को सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान किये। पृथ्वी के आधार अनन्त नागेश ने देवी जी को महामणि-युक्त नागहार प्रदान किया। अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हें विभिन्न प्रकार के अस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये।

दुर्गा प्रेरित करती हैं कि जब भी आसुरी तत्व सर उठायें और उनके विनाश की आवश्यकता पड़े तो इसका केवल मात्र उपाय यही है कि देव-तत्व आपस में संगठित हो जाएँ। इस एकत्रित शक्ति पुञ्ज से ही उन्हें परास्त करना संभव होगा। यह शक्ति ही विश्व कल्याण का हेतु हो सकती है।

दुर्गा के अवतरण का उद्देश्य समाज को अव्यवस्थित करने वाली आसुरी शक्तियों का दमन है। भगवान कृष्ण ने गीता में प्रतिज्ञा की है कि जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब वे धर्म को विनाश से बचाने और उनकी संस्थापना के लिए मनुष्य रूप में अवतार धारण करते हैं। दुर्गा भी 'मार्कण्डेय पुराण' में ऐसी ही प्रतिज्ञा करती हैं। दुर्गा चरित्र से विदित होता है कि उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को निभाया है और अनाचार अन्याय, अत्याचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों का विनाश किया है।

विभिन्न नाम–

'दुर्गा सप्तशती' में दुर्गा के १०८ नामों का इस प्रकार वर्णन आता है।

१- ॐ सती २- साध्वी ३- भवगीता, ४- भवानी, ५- भवमोचिनी ६- आर्या, ७- दुर्गा, ८- जया, ९- आद्या, १०- त्रिनेत्रा, ११- शूल-धारिणी, १२. पिनाक–धारिणी, १३. चित्रा, १४. चण्डघण्टा १५. महात्मा, १६. मन, १७. बुद्धि, १८. अहङ्कारा, १९. चित्तरूपा, २०. चिता, २१. चिति, २२. सर्वमन्त्रमयी, २३. सत्ता, २४. सत्यानन्द, स्वरूपिणी, २५. अनन्ता, २६. भाविनी, २७. भाव्या, २८. भव्या,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२९. अभव्या, ३०. सदागति, ३१. शाम्भवी, ३२. वेदमाता, ३३. चिन्ता ३४. रत्नप्रिया, ३५. सर्वविद्या, ३६. दक्षकन्या, ३७. दक्षयज्ञ-विनाशिनी ३८. अपर्णा, ३९. अनेकवर्णा, ४०. पाटला, ४१. पाटलावती, ४२. पट्टाम्बरपरिधाना, ४३. कलञ्जीररञ्जिनी, ४४. अप्रमेयविक्रमा, ४५ क्रूरा ४६. सुन्दरी, ४७. सुरसुन्दरी, ४८. मातंगी, ४९. मतंग, ५०. मुनि-पूजिता, ५१. ब्राह्मी, ५२. माहेश्वरी, ५३. ऐन्द्री, ५४. कौमारी, ५५. वैष्णवी, ५६. चामुण्डा, ५७. वाराही, ५८. लक्ष्मी, ५९. पुरुषाकृतिः, ६०. विमला, ६१. उत्कर्षिणी, ६२. ज्ञाना, ६३. क्रिया, ६४. नित्या, ६५. बुद्धिदा, ६६. बहुला, ६७. बहुला प्रेमा, ६८. सर्व-वाहन-वाहना, ६९. निशुम्भशुम्भहनी, ७०. महिषासुरमर्दिनी, ७१. मधुकैटभहन्त्री ७२. चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी, ७३. सर्वासुर-विनाशा, ७४. सर्वदानवघातिनी, ७५. सर्वशास्त्रमयी, ७६. सत्या, ७७. सर्वास्त्र-धारिणी, ७८. अनेक, शस्त्रहस्ता, ७९. अनेकवस्त्रधारिणी, ८०. कुमारी, ८१. एक-कन्या, ८२. कैशोरी, ८३. युवती, ८४. यतिः, ८५. अप्रौढ़ा ८६. प्रौढ़ा, ८७. वृद्धमाता ८८. बलप्रदा, ८९. महोदरी, ९०. मुक्तकेशी, ९१. घोररूपा, ९२. महा-बला, ९३. अग्निज्वाला, ९४. रौद्रमुखी, ९५ कालरात्रि, ९६. तपस्विनी ९७. नारायणी, ९८. भद्रकाली, ९९. विष्णुमाया, १००. जलोदरी, १०१. शिवदूती, १०२. कराली, १०३. अनन्ता, १०४. परमेश्वरी, १०५ कात्यायनी, १०६. सावित्री, १०७. प्रत्यक्षा, १०८. ब्रह्मवादिनी।

दुर्गा के ३२ नामों का और भी वर्णन आता है जो इस प्रकार है–

१. दुर्गादुर्गतिशमनी, २. दुर्गापत्ति-निवारिणी, ३. दुर्गमच्छेदिनी, ४. दुर्गसाधिनी, ५. दुर्गनाशिनी, ६. दुर्गतोद्धारिणी, ७. दुर्गनिहन्त्री, ८. दुर्गमापहा, ९. दुर्गमज्ञानदा, १०. दुर्गदैत्यलोकदावानला, ११. दुर्गमा, १२. दुर्गमालोका, १३. दुर्गमात्मस्वरूपिणी, १४. दुर्गमार्ग--प्रदा, १५. दुर्गमविद्या, १६. दुर्गमाश्रिता, १७. दुर्गम-ज्ञान-संस्थाना, १९. दुर्गमज्ञानभासिनी, २०. दुर्गमोहा, २१. दुर्गमगा, २२. दुर्गमा-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

र्थस्वरूपिणी, २३- दुर्गमासुराहन्त्री, २४- दुर्गमायुधधारिणी, २५- दुर्गमंगी, २६- दुर्गमता, २७- दुर्गम्या, २८- दुर्गमेश्वरी, २९- दुर्गभीमा, दुर्गभामा, ३१. दुर्गभा ३२. दुर्गदारिणी।

"मार्कण्डेय पुराण" में दुर्गा के कुछ नाम इस प्रकार आये हैं--

पार्वतीजी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवाकौशिकी नाम से प्रसिद्ध हुई। देवी ने शिवजी को दौत्यकर्ममें स्वयं नियुक्त किया इसलिए उन्हें 'शिवदूती' कहा गया। नारायणी, माहेश्वरी और कौमारी नाम भी उन्हें सम्बोधित किया गया है। कात्यायनी नाम तो प्रसिद्ध है ही। भद्रकाली और चंडी के रूप में उनसे भय से रक्षा की प्रार्थना की गई है। देवी ने स्वयं कहा है कि जब दैत्यों को भक्षण करते हुए मेरी दन्तमुक्तावली कुसुम के समान लाल रंग की हो जायेगी तो सर्वत्र 'रक्त-दन्तिका' प्रसिद्ध रहूँगी। 'शताक्षी' नाम का भी स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जब सौ वर्ष तक वर्षा न होने के कारण सूखा पड़ने लगेगी और मैं विना मनुष्य योनि के जन्म लूँगी सो उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे 'शताक्षी' कहकर कीर्तन करेंगे।

कुछ और नामों के सम्बन्ध में देवी कहती है--

अपने शरीर से प्राण को धारण करके शाकों को उत्पन्न करके लोकों का पालन करूँगी। इसलिए 'शाकम्भरी' कहलाऊँगी। दुर्गम दैत्य का वध करने के कारण दुर्गा नाम होगा। भीमरूप ग्रहण करके हिमालय के राक्षसों का वध करूँगी। इसलिए भीमा कहलाऊँगी। अरुणासुर को मारनेके लिए भ्रमर रूप धारण करूँगी, इसलिए भ्रमरी नाम होगा।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस स्तुति में उमा, काली, कपाली, कपिला, कौशिकी, चण्डी, कात्यायनी,भद्रकाली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये हैं। कालीदास ने पार्वती को तीन नामों भवानी, गौरी चण्डी से संबोधित किया है। महाभारत में विन्ध्यवासिनी का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाम आया है। कुमारसम्भव में वे तपस्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती है। अपर्णा, उमा और पार्वती के नाम विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं। याज्ञवल्क्यने अम्बिका को विनायककी माता स्वीकार किया है। भवानी नाम कुमार सम्भव में आया है, जहाँ पर वे शंकर के साथ सम्बन्धित हैं।

दुर्गा नामकरण का उद्देश्य साधुजनों की रक्षा और पापियों का नाश करना है। अत: देवी के युद्धाकालीन रूप का नाम दुर्गा है। वही मूल-शक्ति है जो विभिन्न रूप धारण करती है। युद्ध के समय वह दुर्गा वनती है, क्रोध में वह काली रूप धारण करती है। गृहस्थ में वह भवानी है और पुरुषों में विष्णु उसी का रूप है, तैत्तयीयआरण्यक' में वह सरस्वती से सम्बन्वित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्ध्या, वरदा आदि नाम आये हैं। 'मुण्डकोपनिषद्' में सात जिह्वाओं वाली अग्नि का नाम-करण काली-कराली के रूप में किया गया है। यह नाम दुर्गा के चरित्रगत लक्षण हैं।

महिमा–

'मार्कण्डेय पुराण' में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीत: कस्त्वां स्तोतुमहेश्वर: ॥
विष्णु शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां क: स्तोतु शक्तिमान भवेत् ॥

'विश्य की सृष्टि, रक्षा और नाश करने वाले नारायण हरि को भी जो निद्रा के अधीन लाने की क्षमता रखती है, त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिनकी इच्छा से शरीर धारण करते हैं, उन महान महिमा वाली की स्तुति कौन कर सकता है ?'

इसी प्रकार से ८१ वें अध्याय में फिर कहा है–

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ।

अर्थात्–"वह भगवती देवी ज्ञानियों के चित्तों को भी बलपूर्वक आकर्षित करके महामाया, मोह समुत्पन्न कर देती है। उसी के हाथसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विश्व विसृष्ट होता है अर्थात् विश्व का सृजन होता है। वह देवी प्रसन्न हो जाती है तो मनुष्यों को वरदान देने वाली होती है और मुक्ति प्रदान कर देती है। वह परमविद्या और मुक्ति को हेतु है ! वह सब ईश्वरों की भी स्वामिनी संसार के बन्धकी हेतु भी है।

"भागवत" में दुर्गा पूजा का स्पष्ट आदेश है–

'दुर्गा विनायकं व्यासम्'

अर्थात्–'दुर्गा गणेश और व्यास का भी नाम है।'

स्वरूप–

दुर्गा का स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है–

देवताओं के पूछने पर देवी ने उत्तर दिया कि 'मैं ब्रह्म हूँ। मुझ से ही प्रकृति पुरुषात्मक विश्व की सृष्टि होती है।' स्कन्द पुराण' में देवी को जगत् का अधिष्ठाता स्वीकार किया गया है। 'भावोपनिषद्' में वह ब्रह्मरूपिणी कही गई। अन्य उपनिषदों-त्रिपुर, सापनीय, सुन्दरी में भी यही भाव व्यक्त किये गये हैं। देवी भागवत में सगुण और निर्गुण दोनों रूप दिखाये गये हैं। 'कूर्म-पुराण' में वह अनन्त, अच्युत, निर्विकार और निर्गुण ब्रह्म स्वीकार की गई हैं।

दुर्गातत्व का विश्लेषण इस प्रकार किया है–

ययेदं भ्राम्यते विश्व योगभिर्या विचिन्त्यते ।
यद्भासा भासते विश्वं सैका दुर्गा जगन्ति ।।

'अर्थात् 'जिसके द्वारा यह संसार चक्र चलता रहता है, योगीजन जिसका सदैव चिन्तन करते हैं, जिसके प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित हो रहा है, वही जगत् दुर्गा तत्व है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"नारद पाञ्चरात्र" में 'दुर्गा-तत्व' की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

जानात्येका परा कान्त सैव दुर्गा तदात्मिका ।
या परा परमा शक्तिर्महाविष्णु स्वरूपिणी ।।
यस्या विज्ञामात्रेण पराणां परमात्मन:
मुहूर्त्तादेव देवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा ।।
एकेयं प्रेमसर्वस्वस्वभावा श्री कुलेश्वरी ।
अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वर: ।
अस्या आवारिका शक्तिर्महामायाऽखिलेश्वरी ।।
यया मुग्ध जगत्सर्वं सर्वे देहाभिमानिन: ।

'एक ही पराशक्ति कान्त भगवान् कृष्ण से परिचित है क्योंकि यह उसी का रूप है । वही परा परमशक्ति ही दुर्गा है यह महाविराट का रूप है । इसके ज्ञानमार्ग ने परमात्मा की उपलब्धि होती है यह एकसी प्रेम सर्वस्व के स्वभाव वाली श्री कुलेश्वरी है । इसके माध्यम से आदि देव अखिलेश्वर की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। महामाया अखिलेश्वरी इसकी आवारिका शक्ति हैं । इसने सर्व जगत और उनके समस्त देहाभिमानियों को मुग्ध कर रखा है ।"

सप्तशति-महिमा-

दुर्गा की अपूर्व महिमा का वर्णन 'मार्कण्डेय पुराण' के अन्तर्गत ७३ से ८५ अध्यायमें किया है । इसमें ७०० श्लोक हैं । इसलिए इसका नाम दुर्गा सप्तशती' नाम पड़ा । यह कितने ही स्थानों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ कहा गया है । इस कथा को मनगढ़न्त कहकर बौद्धिक वर्गमें इसकी उपेक्षा' करदी जाती है । परन्तु यदि हम इसका गम्भीरता पूर्वक अनुशीलन करें और इसके पात्रोंका प्रतीकात्मक अध्ययन करें तो प्रतीत होगा कि यह हर व्यक्ति के जीवन की अपनी कहानी है । हर व्यक्ति के जीवनमें कभी ऐसे क्षण आते हैं जब चारों ओर से निराशाओं और विपत्तियों के बादल उमड़ रहे होते हैं परन्तु कुछ भी सूझ नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पड़ता । उस समय यह कथा एक अच्छे निर्देशक और पथ प्रदर्शक का काम करती है । इसलिये कहा गया है कि दुर्गा दुःख व विपत्ति-नाशिनी हैं । लाखों भक्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दुर्गा की आराधना करते हैं । हम कथा का वर्णन करके बौद्धिक स्वरूप का अध्ययन करेंगे ।

सप्तशती कथा–

कथा कुछ नाटकीव ढंग से कही गई है । इसके लिए किसी सुरथ नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उससे राज्य को शत्रुओं ने षड़यन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सब कुछ छोड़कर वन में चला जाना पाड़ा । पर वहाँ भी उसका ध्यान अपने महल, कोशागार, नवर, हाथी, घोड़ों में लगा रहा और वह उनके विषय में चिन्ता करता हुआ दुःखी रहने लगा । वहीं उसकी भेंट समाधि नामक एक वैश्य से हो गई जिसको उसके स्त्री-पुत्र आदि समस्त धन अपहरण करके घर से निकाल दिया था और जो अव वनवासियों के साथ रह कर जीवन निर्वाह कर रहा था । अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा नहीं था और वह घर वालों के हानि-लाभ सुख-दुःख की बात सोचते हुए व्यथित रहा करता था । इन दोनोंने उसी अरण्य में आश्रम बनाकर रहने वाले मेधा ऋपिने अपनी दुर्दशा और मनोन्यता के विषत में प्रश्न किया । ऋषि के उनको मोह-जनित भ्रम का रहस्य समझाया और साथही देवी की महिमा तथा उपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति से छुटकारा पा सकते थे ।

इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत्कर्त्ता भगवान् विष्णु सो रहे थे ओर उनकी नाभि के सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी । उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए ओर ब्रह्माजी को मारने के लिए दौड़े । ब्रह्मा उनका सामना करने में असमर्घ थे, अतः उन्होंने परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुति की । इससे [illegible] होकर देवी [illegible] हुई और उसने विष्णु को जगाकर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मधु और कैटभ के कुकृत्य का उनको ज्ञान करा दिया । विष्णु उन असुरोंसे पांच हजार वर्ष तक युद्ध करते रहे, पर उनका विनाश न कर सके । तब महामाया ने उनको मोहित करके कहलवाया कि 'हे विष्णु हम तुम्हारे साथ युद्धकरके सन्तुष्ट हुएहैं, हमसे कोई वर माँगो ।' विष्णु ने कहा 'तुम मेरे वध्य हो, यही वर मैं माँगता हूँ ।' वचन वद्ध होने से उन्हें वर देना पड़ा और तब विष्णु ने चक्र से उनका मस्तिष्क काट लिया ।

जब देवलोक का अधिपति इन्द्र को बनाया गया तो 'महिष' नाम के असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उनको हराकर देवलोक पर अधिकार कर लिया । इन्द्र और अन्य देव-गण ब्रह्माजी को साथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण में गये और महिषासुर के अत्याचारों की कथा उनको सुनाई । उसे सुनकर वे बड़े क्रोधित हुए और उनके मुखों से निकले हुए तेज से देवी का आविर्भाव हुआ । वह देवी जब युद्धके लिए प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महा शब्दसे तीनों लोक कांपने लगे । उसे सुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजा कर दौड़ा और दोनों पक्षों में घोर संग्राम होने लगा । आरम्भ महिषासुर के चिक्षुर चामर, उदग्र, महामनु, असिलोमा, वाष्कल और विडालाक्ष सेनापतियों से सामना हुआ और एक-एक करके वे सब मारे गये । फिर दुर्घर्ष और दुर्मुख आदि महिषासुर के पराक्रमी सहयोगी रणभूमि में उतरे पर देवी के सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर सके और सेना-सहित मारे गये ।

अपनी सेना और साथियों को इस तरह नष्ट होता देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित होकर सामने आया और अपने समस्त अद्भुत साधनों से भयंकर संग्राम करने लगा । वह कभी महिष, कभी सिंह और कभी हाथी का रूप धारण करके लड़ता था । कभी भूमि पर और कभी आकाश में जाकर शस्त्र-वर्षा करता था । उसके भयकर संग्राम से तीनों लोक क्षुब्ध हो गये । तब देवी अपने सिंह से उतर कर महिषासुर के ऊपर कूद पड़ी और उसे पैर से दबा कर तलवार से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसका मस्तक काट डाला। उसका वध होते ही सर्वत्र हर्ष की लहर दौड़ गई और समस्त देवता देवी का जयजयकार करने लगे। इस अवसर पर देवगणों ने देवी की जो स्तुति की, वह बड़ी अर्थपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि 'देवी ने अपनी शक्ति का समस्त विश्वमें विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसके रहस्य को ज्ञात नहीं कर सकते। वही जगत् का कारण, अव्याकृता प्रकृति, देवताओं, पितरों की स्वाहा और स्वधा तथा मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष प्रदान करने वाली पराविद्या है। देवी ही तीनों वेदों की शब्दमयी मूर्ति, सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करने वाली, समस्त शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती व संकट से उद्धार करने वाली दुर्गा, विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और शिव के सिर के ऊपर विराजने वाली गौरी है। उसकी शक्ति वल अपार है।

तीसरी बार जब शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने देवताओं को हटाकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण में पहुँचे। उस समय पार्वती की देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओं की रक्षा के लिए असुरों से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुपम सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेज कर अपना प्रणय-सन्देह कहलवाया। पर देवी ने उत्तर दिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा वही मेरा भर्त्ता हो सकेगा।" इस पर शुम्भ ने क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन को एक बड़ी सेनाके साथ देवी को पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। इस आसुरी सेना के साथ देवी का विकट संग्राम हुआ और अन्त में सब असुर मारे गये। फिर चण्ड-मुण्ड नामक महावीर असुर लड़ने को आये पर वे भी काली द्वारा मार डाले गये, जिससे काली का नाम 'चामुण्डा' पड़ गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रणभूमि में आया। इसमें यह विशेषता थी कि उसके रक्त की जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरती थीं उतनें ही नये असुर और पैदा हो जाते थे और उसका नाश असम्भव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीत होता था। तव देवी ने काली से कहा–कि जब में रक्तबीज पर अस्त्र से प्रहार करूँ तो तुम उसके रक्त को पी जाना, एक भी बूँदको पृथ्वी पर मत आने देना। काली ने ऐसा ही किया और तब उस महा असुर का वध किया जा सका।

रक्तबीज के मारे जाने पर स्वयं शुम्भ और निशुम्भ सम्पूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। पहले निशुम्भ का देवी के साथ घोर संग्राम हुआ और वह मारा गया। फिर शुम्भ सामने आया और उसने देवी की सहायक सप्तमातृका, शक्तियों, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री की ओर सकेत करके कहा–– "तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूँठ-मूँठ अभिमान करती हो।" इस पर देवी ने सातों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि "ये सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ हैं जो मेरी इच्छा से प्रकट होती रहतीं हैं। अब देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।' इसके पश्चात् असुर सेना से देवी का सबसे बड़ा संग्राम हुआ और शुम्भ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरों का पूर्णतया वध कर दिया गया। इस महान् विजय के पश्चात् देवताओं ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की, उसमें उनको ही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओं ने कहा––

"महामाया ही विपत्ति में पड़े जनों का कष्ट दूर करती हैं। वही जगत्की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विचार और समस्त देवी शक्तियां उन्हीं के रूप हैं। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार उनकी इच्छा से होता है।"

स्तुति से प्रसन्न होकर देवीने देवताओं को वरदान देते हुए आश्वासन दिया कि–'पृथ्वी पर जब-जब असुरों का उत्पात बढ़ेगा मैं विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।"

'दुर्गा सप्तशती' का यह उपाख्यान 'मार्कण्डेय पुराण' का एक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंश है और नव रात्रियों के अवसर पर लाखों

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते हैं। एक धार्मिक कथाके रूप में निस्सन्देह यह रचना बड़ी प्रभावशाली और रोचक है। इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षाप्रद है।

कथा का आधिभौत्रिक अर्थ–

आधिभौतिक रूप में तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि संसार में दैवी शक्तियों के साथ आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा संघर्ष सदैव होता है। असुर या दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमणकारी और धूर्त होते हैं और इस कारण प्राय: आरम्भ में देवशक्तियों को दबा लेते हैं, उनको पीड़ित करते हैं। पर जब कष्ट मिलने से देवगण सावधान होते हैं, अपनी शक्तियों को एकत्रित और संगठित करते हैं। अहंकार, स्वार्थपरता, दूसरों के उत्पीड़न की भावना पर आधारित होता है जब कि देवताओं (सज्जनों) के संगठन में त्याग, तपस्या, परोपकार, विश्वकल्याण जैसी उच्च भावनायें भी निहित रहती है। इसलिए संघर्ष में असुरगण चाहे जैसी माया, छल बल से काम लें, अन्त में उन्हें परास्त होना ही पड़ता है।

कथा का आधिदैविक अर्थ–

आधिदैविक दृष्टि से 'दुर्गा सप्तशती' की कथा का आशय सृष्टि के विकास के आरम्भ परिवर्तनों से है। जैसा हमें मालुम है हमारी जानी हुई चराचर सृष्टि का मूल आधार सूर्य है। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवों की उत्पत्ति और वृद्धि हो सकी है पर सृष्टि ने आरम्भ में जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब बहुत समय तक तम का आवरण इसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने में बाधक होती है, उसे सृष्टि विज्ञान के ज्ञाता ऋषियों ने 'असुर' के नाम से पुकारा है। प्रकाश की तरह प्राण-तत्व या [illegible]

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि उसी से प्राणी-जगत् का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्यके तेज का परिपारक नहीं होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्य-शील नहीं होती तब तक की तम के आवरण-युक्त अवस्था को 'वृत्र' अथवा 'महिषासुर' की आधिपत्य कहा जाता है। जब सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सौर तेज सर्वत्र व्याप्त होकर सृष्टि-रचना के कार्य को अग्रसर करते हैं तो वही वृत्र या महिष का वध हो जाता है। यह कार्य देव-भाव की शक्ति का संग्रह होने से ही होता है, इसलिए उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि-विकास और रचना के परिवर्तन करोड़ों वर्षों में होते हैं। अतएव 'देवासुर-संग्राम' उतने समय तक चलता ही रहता है। यह सब वर्णन वेदोंमें स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारोंने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा में लिख दिया है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान ने देवासुर संग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है--

"देवों के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्राण से है। सूर्य में जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना (निन्द्रा) नहीं है। आसुरी भाव परिधि पर आक्रमण करते हैं पर सूर्य-मण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। केन्द्र पर देवताओं का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नहीं पहुँच पाये। इसीलिए 'शतपथ-ब्राह्मण' में इन्द्र के देवासुर संग्राम को बनावटी कहा है—

ना त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न
तेऽमित्रोंमघवन् कश्चनास्ति ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहु
नाद्य शत्रुर्न नाद्य शद् ननु पुरायुयुत्सुः ॥

अर्थात्--'हे इन्द्र ! तुम कभी लड़े नहीं, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धों का सब वर्णन माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा शत्रु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेदों में इन्द्र और वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्र के मारने से इन्द्र 'असपत्न' (विना शत्रु के)हो गया। वही भाषा मार्कण्डेय पुराण में महिषासुर के लिए प्रयुक्त की गई है--'इन्द्रोऽभून्महिषासुरः'(७५-२) महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासनसे पदच्युत कर दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। पुनः इन्द्र (सूर्य मण्डल का अधिष्ठातृ देवता) देव-भाव की बुद्धि से या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है,जो अपने तम से सौर तेज को ढक देता है, वही 'वृत्र' या 'महिष' है। सृष्टि काल के हिसाबसे तेज मेष्ठी को सूर्य भाव आने के लिए समय लगा होगा। सूर्य के जन्म से लेकर उनके तेज तक पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा। अंत में जब इन्द्र पुनःप्रबल हुए तब वही महिष-वध हुआ'।

कथा के आध्यात्मिक अर्थ—

आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ मनुष्य के भीतर होने वाली सद् और असद् वृत्तियों के संघर्ष और मानसिक हलचल से है। भौतिक लाभ और सुखों को प्रधानता देना और उनके लिए अनुचित ढगों को अपनाना बहुसंख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी यह धारणा होतीहै कि हम अपने अन्तकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त कर लेंगे, और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, वही सार है, क्योंकि देहत्याग के बाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो? इस प्रकारके निकृष्ट विचार मनुष्य में स्वार्थपरता के भावों को भड़काते हैं जिससे यह अन्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने में संकोच नहीं करता।

यह एक प्रकार का तामसी अहंभाव होता है जिससे मनुष्य के अन्तर से सद्विचार क्षीणहो जाते हैं और वह समाज या संसार के लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वंसकारी शत्रुका रूप धारण कर लेता है। ऐसे तामसी और स्वार्थान्धता के विचारों का नाम ही महिषासुर है जो आत्मा की सद्वृतियों को दबा कर दूषित भावनाओं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर देता है। इस दूषित अहंभाव से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को वड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़ती है। उसके लिए समस्त देव शक्तियों-श्रेष्ठ मनोंवृत्तियों को आग्रत करके एक लक्ष्य पर एकत्रित करना पड़ता है। तव वह शक्तिरूपा देवी एक-एक करके दुर्विचारों की सेना का संहार करती है। अन्त में दूषित अहंभाव विभिन्न रूपों में उसके सामने आताहै पर सद्विचारों की पैनी तलवारसे उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल ने कथा का आध्यात्मिक स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है–

"समस्त कार्यप्रपधच के परम कारण में लय होने का नाम है जगत् का एकार्णवीभाव। विष्णु शब्द का अर्थ है व्यापक चैतन्य। शेष शब्द का अर्थ है विनश्वर श्रेणी का होते हुए भी एवं महाविनाश की सामग्री का सन्तिपात होने पर भी बच जाने वाला पदाथ, वह है अगत् का बीजभूत कर्म तथा ज्ञान जनित जीव का संस्कार। उस जगत्-बीज संस्काररूप शेषशय्या पर हर व्यापक चैतन्यरूप विष्णुका निष्क्रिय अर्थात् जगत् के व्यापार से हीन होकर अवस्थित रहने का नामहै विष्णु की निद्रा। व्यापक चैतन्याकाश ही विष्णु-कण है। चैतन्य का त्रिगुणात्मक अविद्यारूप आवरण ही विष्णु-कर्ण का मल है। इस मलसे अद्भुत होने वाला और अहम्बोध वहुभवन की इच्छा ही मधु, कैटभ नाम के असुर हैं इनके द्वारा मन का संसारोन्मुख वनाने का उपक्रम ही ब्रह्मा को मारने लिये मधु कैटभ का उद्यत होना है। इस संकट की स्थिति में मन-रूप ब्रह्मा चिन्मयी महामाया की जब पुकार करता है तब वे प्रसन्न हो चैतन्यात्मक विष्णु की आवरण रूप निद्रा को भंग कर देती है। फिर अनावृत चैतन्य रूप प्रबुद्ध विष्णु अहंबोध तथा बहुभवनाभिलाष-रूप, मधु कैटभ का वध करते हैं और तब मन का मार्ग निष्कण्टक हो जाताहै। वह संसारोन्मुखता को त्याग अध्यात्मके उन्मुख हो अपनी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवी-चरित्र की बौद्धिक व्याख्या–

इसकी व्याख्या और ढंग से भी की जा सकती है। मधु और कैटभ राग और द्वेष के प्रतीक है। यह निद्रित अवस्था में पड़े विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न होते हैं। जीव को ही विष्णु समझना चाहिए और जिस शेष पर वह सोए हैं, वह उसके शुभाशुभ कर्म है। जब जीव को विवेक नहीं होता तो वह जगत और उसकी वस्तुओंमें आसक्त हो जाता है। इसी मोह निद्राको विष्णु का शयन और निद्रा की संज्ञा दी है। मधु और कैटभ ब्रह्मा को मारने के लिए दौड़ते हैं। ब्रह्मा मन का द्योतक है। राग और द्वेषमन को दूषित करने का प्रयत्न करतेहैं। ब्रह्मा भगवती की शरण जाते हैं तो वह विष्णु को निद्रा से उठाते हैं और विष्णु दैत्यों से युद्ध करते हैं और उन्हें परास्त करते हैं। देवी बुद्धि का रूप है। मन यदि बुद्धि का सहारा ले तो जीव को मोहनिद्रा से जगा सकताहै। तव जीवन अकल्याणकारी आसुरी शक्तियों से संघर्ष करके उनका दमन कर सकता है बुद्धि से विवेक जाग्रत होता है। विवेक के सामने राग द्वेष रूपी असुर ठहर नहीं सकते। हर जीव पर मधु कैटभ का आक्रमण होता है। कथा कहती है कि हमें इनका सामना करने के लिए दुर्गा–बुद्धि का सहारा लेना होगा अन्यथा उनसे प्रभावित होकर हम इन्हीं का रूप हो जायेंगे और फिर दैत्य संज्ञा से उठकर देवत्व का विकास एक विकट समस्या हो जायगी। अत: मधु-कैटभ के वध के लिए दुर्गा का आविर्भाव अवश्यम्भावी है।

'सप्तशती' के ५ से १० अध्याय तक शुम्भ और निशुम्भ से देवी के संघर्ष और परिणाम स्वरूप इन असुरों के वध का वर्णन है। इस प्रतीकात्मक कथा ना स्पष्टीकरण इस प्रकार है––

शुभ अहंकार का और निशुम्भ अभिमान का द्योतक है। सांसारिक वैभव और सम्मान से अहकार की उत्पत्ति होती है। जब अहंकार का साम्राज्य होता है तो बुद्धि पर अन्धकार छा जाता है। वह वास्तविकता को भूल जाता है, शारीरिक शक्तियों को ही सर्वस्व

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माननें लगताहै। निरन्तर नाश होना ही जिसका स्वभावहै, जिस मानसिक बुद्धि के आश्रित अहंकार का पोषण होता है उसी के सहयोग से ममत्वाभिमान का विकास होता है। तभी यह दोनों भाई कहे गये हैं। आत्म-परायण बुद्धि की प्रतीक देवी है उसके क्षेत्रमें शुम्भ और निशुम्भ रूपी अहंकार और ममकार का पनपना सम्भव नहीं है। यह दोनों आध्यात्मिक रोग बुद्धि को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। वह कीटाणु रूपी अपनी सेना भेजते हैं। देवी उनका विनाश करती है। तव "धूम्रलोचन" को आदेश मिलता है कि वह देवीको परास्त करके पकड़ लावे। यह धूम्रलोचन लोभ है। विवेकरूप लोचन पर यह धुँए का-सा काम करता है इसलिए इसकी संज्ञा "धूम्रलोचन" है। लोभ हर प्रकार के अनैतिक उपायोंसे भौतिक जीवनमें विकास का प्रयत्न करता है अत: वह सात्विक बुद्धि पर घात-प्रतिघात करता है। बिरले वीर ही इसके अचूक निशान से बच पाते हैं। यह मानव को कुपथगामी बनाता है। जो इसके आधिपत्य में आ जाता है उसका जीवन, सुख, शांति नष्ट हो जाती है। परन्तु जिसके पास विवेक की शक्तिहै उसका धूम्रलोचन कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस धूम्रलोचन का आक्रमण हरमानव पर होताहै और अधिकांश इसके चंगुल में फँसे हुए हैं। आत्म कल्याण के पथ का अधिकारी वही हो सकताहै जो इसके आक्रमण को निष्फल करके अपने बुद्धि तत्व को पवित्र रखता है।

धूम्रलोचन के वध से शान्ति नहीं मिलती। अभी अन्य सेनापतियों से भी उलझना पड़ेगा। चण्ड और मुण्ड भी शक्तिशाली शत्रु हैं। इनका आशय काम और क्रोध से है। जिस तरह से एक डायन बच्चों का खून पीती है, उसी तरह से यह काम हमारे जीवन-रस का प्यासा रहता है और हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों को खोखला बना देता है। जहाँ अहंकार है, वहाँ क्रोध का होना स्वाभाविक है। क्रोध से नसें तमतमाती हैं। यह शक्ति के ह्रास का चिन्ह है। क्रोध में अन्धा होकर मानव सभी प्रकार के अनुचित कार्य कर बैठता है। यह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रबल मानसिक शत्रु माने जाते हैं। इनकी पराजयके विना आत्मविकास में बाधा पड़ती है । इनको नियन्त्रण में रखना आवश्यक है । जब यह देवी से युद्ध करते हैं । तो वह अपनी चमकती तलवार से इसके सर काट लेती है । आत्मपरायण बुद्धि तीक्ष्ण तलवार का रूप है जो अपने राज्य में घुसे आसुरी तत्वों का सर काटती रहती है ।

चण्ड-मुण्ड के बाद देवी का युद्ध रक्त-बीज के साथ हुआ । इससे देवी को बड़ी सावधानी बरतनी पड़ी क्योंकि रक्त बीज का यह गुण था कि उसकी जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरेंगी,तत्क्षण उतनेही राक्षस उत्पन्न हो जायेंगे । इसलिए यह अत्यन्त दुर्जेय शत्रु था । इस कार्य के लिए देवी ने काली की सहायता ली । देवी के शस्त्र प्रहार करने पर जो रक्त धारा वही उसे उसी समय पी जाने का कार्य काली को दिया गया ताकि एक भी बूँद रक्त भूमि पर न गिरे ।

रक्त-बीज से अभिप्राय विषय लोलुपता से है । विषयों का जितना उपयोग किया जाता है उतनी ही उनके प्रति लिप्सा बढ़ती ही रहती है, वही एक बूँद गिरने से एक राक्षस की उत्पत्ति का अर्थ है । रक्त-बीज का वध एक गम्भीर समस्याहै क्योंकि शरीर का अस्तित्व ही इसी के सहारे स्थिर रह पाता है। इन्द्रियाँ भगवान ने उपभोग के लिए बनाई हैं, इनके उपयोग को बन्द नहीं किया जा सकता । फिर तो जीवन संकट में आ जायेगा और आत्म कल्याण की सभी योजनाएँ ध्वस्त हो जायेंगी इसके लिए तो ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे विषयों का उपयोगभी होता रहे और लोलुपता न बढ़े । इस सिद्धान्त को अध्यात्म में भोग में त्याग की संज्ञा दी गई है । भोग करना तो चाहिए परन्तु त्याग भावना से । भोग के प्रति आसक्ति बुद्धि ही दूषित है । भोग तो आवश्यक है और इसके लिए काली तत्व का विकास करना होगा । काली विषय में असौन्दर्य, हीनत्व और अप्रियत्व का प्रतीक है । विषयासक्ति को पीती रहती है । इसी योजना से नित्यव्यवहार में भोग वाले रक्तबीज का वध भी सम्भव है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रक्तबीज का वध होने पर निशुम्भ सामने आता है। निशुम्भ ममता की मूर्ति है। यदि ममता को वृक्ष मानें तो 'मैं' को उसका अंकुर और 'मेरा' को उसका तना मानना होगा। धन सम्पत्ति पत्ते, पुत्रादि पल्लव, पुण्य पाप फूल, सुख-दुःख फल, इच्छाएँ-भ्रमर, चित्त-भूमि है। ममता के वशीभूत होकर अनुचित कार्यों के करने की प्रेरणा मिलती है। ममता से आसक्ति बढ़ती है और आसक्ति पापों की जड़ है। पाप पतन की राहें बनाते हैं। अतः पतन की राहों से बचने के लिए आवश्यक है कि ममत्व से बचें। इससे दूर रहना ही निशुम्भ है।

निशुम्भ का भी वध होने पर अन्त में शुम्भ (अहंकार) स्वयं युद्ध-स्थल पर उतारता है और विविध रूपों में उपस्थित होकर देवी पर आक्रमण करता है परन्तु आत्मपरायण बुद्धि पर अहंकारका क्या प्रभाव पड़ सकता है? क्योंकि उसका आलम्बन विकृति है। शुम्भ शरीर भावना पर खड़ा है, वही उसका वाहन है, दुर्गुण और दुर्विचार उसके अस्त्र-शस्त्र हैं। देवी का–आत्म परायण बुद्धि का आलम्बन–वाहन सिंह है–– पशुपति है, पशुओं का राजा है–परमात्मा है। उसके अस्त्र-शस्त्र–सद्-गुण और सद्विचार हैं यह देवासुरसंग्राम हर युग में, हर काल में, और हर मानव के मन में होता रहता है। असुर–शक्तियाँ शत्रु हैं परन्तु अन्त में देवत्व की विजय होती है शर्त यह है कि बुद्धि में आत्म परायणता लाई जाए। यही "दुर्गा सप्तशती" की कथा का सारांश है

भ्रान्तियों का निवारण–

दुर्गा के अनेक विशेषण हैं। उनमें एक दिगम्बरी' भी है। ईश्वर सर्वव्यापक है, अतःसभी दिशाओं में उनका निवास है। ये दिशाएँ उनके वस्त्र कहे जाते हैं। दुर्गा में भी अभिमान का अभाव है जो सप्तशतीकी कथा से स्पष्ट है। अहंकार रूपी शुम्भ ने जब सर उठाया, उन्होंने उसका सर काट दिया। अतः दुर्गा में शक्ति तत्व होने में क्या सन्देह हो सकता है? जड़ और चेतन सभी में इसका निवास है। कोई दिशा एसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं है जिधर इनका प्रभाव न हो। दिशाओं को वस्त्रों के आलंकारिक रूप में वर्णन करने के कारण दुर्गा को दिगम्बरी कहा जाता है।

दुर्गा के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्तियों फैली हुई हैं। उनमें एक यह भी है कि वह युद्ध-क्षेत्र में मद्य का पान करती थीं। ऐसा 'मार्कण्डेय पुराण' में उल्लेख है। यहाँ मद्य से अभिप्राय अहंकार से है। अभिमान शून्य होकर ही उन्होंने असुरों से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। 'योग वाशिष्ठ' की कथा में एक शक्तिशाली दैत्य का वर्णन है जो देवताओं के लिए अजेय हो गया था। उसकी यह विशेषता थी कि युद्ध करते समय उसे यह भान ही नहीं होता था कि वह लड़ रहा है। ब्रह्मा ने देवताओंको परामर्श दिया कि उसे यह अनुभव करा दो कि वह देवताओं से लड़ रहा है और उन्हें मार काट रहा है तो उसके मन में अभिमान जाग्रत होगा इसी से उसकी शक्ति का ह्रास होना शुरू होगा और देवताओं की विजय के चिन्ह दिखाई देने लगेगे। देवताओं ने इसी उपाय को अपनाकर असुरों को परास्त किया। अभिमान से शक्ति क्षीण होती है और इसका जितना अभाव होता है, उतना ही शक्ति का विकास होता है। शुम्भ रूपी अहंकार ने सर उठाया परन्तु वह युद्ध क्षेत्र में दुर्गा के समय धराशायी हो गया। दुर्गा के मद्यपान का अर्थ उनकी अहंकार-शून्यता ही हैं।

दुर्गा का निवास श्मशान कहा जाता है। जब शिव वहाँ रहते हैं तो उनकी पत्नी का वहीं निवास स्वाभाविक है। यहाँ श्मशान से अभिप्राव प्रलयकाल से है जब सारे ब्रह्माण्ड की यही दशा होती हैं, जहाँ चारों ओर जीवोके रुण्ड-मुण्ड ही दृष्टिगोचार होते हैं। प्रलयकाल में केवल शिव और पार्वती (दुर्गा) ही रह जाते हैं। ब्रह्माण्ड की इस स्थिति में उनकी सत्ता को सिद्ध करने के लिए ही उन्हें श्मशान वासी और रुण्डमुण्ड धारी कहा गया है।

उनके हाथों में त्रिशूल त्रितापों को दूर करने की सूचना देता है।

दुर्गाकथा सुन अद्वैत-तत्व का बोध होता है क्योंकि जब शुम्भ कहता है कि तुम तो अन्य देवियों के सहयोग से युद्ध कर रही हो तो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देखते ही देखते दुर्गा के शरीर में भी ब्रह्माणी, इन्द्राणी, वैष्णवी आदि देवियाँ समा गईं । तब दुर्गा ने कहा–

एकैवाहं जगत्यजं द्वितीया का समापरा ।

'इस जगत में, मैं अकेलीहूँ । मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है ।'

दुर्गा के चरित्र से यह प्रेरणा मिलती है कि पापी के पाप से घृणा करनी चाहिए न कि उसके व्यक्तित्व से। जब महिषासुर वध हो चुका तो देवताओं ने कहा कि इसे तो आप वैसेभी भस्म केर सकती थीं । इस पर अस्त्र क्यों चलाया ? इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों में यों है कि यदि यह बिना युद्ध करते मरते तो नरक में जाते । अब यह वीर गति को प्राप्त करके स्वर्ग जायेंगे । आपका उद्देश्य तो यह था कि इसके नाश से विश्व का कल्याण हो और साथ ही साथ इनका भी कल्याण हो ।

शक्ति की प्रतिमा–

दुर्गा की उपासना में शक्ति की प्रधानता है । देवताओं की शक्तिसे उनका जन्म हुआ है । महिषासुर का वध करके शक्ति का ही उन्होंने प्रदर्शन किया । वह शक्ति की प्रतिमा हैं । शक्ति उपार्जन के लिए ही दुर्गा की उपासना की जाती है । बल की तो वह प्रतीक मानी जाती है ।

दुर्गा की नस-नस में शक्ति के खजाने हैं उसका अङ्ग-अङ्ग शक्ति से भड़कता है । उसके रक्त में शक्ति उछलती है, उसके मुख पर शक्ति चमकती है, उसके शरीर पर शक्ति का लेप है । उसके प्राणों में शक्तिके बीजों के भण्डार है । उसका सारा संसार ही शक्तिमय है । उसकी रचना शक्ति से हुई । इसलिए उसका शक्ति-पुञ्ज बनना स्वाभाविक ही था वह अपने शक्ति के सूक्ष्म भण्डारों में से जितना भी बाँटती रहती है, वह उतना उढ़ता है ।

दुर्गा की अलंकारिक रचना हमारे ऋषियोंके बुद्धिकौशल का श्रेष्ठ नमूना है, उनकी कल्पना शक्ति की महान कलाकृति है, जीवनके उच्च-तम उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए साधन का संकेत कियाहै, भव-रोग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की रामबाण दवा का आविर्भाव कर दिया है, लोकिक या पारलौकिक अभिवृद्धि के शास्त्रों का निचोड़ एक प्रतिमा मैं गठित कर दिया है।

संसारमें जहाँ भी प्रगति के चिन्ह दिखाई देते हैं,वहाँ दुर्गाकी छाप समझनी चाहिए, क्योंकि दुर्गा अर्थात् शक्ति के प्रकाश हुए बिना एक भी चलना असम्भव जान पड़ता है। आधुनिक विज्ञान के विकसित होने का श्रेय दुर्गा की बुद्धि शक्तिको ही है। यही कारण है कि भारत में कोई स्थान न होगा जहाँ दुर्गाकी पूजा उपासना न होती हो। भक्तों को विश्वास है कि वह सिद्धि-दाता है और उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है। विस्वास के आधार पर जब कभी उनकी इच्छा पूरी हो जाती है तो उनका विश्वास अडिग हो जाता है। इस मार्गका अवलम्बत केवल उत्र मात्र है। दुर्गा तो शक्ति की प्रतिमा है। वह अपने सुख सौभाग्यके लिए शक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा मात्र देतीहैं। उसकी पूजा करते हुए अपने अन्दर शक्ति के संचार की भावना करनी चाहिए। जिस क्षेत्र में हम सिद्धि चाहते हैं, उसमें अपनी शक्तियों को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए उसके उपायों पर विचार करना चाहिए, उन विचारों को कार्यान्वित करने के आधारों को अपनाना चाहिए उजमें एकाग्रता-पूर्वक दिन रात एक करके तप परिश्रम करना चाहिए। तभी दुर्गा भवानी प्रसन्न होकर वरदान देती है। वह वरदान ही साधक की सफलता का कारण बनता है दुर्गा की इस प्रकार से की गई उपासना ही साधक का उचित मार्ग दर्शन करती है।

आठ भुजायें-आठ शक्तियों के प्रतीक

आठ भुजाएँ आठ महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन शक्तियों के विकासके अभाव में मनुष्यकी सांसारिक व पारलौकिक प्रगति रुकी रहती है। इसलिए जिसे अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति करनीहो, उसे दुर्गा के चित्र में प्रदर्शित आठ भुजाओं के प्रतीत आठ बलोंकी वृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि क्रियात्मक कदम न उठाकर हमसभी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ दुर्गा से माँगते रहेंगे तो हमें निराशा ही होगी। वह आठ शक्तियाँ इस प्रकार हैं--

१--स्वास्थ्य

हर क्षेत्र में प्रगति का यही आधार है। इसको प्राप्त किए बिना उन्नति असम्भव है। स्वस्थ मनुष्य में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है। अच्छे मस्तिष्क से ही कल्याणकारी योजनाओं का जन्म होता है, विचार व विवेक शक्ति का उदय होता है। सुख व शान्ति का उद्गम यही है। अस्वस्थ व्यक्ति तो परिवार व समाज पर एक बोझ होता है। स्वस्थ व्यक्ति हजारों के दुखोंका दूर करने की क्षमता रखता है। परिवार का पालन-पोषण-धनोपार्जन-सामाजिक कार्यों में योगदान तभी दिया जा सकता है जब मनुष्य शारीरिक व मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ हो। स्वस्थता प्राप्त करने के लिए उसके मूल सिद्धान्तोंपर ध्यान देकर उन्हें क्रियात्मक रूपसे अपने जीवन में व्यवहार में लाना होगा। उसकी जानकारी तो हर व्यक्ति को है परन्तु बहुत कम लोग उन्हें अपना पाते हैं। रात्रि को जल्दी सोना और प्रातःकाल जल्दी उठना-शरीर को रगड़-रगड़ कर स्नान करना-तेल की मालिश करना-सूर्य स्नान-सूर्य नमस्कार-आसन प्राणायाम-दण्ड बैठक-घूमना दौड़ना आदि व्यायाम-जल्दी पचने वाले सात्विक आहार को ही ग्रहण करना-उसे इतना चबाना कि उसकी सारी लार ही बन जाये-विटामिन युक्त फलों का सेवन--बीड़ी-सिगरेट-शराब-माँस आदि व्यसनों का त्याग-अश्लील फिल्मों और साहित्य से बचना-वीर्य रक्षा-ईमानदारी से धनोपार्जन करना-मानसिक सन्तुलन बनाये रखना-चटोरेहन-कृत्रिमता और आडम्बर से दूर रहना-ये कुछ ऐसे सूत्र हैं-जिनके व्यवहार में लाने से ही एक स्वस्थ मनुष्य का ढांचा बनता है। तभी दुर्गा की एक भुजा का अनुग्रह प्राप्त होता है।

२--विद्या

इसके दो पक्ष हैं। एक शिक्षा, दूसरी विद्या। शिक्षा में सभी प्रकार की सांसरिक जानकारी जिसे भूगोल-खगोल-साहित्य- चिकित्सा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गणित-इतिहास-कला-सङ्गीत-शिल्प-विज्ञान-राजनीति-न्याय-भाषा आदि आते हैं। विद्या का अर्थ जीवन निर्माण से हैं। सत्य-प्रेम-दया-न्याय-सेवा-परमार्थ-कर्त्तव्य-परायणता-ईमानदारी-संयम-पुण्य-त्याग आदि शुभ-वृत्तियाँ विद्या के अन्तर्गत आती हैं। शिक्षा सांसारिक जीवन के उत्कर्ष में सहायक होती हैं। विद्या आत्मिक उत्थान का सम्बल है। ज्ञान-वर्द्धन, जीविकोपार्जन के लिए उत्तम शिक्षा आवश्यक है परन्तु विद्या की प्राप्ति के विना मनुष्य में मनुष्यता के अनुरूप गुणों को ग्रहण करना असम्भव है। विद्या साधक के जीवन निर्माण की आधार शिला है। इस पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए तभी दुर्गा अपना दूसरा हाथ उठाकर प्रसन्न-मुख से आशीर्वाद देती है।

३—धन

परिवार के सञ्चालन-शिक्षा-प्राप्ति सामाजिक कार्यों में योगदान देने के लिए धन आवश्यक है। इसके विना संसार का कोई भी कार्य भली प्रकार सम्पादन नहीं होता। परन्तु परिश्रम और ईमानदारी से धन कमाना ही समाज में व्यवस्था वनाये रखने का आदर्श सामन है। इसलिए लोभवश होकर वेईमानी-ठगी-जेब कतरी-धोखा-फरेब-चालाकी-मिलावट आदि के माध्यम से धन कमाना कुछ एक साधन है जिसमें समाज में भिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जिस समाज में ऐसी प्रवृतियाँ उत्पन्न हो जाती है, वहाँ धनकी वर्षा होते हुए भी दुःख कलह-लड़ाई-झगड़े-ईर्ष्या-द्वेष-चोरी-लूट-हत्या आदि के काण्ड सर्वत्र देखने को मिलते हैं। जो समाज धन को अपने शरीर-रक्षा का साधन न मानकर सर्वस्व मानकर चलता है और उसके उपार्जन में विचार विवेक और सद्बुद्धि का उपयोग नहीं करता-वह समाज दिन-दिन गिरता ही जाएगा। इसलिए दुर्गा का आदेश है कि धन को ईमानदारी से कमाओ। वेईमानी के अन्न के दाने को भी अपने घर में प्रवेश मत होने दो। [illegible] अपनाते हैं [illegible] का।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्न खाना छोड़ दो। सात्विक साधकों से धन कमाओ और उसका उत्तम कार्यों में प्रयोग करना सीखो।

४—व्यवस्था

प्रत्येक कार्यकी सफलता में व्यवस्था का होना आवश्यक है। बड़े बड़े आर्य अव्यवस्थाके कारण असफल होते देखे गयेहैं। सीमित साधनों से छोटे कार्य भी बड़े हो जाते हैं। एक उत्तम व्यवस्थापक में पाँचगुणों का समावेश होना चाहिए (अ) उसमें दूसरों पर प्रभाव डालने की क्षमता होनी चाहिए। (ब) उपयोगी व्यक्तियों को थपथपाते रहना और निरन्तर उनका सहयोग प्राप्त करते रहना। (स) समस्त कार्योंको योजना-बद्ध करना। (य) कार्य-प्रणाली में नियमितता को उच्च स्थान देना। (र) मार्ग की रुकावटोंको दूर करते रहना। मीठा बोलना और अच्छा व्यवहार करना, दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इसलिए लौकिक व पारलौकिक सभी कार्यों में व्यवस्था की शक्ति का विकास व उपभोग करना चाहिए।

५—संगठन

शास्त्रों ने 'संघे शक्ति कलोयुगे' के सूत्रका उद्घोष किया है। सृष्टि की रचना इसी शक्ति पर आधारित है। शरीर का संचालन इसी के सहारे चल रहा है। परिवारकी सुख-शान्ति इसी पर अवलम्बित रहती है। समाज का विकास इसी पर निर्भर करता है। राष्ट्र की एकताका सम्बल यही है। यह समस्त प्रकारकी शक्तियों के विकास का मूलाधार है। इसलिए धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय संगठन बनाने चाहिए। तभी दुर्गा की प्रसन्नता प्राप्त होगी।

६—यश

त्याग-सेवा-परमार्थ-नि:स्वार्थता से समाज-कल्याण की योजनाओं में योग देना ही यश प्राप्त करने का उपाय है। यह शरीर तो अस्थाई है परन्तु आदर्श कार्यों की स्मृति समाज के हृदय पर युगों तक बनी रहती है। इसलिए दुर्गा अपने उपासक को सावधान करती है कि उसे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे अपयश के कलंक का टीका उसके माथे पर लग जाये जो धोये न धुले ।

७–शौर्य

शौर्य का अर्थ है–साहस-बहादुरी-निर्भीकता-कायर और डरपोक होना निर्बलता के चिन्ह हैं ऐसे व्यक्ति हर समय भाग्य का रोना रोते रहते हैं । थोड़ी-सी कठिनाई व विपत्ति आने पर उनका दम निकलने लगता है । साहसी व्यक्ति निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं । विपत्तियों के पहाड़ उनके कन्धों पर रख दिये जाते हैं- परन्तु वह हँसते-हँसते उन्हें इधर-उधर फँकते हुए इठलाते हुए आगे बढ़ते जाते हैं । साहस पहाड़ों को चीरता है, समुद्रों को पार करता है, आकाश की गहराइयों को नापता है । साहस के विना सफलता असम्भव है ।

८–सत्य

सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है । सत्य को अपनाना ईश्वर की समस्त शक्तियों का आंह्वान है । सत्य से विचलित होना ईश्वर का खुला विरोध है । सत्य का पक्ष लेना ईश्वर का सहयोग प्राप्त करना है । सत्य विचार व सत्य व्यवहार शक्ति के खजानों के खुले द्वार हैं । जिनके शरीर पर यह आवरण चढ़े हैं । वह निश्चयरूप से शक्तिवान हैं । लौकिक व पारलौकिक सिद्धियाँ बिना बुलाये उनके पास आती हैं । वह ससार की सभी शक्तियों का सिरमौर है । दुर्गा की प्रेरणा है कि मेरे उपासक की नस-नस में इस शक्ति की ध्वनि सुनाई देती हो–उसके रक्त के प्रवाह में इसी का जाप होता है–उसकी माँस-पेशियों में वही शब्द खुदा हो–उसके मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु इसी से निर्मित हों–उसके पग-पग में इसी की छाप पृथ्वी पर पड़ती हो ।

जो साधक उपरोक्त आठ शक्तियों को विकसित करने का प्रयत्न करता है–दुर्गा की आठ भुजायें एक साथ उठकर प्रसन्न मुद्रा में उसे सफलता का आशीर्वाद देती हैं ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिकार–

दुर्गा ने एक महान् सांस्कृतिक यज्ञ का सम्पादन किया है। दुर्गा विश्वमाताहै। वे किसी जाति विशेष तक सीमित नहीं हैं। उनकी पूजा पर कोई प्रतिवन्ध नहीं है। सभी जातियों और वर्गों को इसका अधिकार है। हरिवंश पुराण के अनुसार जङ्गली जातियाँ भी दुर्गोहासना करती थीं। महाभारत में भी विभिन्न जातियों द्वारा दुर्गा-पूजा का वर्णन है। हेमाद्रि में ऐसा ही उल्लेख है। दुर्गाके द्वार सबके लिए खुले हैं। तभी तो वे व्यापक रूप में फैलने में सफल हुई। उनके व्यापक विस्तारने सारे राष्ट्र को एक सूत्रता में बाँध दिया। अन्य अनेकों विषयों में मतभेद हो सकते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में सारा राष्ट्र एक मत था। दुर्गा की यह महानता सफलता कही जा सकती है।

दुर्गा-पूजन विधि

तन्त्र–

इसका तन्त्र इस प्रकार से है--

मातादिकर्णविन्द्वाढ्यो भूयोऽसो सर्गवान भवेत्।
पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासनः।
तारादि हृदयान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः॥

माया (ह्नी) अहि (द) कर्ण (उ)-विन्दु (अनुसवार)--दुं पुनः यह वर्ण विसर्ग युक्त (दः) पञ्चान्तक (ग) प्रतिष्ठा (आ) मारुत (य) भौतिक (ए) दुर्गायें और इनके आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में हृदय (नमः) ॐ ह्नीं दुं दुर्गायै नमः--यह आठ अक्षरों वाला दुर्गा का मन्त्र है।

पद्धति–

ॐ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि पद्धति गद्यरूपिणीम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय बद्धपद्मासनः स्वशिरस्थसहस्राधी मुखकमलकणकान्तगतं निजगुरुं श्वेतवर्णं श्वेतालकारलकृतं द्विभुजं स्वशक्त्या श्वेतान्वभूषितया वामेऽङ्ग सहित ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य दण्डवत् प्रणमेत् ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदर्दशित येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

इति ध्यात्वा तदाज्ञाँ गृहीत्वा वहिरागत्य मलमूत्रादि सन्त्यज्य वर्णोक्तं शौचमादाय नद्यादौ गत्वा स्वकूर्च द्वादशाङ्गुलम् ॐ क्लीं कामदेवा॰ सर्वजनमनोहराय नमः ॥ इति दन्तान् विशोध्य चाक्रिकबीजेन गण्डूषषटक विधाय प्रणवेन मुखं त्रिः प्रोक्ष्य । ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि शिखापरिसरे रक्ष- २ हूँ फल स्वाहेति शिखां बद्ध्वा तत्वत्रयेणाचम्य मूलेन प्राणायाम विधाय मलाप कर्षणं स्नानं कुर्यात् । ततो मूलेन मृदमानीय जल प्रोक्षयेत् । तन्त्रमृदा सूर्यमण्डल विचिन्त्य ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधि कुरु ॥

इति तीर्थान्यावाह्य ॥ जले यन्त्रं त्रिभाव्य सनीलकण्ठा दुर्गामावाहयेत् । तत्र षडंग विधाय देवी सशिवां ध्यात्वा मूल यथाशक्ति जप्त्वा उन्मज्जेत् । तत्र कुम्भमुद्रां बद्ध्वा स्वमूर्ध्नि देवदेव्यौ जलेन स्नापयित्वा ॥

ॐ ह्रीं ह्रीं सः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एष तऽर्घो नमः। इति सूर्ययार्घत्रयं दत्वा वासःपरिधाय तत्वत्रयेणच-म्लात्रि प्राणायाम विधाय पूर्वसन्ध्वां कृत्वा षडङ्ग कृत्वाचुलुकेन जलमदाय तत्वमुद्रायाच्छाद्य । हं यं वं रं लं इति त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरंस्तद्गलितोदकबिन्दुभिः सप्तधा स्वशिरस्यभ्युक्ष्य सव्यहस्ते शेषमुदकं धृत्वा इडयान्तर्नीत्वा देहान्तः पापं प्रक्षाल्य पिंगलया विरेचयत् पुरः कल्पितवज्रशिलायां मध्ये क्षिप्ति निक्षि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पेत् । इत्यघमर्षणं विधाय पूर्वपदाचम्य जले यन्त्रं ध्यात्वा मूलं यथाशक्ति जप्त्वा । मूलविद्यान्तते सायुधे सवाहने सपरिच्छदे श्रीनीलकण्ठसहिते मातदुर्गे तृप्यताम्इत्यष्टवारं सन्तप्यं नीलकंठ त्रिः सन्तर्प्य ।

एकैकाञ्जलिना परिवारदेवताः सन्ततंर्य्यं । देवदेव्यौ हृदि ध्यात्वा जले चतुरस्र विधाय । तत्रेशानादिक्रमेण गुरुपंक्मि सन्तप्यदेवीं गायत्रीं जपेत्। ॐह्लों दुन्दुर्गायै विद्महे अष्टाक्षरायै धीमहि तन्नो चेति प्रचोदयात् । इति यथाशक्ति प्रजप्य गायत्र्ज्ञानयादेवदेव्योरघत्रय दत्वा। जप समर्प्य यागमण्डपमागच्छेत्। इति विधि ।

ततो गृहमागत्य पादौ प्रक्षाल्य द्वारदेवा. ॐगाँ गुंगणेशाय नमः पूर्वे । ॐ क्षां क्षीं ह्रीं वटुकाय नमः दक्षिणे । ॐ क्षां क्षें क्षेत्रपालय नमः पश्चिमे । ओं याँ यूं योगिनानाभ्यो नमः उत्तरे। गैंगंगायै नमो देहल्याम् । यं यमुनायै नमः अधः । सं सरस्वत्यै नमः मध्ये इति सम्पूज्य । गृहान्तः प्रविश्य । यथोपचितमासनं शोधयेत् ॐ आं आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतल छन्द कर्मो देवता आसनशीधने विनियोग ॐ पृं पृथिव्यै नमः ।

महि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मा देवि ! पवित्रं कुरु चासनम् ।
ॐ आं शक्तये नमः मूलप्रकृत्यैः अ अनन्ताय नमः ।
पद्माय नमःपद्मनालाय नमः।तत्रोपविश्य तालत्रयं कुर्यात्
अपसपन्तु ते भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
इति तालत्रयं दत्वा वामपार्ष्णिघांतत्रयेण विघ्नानुत्सार्य नाराचमुद्रां प्रदर्श्य गुरं प्रणमेत् ।
अखंडमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदर्दशित येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं स्वगुरुभ्यो नमः परम गुरुभ्यो नमः । परापरगुरुभ्यो नमः । परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः इति गन्धाक्षतैरभ्यर्च्य न्यासपूर्वं सङ्कल्पं कुर्यात् ।

अस्य श्रीदुर्गामन्त्रस्य महेश्वर ऋषिः अनुष्टुप्छन्दःश्रीदुर्गा देवता दुःबीज ह्रीं शक्तिः ओं कीलक नमः इति दिग्बन्ध धर्मार्थ काममोक्षार्थे दुर्गापूजायां विनियोगः ।

न्यास–

अथान्तरमातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्मऋषिः--

गायत्रीछन्दः मातृकासरस्वतीदेवतां हलो बीजानि-

स्वराः शक्तयः क्षं कीलक अखिलाप्तये न्यासे विनियोगः।

इति जल भूमौ निक्षिप्य प्राणायाम कुर्यात् तथा च इढ़या ॥

अ इ उ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः एभिस्वरैः पूरयेत् ।

पुनः कु चु टु तु पु इति पंचवर्गकेन कुम्भयेत् ।

पुनः यरलव श ष स ह एभिरष्टवर्णैः रेचयेत् ।

इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादि न्यास कुर्यात् ॥ तथा च ॥

ओं अं ब्रह्मणोऋषये नमः आंशिरसि ।

ओं इं गायत्री छन्दसे नमः ईं मुखे ॥

ओं उँ सरस्वत्ती देवतायै नमः ऊँ हृदये ॥

ओं एं हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये ।

ओं ओं स्वरेभ्यो शभक्तियो नमः औं पादयोः ॥

ओं अं क्ष कीलकाय नमः अः सर्वांगे ।

इति ऋष्यादि न्यासः-ओं अं कं ख ग घ ङः आँअंगुष्ठाभ्यां नमः ।

ओं इं कं छ ज झ ञां ईं तर्जनीभ्यां नमः ।

ओं उं टं ठं डं मध्यामाभ्यां नमः ॥

ओं ए त थं दं ध न ऐं अनामिकाभ्यां ।

ओं औं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठकाभ्यां नमः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इति करन्यासः एवं हृदयादि-ओं कं ५ आं हृदयाय नमः ।

ओं इं चं ५ ईं शिरसे स्वाहा ।

ओं उं टं ५ ऊं शिखायैवषट् ॥

ओं एं तं ५ ऐं कवचाय हुँ ।

ओं ओं पं ५ औं नेत्रत्रयायवौषट् ॥

ओं अँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ हँ लँ क्षँ अः अस्त्रायफट् ॥

इति हृदयादि न्यासः ॥ ततः कण्ठस्थ षोडष दल पद्मे (ओअ नमः एवं क्रमेण सर्वत्र) ओं आं इँ ईं ऊँ ऊँ ऋँ ऋँ लृँ लृऐं ऐं ओं औं अं अः इति षोडषस्वरान्न्यसेत् ॥ पुनः हृदिस्थ द्वादशदले ओं कँ नमः एवं खं गं घं ङं छं जं झं ञं टं ठं नमः । इतिद्वादश वर्णान विन्यसेत् ॥ तथा नाभौ दशदले-ओं डं नमः इति एवं णं णं तं थं धं नं पं फं नमः इति दशवर्णान्न्यसेत् तदधोलिंगे षड्दले ओं ब नमः एवं ओं भं मं यं रं लं इति षड्वर्णान्त ॥ आधारे चतुर्दले ओं व नमः एवं श ष स इति चतुर्वर्णान्त न्यसेत् ॥ पुनःललाटे द्विदले ओं ह नमः ओं क्षं नमः नमः द्वोवर्णो न्यसेत् ॥ इति न्यास कृत्वा ज्यायेत् ॥ आधारेत् ॥ लिंगनाभौं प्रकटित तालुमूलेललाटे द्वे पत्रे षोड़शारे द्विदश दले द्वादशार्द्ध-चतुष्के ॥ बासन्तेव ल-मध्ये डफकर साहत कंठदेशेस्वराणां हं सं तत्वर्थं युक्त सकल दलगल वर्णरूपं नमामि॥ इत्यंतर्मातृका न्यासः ॥

अथ बहिर्मातृकान्यास ॥

जयार्थं सर्वदेवानां विन्यासे च लिपेर्विना ।
कृतेतद्विफलं विद्यात्तदादौतु लिपिंन्यसेत् ॥

ओं अस्यश्री बहिर्मातृकान्यास मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्द मातृका सरस्वती देवीदेवता हलोबीजानि स्वराः शक्तयः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षं कीलकं अखिलाप्तये न्यासे विनियोगः । प्राणायामं कुर्याद् ।।
तथा च इड्या अ इ उ ऋ लृ ए ओ अः एभिः स्वरैः पूरयेत् ।
पुनः कु चु टु तु पु एभिः पचवर्गान् कुम्भयेत् ।।
पुनः अष्टभिः यरलव श ष ह स आदिना रेचयेत् ।
इति प्राणायामं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।।
तथा च ओं अं ब्रह्मणे ऋषये नमः आं शिरसि ।
ओं इं गायत्री छन्द से नमः ईं मुखे ।।
ओं उं सरस्वती देवतायै नमः ऊं हृदि ।
ओं एं हल्भ्यो वीजेभ्यो नमः ऐं गुह्यो ।।
ओं स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः औं पादयोः ।
ओं अं क्षं कीलकाय नमः नः सर्वांगे ।
इति ऋष्यादि न्यासः ।
ओं अं कं ५ आं अंगुष्ठाभ्यां नमः हृदयाय ।
ओं इं च ५ ईं तर्जनीभ्यां शिरसे स्वाहा ।
ओं उं ट ५ ऊं मध्यमाभ्यां शिखायैवषट् ।।
ओं एं तं ५ ऐं अनामिका कवचायहुँ ।
ओं पं ७ औं कनिष्ठआभ्यां नेत्रत्रयाये वौषट् ।
ओं अं यं रं लं वं शं षं हं लं क्ष अः करतलकर पृष्ठाभ्यां अस्त्रायफट् ।
मृगवालं वरं विद्यामक्षसूत्रं दधात् करैं ।
माला-विद्या लसद्ध स्तां ध्येयः शिवो गिरः ।
ततः--वहिर्मातृकान्यासं कुर्यात् । अं नमः शिरसि ।
ओं आं नमः मुखे । ओं इं नमः दक्षिण नेत्रे ।
ओं ईं नमः वामनेत्रै । ओं उं नमः दक्षिण कर्णे ।।
ओं नमः वामकर्णे । ओं ऋं नमः दक्षिणनासा पुटे ।
ओं ॠं नमः वाम नासा पुटे । ओं लृं नमः दक्षिण कपोले
ओं लॄं नमःवामकपोले ओं एं नमः। तों ऐं नमःअधोरोष्ठे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं नमः ऊर्ध्वदन्त पंक्तौ ओं नमः अधोदंत पंक्तौ ।
ओं अं नमः मूर्द्धिन । ओ नमः मुखवृत्ते ।।
ओं कं नमः दक्षिण बाहुमूले । ओ खं नमः द० कूर्परे ।।
ओं ओ गं नमःद० मणिबन्धे। ओ घं नमः द० हस्तांगुलिमूले
ओं ङं नमः द० हस्तांगुल्यग्रे । ओ च नमः वाम बाहु मूले ।
ओं छं नमः वा० कूर्परे । ओ जं नमः वा० मणिबन्धे ।।
ओं झं नमः वा० हस्तांगुलिमूले ।
ओं ञं नमः वाम हस्ताँगुल्यग्रे ।
ओं टं नमः दक्षिणपाद मूले ।
ओं ठं नमः द० जानुनि । ओ डं नमः द० गुल्फे ।।
ओं णं नमः द० पादांगुल्यग्रे ।।
ओं तं नमः वाम पाद मूले । ओ थं नमः वाम जानुनि ।।
ओं द नमः वाम गुल्फे । ओ धं नमः वा० पादांगुलिमूले ।।
ओं नं वा० पादांगुल्यग्रे । ओ पं नमः दक्षिण पार्श्वे ।।
ओं फंनमः वाम पार्श्वे । ओ बं नमः पृष्ठे ।।
ओं भं नमः नाभौ ओ मं नमः उदरे ।।
ओं यं त्वगात्मने नमः हृदि । ओ रंअसृगात्मने नमः दक्षांसे।
ओं लं मासात्मने नमः ककुदि। ओ वं मेदात्मने नमःवामाँसे
ओं शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि वान हस्तांतम् ।।
ओं षं भज्जात्मने नमः हृदयादि वाम हस्तांतम् ।।
ओं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम् ।।
ओं हं आत्मने नमः हृदयामि वाम पादान्तम् ।।
ओं लं परामात्मने नमः जठरे ।।
ओं क्षं प्राणात्मने नमः मुखे, इति विनयस्य ।।

अथ सृष्टिन्यास क्रः

तत्र तु विसर्गान्वितः प्रणवपुटितो वा माया लक्ष्मी बीजपुटितो वा वाम्भवाद्योवा न्यस्तव्यः ध्यानम् !

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चाक्षदवर्णेर चिताङ्ग भागां घृतेन्दुखण्डा कुमुदावदाताम्।
वराभये पुस्तकमसूत्रं भजेगिरं संदधतीं-त्रिनेत्राम् ।।१
तत्र वाग्भवाद्यो यथां ऐं अं नमः ललाटे ।
ऐं आं नमः मुखवृत्तं ऐं इं नमः दक्ष नेत्रे !
ऐं ईं नमः वाम नेत्रे ! ! ऐं उँ नमः दक्ष कर्णे ! !
ऐं ऊं नमः वाम कर्णे ! ऐं ऋं नमः दक्ष नासायां ! !
ऐं ॠं नमः वाम नासायां ! !
ऐं लृं नमः दक्ष गंडे ! ! ऐं लॄं नमः वाम गंडे ! !
ऐं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे ! ! ऐं ऐं नमः अधरोष्ठे ! !
ऐं ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ! !
ऐं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ ! !
ऐं अं नमः मूर्द्धिन ! ऐं अः नमः मुखे ! !
ऐं कं नमः द० बा० मूले !! ऐं खं नमः द० कूर्परे ! !
ऐं गं नमः द० मणिबन्धे ।। ऐं घं नमःद० हस्तांगुलि मूले!
ऐं ङं नमः द० हस्तांगुल्यग्रे !! ऐं च नमः वाम बाहु मूले!
ऐं छं नमः वाम कूर्परे !! ऐं जं नमः वाम मणिबन्धे ! !
ऐं झं नमः त्राम हस्तांगुलि मूले ! !
ऐं ञं नमः वाम हस्ताँगुल्यग्रे ! !
ऐं टं नमः दक्षिणपाद मूले !! ऐ ठं नमः दक्षिण जानुनि!!
ऐं डं नमः दक्षिण गुल्फे !! ऐ ढ नमः द० पादाँगुलि मूले!!
ऐं णं नमः द० पा० गुल्यग्रे ।। ऐं तं नमः वाम पाद मूले।।
ऐं थं वाम जानुनि ऐं दं नमः वामः गुल्फे ।
ऐं धं नमः वाम पा० गु० मूले । ऐं नं वाम पादाँगुल्यग्रे ।
ऐं पं नमः दक्षिण पार्श्वे । ऐं फै नमः वाम पार्श्वे ।
ऐं बं नमः पृष्ठे । ऐं भं नमः नाभौ ।
ऐं मं नमः उदरे । ऐं यं त्वगात्मने नमः हृदि ।
ऐं रं असृगात्मने नमः दक्षाँसे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐं लं मांसात्मने नमः ककुदि ।
ऐं वं मेदात्मने नमः हृदयादि दक्ष भुजान्तम् ।
ऐं षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम भुजान्तम् ।
ऐं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
ऐं हं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम् ।
ऐं लं परमात्मने नमः हृदयादि मस्तकान्तम् ।
। इति सृष्टिक्रम न्यासः ।

अथ स्थितिन्यासः । ऋषिश्छन्द पूर्ववत् ।
ध्यानम् । सिंदूरकान्तिमसिताभरणां त्रिनेत्रां विद्याक्षसूत्रां मृगपोतवरंदधानाँ । पाश्वंस्थितांभगवतीमपि कांचनांगीं ध्याये कराब्जधृत पुस्तक वर्णमालाम् ।

ओं टं ठं डं नमः ललाटे ।
ओं टं ठं डं नमः मुख वृत्ते ।
ओं टं ठं डं नमः दक्ष नत्रे ।
ओं टं ठं डं नमः वाम नेत्रे ।
ओं टं ठ डं नमः दक्षिण कर्णे ।
ओं टं ठं डं नमः वाम कर्णे ।
ओं टं ठं डं नमः दक्षनासाया ।
ओं टं ठं डं वाम नासायां नमः ।
ओं टं ठं डं नमः दक्षिणगन्डे ।
ओं टं ठं डं नमः वाम गण्डे ।
ओं टं ठं डं नमः ऊर्ध्वोष्ठे ।
ओं टं ठं डं नमः अधरोष्ठे ।
ओं टं ठं डं नमः ऊर्ध्वदन्त पंक्तौ ।
ओं टं ठं डं नमः अधोदन्त पंक्तौ ।
ओं टं ठं डं नमः शिरसि ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं टं ठं डं नमः मुखे ।
ओं टं ठ डं नमः जिह्वाग्रे ।
ओं टं ठं डं नमः कण्ठदेशे ।
ओं टं ठ डं नमः दक्ष बाहुमूले ।
ओं ट ठं डं नमः दक्ष कूर्पूरे ।
ओं टं ठं डं नमः दक्षिण मणिबन्धे ।
ओं टं ठं डं नमः दक्षिण हस्तांगुल्य मूले ।
ओं टं ठं डं नमः दक्षिण हस्तांगुल्यग्रे ।
ओं टं ठं डं नमः वाहु मूले ।
ओं टं ठं डं नमः कर्पूरे ।
ओं टं ठं डं नमः वाम मणिबन्धो ।
ओं टं ठं डं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे ।
ओं टं ठं डं नमः दक्ष पादमूले ।
ओ टं ठं डं नमः दक्ष जानुनि ।
ओं टं ठं डं नमः दक्ष गुल्फे ।
ओं टं ठं डं नमः दक्ष गुल्फे ।
ओं टं ठं डं नमः दक्ष पादांगुलिमूले ।
ओं टं ठं डं नमः पादांगुल्यग्रे ।
ओं टं ठं डं नमः वाम पाद-मूले ।
ओं टं ठं डं नमः वाम जानुनि ।
ओं टं ठं डं नमः वामगुल्फे ।
ओं टं ठं डं नमः वाम पादांगुलि मूले ।
ओं टं ठं डं नमः वाम पादांगुल्यग्रे ।
ओं टं ठं डं दक्ष पार्श्वे ।
ओं टं ठं डं गमः पृष्ठे ।
ओं टं ठं डं नमः हृदये ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं टं ठं डं नमः वामांसे ।
ओं टं ठं डं नमः हृदयादि दक्षहस्तान्तम् ।
ओं टं ठं डं नमः हृदयादि वाम हस्तान्तम् ।
ओं टं ठं डं नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
ओं टं ठं डं नमः हृदयादि मस्तकान्तम् ।

इति स्थितिक्रमः ॥

अथ संहार क्रमन्यासः

ध्यानम् ! अक्षस्त्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं विद्यांकरै-
रविरतधतीं त्रिनेत्रां ।
अर्द्धेन्दुमौलिभरणामरविन्दवासाँ वर्णेश्वरीं च
प्रणुमः स्तनमारखिन्नाम् ।
पूर्वोक्तं स्थानेषु विलोम मात्रकाँन्यसेत् ।
ओं क्षं नमः ललाटे ।
ओं हं नमः मुखवृत्ते । सं नमः दक्ष नेत्रे ।
ओं षं नमः वाम नेत्रे ।
ओं शं नमः दक्ष कर्णे ।
ओं वं नमः वाम कर्णे ।
ओं लं नमः दक्ष मासायां ।
ओं रं नमः वाम नासायां ।
ओं यं नमः दक्ष गंडे ।
ओं मं नमः वाम गंडे ।
ओं भं नमः ऊध्वौंष्डे ।
ओं बं नमः अधरोष्ठ ।
ओं फं नमः ऊर्ध्वं दन्तपंक्तौ ।
ओं पं नमः अधो दन्तपंक्ती ।
ओं नं नमः मूर्द्धनि ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं धं नमः मुखवृत्ते ।
ओं दं नमः दक्ष बाहु मूले ।
ओं थं नमः दक्ष कूर्परे ।
ओं तं नमः दक्ष मणिबन्धे ।
ओं णं नमः दक्ष हस्तांगुलिमूले ।
ओं ढं नमः दक्ष हस्ताँगुल्यग्रे ।
ओं डं नमः वाम बाहू मूले ।
ओं ठं नमः वाम कूर्परे ।
ओं टं नमः वाम मणिबन्धे ।
ओं ञं नमः वाम हस्ताँगुलिमूले ।
ओं जं नमः दक्ष पादमूले ।
ओं छं नमः दक्ष जानुनि ।
ओं चं नमः दक्ष गुल्फे ।
ओं ङं नमः दक्ष पादांगुलिमूले ।
ओं घं नमः दक्ष पादांगुल्यग्रे ।
ओं गं नमः वाम पाद मूले ।
ओं खं नमः वाम जानुनि ।
ओं कं नमः वाम गुल्फे ।
ओं अः नमः वाम पादांगुलि मूले ।
ओं अं नमः वाम पादांगुल्यग्रे ।
ओं औं नमः दक्षिण पार्श्वे ।
ॐ ओं नमः वाम पार्श्वे ।
ॐ ऐं नमः पृष्ठे ।
ॐ एं नमः नाभौ ।
ॐ ॡं नमः उदरे ।
ॐ ॡं त्वगात्मने नमः हृदि ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं टं ठं डं नमः दक्षांसे ।

ओं टं ठं डं नमः ककुदि ।

ॐ ऋं असृगात्मने नमः दक्षांसे ।

ॐ ऋं मांसात्मने नमः ककुदि ।

ॐ ऊं मेदात्मने नमः वामांसे ।

ॐ उं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्ष हस्तान्तम् ।

ॐ ईं मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम हस्तान्तम् ॥

ॐ इं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।

ॐ आं मात्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम् ।

ॐ अं परमात्मने नमः हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति संहार-क्रम-न्यास ॥

अथ शक्ति कलान्यासः

अस्य श्री शक्तिकला-मातृका-न्यासस्य प्रजापति ऋषिः गायत्री छन्दः श्री मातृका शारदा देवता हलाबीजानिस्वराः शक्तयः सप्तशती पाठाङ्ग त्वेन मातृकान्यासे विनियोगः ।

ओं प्रजापति ऋषये नमः शिरसि ।

ओं गायत्री छन्दसे नमः मुखे ।

ओं श्रीं मातृका शारदा देवतायै नमः हृदि ।

ओं हलभ्योबीजेभ्यो नमः गुह्ये ।

ओं स्वरेभ्योशक्तिभ्यो नमः पादयो ।

ओं विनियोगाय नमः सर्वांगे ।

करन्यास

ॐ अं ॐ आं अगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः)

ॐ इं ॐ ईं तर्जनीभ्यां नमः (शिरसे स्वाहा)

ॐ उं ॐ मध्यमाभ्यां नमः (शिखायै वषट्)

ॐ एं ॐ ऐं अनामिकाभ्याँ नमः (कवचायहुँ)

ॐ ओं ॐ औं कनिष्ठका नमः (नेत्र त्रयाय वौषट्)

ॐ अं ॐ अः करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः (अस्त्रायफट्)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ हृदयादिन्यासः

ॐ ह्सां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । हृदयाय नमः ।
ॐ ह्सीं तर्जनीभ्यां नमः । शिखायै वषट् ।
ॐ ह्सूं मध्यमाभ्यां नमः । शिखायै वषट् ।
ॐ ह्सैं अनामिकाभ्यां नमः । कवचाय हुम् ।
ॐ ह्सौं कनिष्ठकाभ्यां नमः । त्रयायवौषट् ।
ॐ ह्सः करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः । अस्त्रायफट् ।

षोढान्यास प्रकारः

तत्र प्रथम शुद्ध मातृका न्यासः

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं नमो हृदिः ।
एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमो दक्ष भुजे ।
ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वाम भुजे ।
णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्ष पादे ।
मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमो वाम पादे ।

इति शुद्ध मातृका न्यासः प्रथमः ।

अथ द्वितीय न्यासः

श्रीं अं श्रीं अं श्रीं अं नमो ललाटे ।
श्रीं आं श्रीं आं श्रीं आं नमो मुखवृत्ते ।
श्रीं इं श्रीं इं श्रीं इं नमो दक्षनेत्रे ।
श्रीं ईं श्रीं ईं श्रीं ईं नमो वामनेत्रे ।
श्रीं उं श्रीं उं श्रीं उं नमो दक्षकर्णे ।
श्रीं ऊं श्रीं ऊं श्रीं ऊं नमो वामकर्णे ।
श्रीं ऋ श्रीं ऋ श्रीं ऋ दक्षनासायां ।
श्रीं ॠं श्रीं ॠं श्रीं ॠं नमो वामनासायां ॥
श्रीं लृं श्रीं लृं श्रीं लृं नमो दक्षकपोले ।
श्रीं लॄं श्रीं लॄं श्रीं लॄं नमो वामकपोले ।
श्रीं एं श्रीं एं श्रीं एं नमो दक्षोष्ठे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ नमो ऊर्ध्व दन्तपंक्तौ ।
श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ नमो अधो दन्तपंक्तौ ।
श्रीं अं श्रीं अं श्रीं अं नमो मूर्द्धनि ।
श्रीं अः श्रीं अः श्रीं अं नमः मुखे ।
श्रीं कं श्रीं कं श्रीं कं नमो दक्षिण बाहुमूले ।
श्रीं खं श्रीं खं श्रीं खं नमो दक्षिण कूर्परे ॥
श्रीं गं श्रीं गं नमो दक्षिण मणिबन्धे ।
श्रीं घं श्रीं घं श्रीं नमः दक्षिण हस्तांगुलि मूले ।
श्रीं ङं श्रीं ङं श्रीं ङं नमो दक्षिण हस्तांगुल्यग्रे ।
श्रीं चं श्रीं चं श्रीं चं नमो वाम बाहु मूले ।
श्रीं छं श्रीं छं श्रीं छं नमो वाम कूर्परे ।
श्रीं जं श्रीं जं श्रीं जं नमो वाम मणिबन्धे ।
श्रीं झं श्रीं झं श्रीं झं नमो वाम हस्ताँगुलिमूले ।
श्रीं ञं श्रीं ञं श्रीं ञं नमो वाम हस्तांगुल्यग्रे ।
श्रीं टं श्रीं टं श्रीं टं नमो दक्षिण पादमूले ।
श्रीं ठं श्रीं ठं श्रीं ठं नमो दक्ष जानुनि ।
श्रीं डं श्रीं डं श्रीं डं नमो दक्ष गुल्फे ।
श्रीं ढं श्रीं ढं श्रीं ढं नमो दक्ष पादांगुलि मूले ।
श्रीं णं श्रीं णं श्रीं णं नमो दक्ष पादांगुल्लग्रे ।
श्रीं तं श्रीं तं श्रीं तं नमो वामं पाद मूले ।
श्रीं थं श्रीं थं श्रीं थं नमो वाम जानुनि ।
श्रीं दं श्रीं दं श्रीं दं नमो वाम गुल्फे ।
श्रीं धं श्रीं धं श्रीं धं नमो वाम पादांगुलिमूले ।
श्रीं नं श्रीं नं श्रीं नं नमो वाम पादांगुल्यग्रे ।
श्रीं पं श्रीं पं श्रीं पं नमो दक्ष पार्श्वे ।
श्रीं फं श्रीं फं श्रीं फं नमो वाम पार्श्वे ।
श्रीं बं श्रीं बं श्रीं बं नमो पृष्ठे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीं भं श्रीं भं श्रीं भं नमो नाभौ ।
श्रीं मं श्रीं मं श्रीं मं नमो उदरे ।
श्रीं यं श्रीं यं श्रीं यं त्वमात्मने नमः हृदि ।
श्रीं रं श्रीं रं श्रीं रं असगात्मने नमः दक्षाँसे ।
श्रीं लं श्रीं लं मांसात्मने नमः ककुदि ।
श्रीं बं श्रीं बं श्रीं बं मेदात्मने नमः वासांसे ।
श्रींशं श्रीं शं श्रीं शं अस्थ्यात्मने नमःहृदयादिवामहृस्तान्तये
श्रीं षं श्रीं षं श्रीं यं नमः हृदयादि दक्ष हृस्तान्तम् ।
श्रीं सं श्रीं सं श्रीं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादांतम्
श्रीं हृ श्रीं हं श्रीं हं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादांतम् ।
श्रीं लं श्रीं लं श्रीं लं परमात्मने नमः जठरे ।
श्रीं क्षं श्रीं क्षं श्रीं क्षं प्राणात्मने नमः हृदयादि मस्तकान्तम्।

॥ इति द्वितीय न्यासः ॥

अथ द्वितीय न्यासः

क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो ललाटे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मुखवृवृत्ते ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षनेत्र ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वामनेत्रे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षकर्णे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वामकर्णे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष नासायाम् ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम नासायाम् ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष कपोले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम कपोले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो ऊर्ध्वोष्ठे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो अधरोष्ठे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो ऊर्ध्व दन्तपंक्तौ ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं अधो दन्तपंक्तौ ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मूर्द्धनि ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मुखे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षिण बाहुमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षकर्पूरे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षमणिबन्धे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष हस्तांगुलिमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष हस्तांगुल्यग्रे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वामबाहुमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वामकूर्परे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाममणिबन्धे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम हस्तांगुलिमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वामहस्तांगुल्यग्रे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षिण पादमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष-जानुनि ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष-गुल्फे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पादांगुलिमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पादांगुल्यग्रे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम-पाद-मूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो जानुनि ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम गुल्फे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम पादांगुलिमूले ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पादांगुल्यग्रे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम-पार्श्वे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पृष्ठे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो नाभौ ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो उदरे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं त्वमात्मने नमः हृदि ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं असृगात्मने नमः दक्षांसे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं मांसात्मने नमः ककुदि ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं मेदात्मने नमः वामांसे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं अस्थवात्मने नमः हृदयादि ।
दक्ष हस्तान्तम् ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं मज्जात्मने नमः हृदयादि
वाम हस्तान्तम् ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं शुक्रात्मने नमः हृदयादि
दक्ष पादान्तम् ।।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं आत्मने नमः हृदयादि वाम
पादान्तम् ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं परमात्मने नमः जठरे ।
क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं हृदयादि मस्तकान्तम् ।

।। इति तृतीय न्यायः ।।

अथ चतुर्थन्यासः

ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः ललाटे ।
सृष्टिन्यास के अनुसार स्थानों पर न्यास तथा मुद्रा
भी वही है ।

पञ्चमः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ह्रां ह्रां ऋ ऋ ल्कूं नमः ललाटे ।

सृष्टिन्यास के अनुसार तथा मुद्रा भी वही

षष्ठ अनुलोमः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः ललाटे ।
उन्हीं स्थान तथामुद्रा से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विलोम न्यासः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः हृदयादि मस्तकान्तम् ।

पूर्व लिखे हुए संहार-न्यास के अनुसार होगा मुद्रा सहित ।

तत्वन्यासः

ऐं ह्रीं क्लीं आत्म तत्वाय नमः पादादि नाभिपर्यन्तम् ।

चामुण्डायै विद्यातत्वाय नमः नाभ्यादि हृदय-पर्यन्तम् ।

विच्चे शिव-तत्वाय नमः हृदयादि शिरः-पर्यन्तम् ।

अक्षरन्यास

ऐं नमः ब्रह्मरन्ध्रे । ह्रीं नमः भ्रुवोर्मध्ये ।

क्लीं नमः ललाटे चां नमः हृदि । मुन्नमोंकुक्षौ ।

डां नमः नाभौ । यै नमः लिंगे । विनमो गुह्ये ।

च्चेनमोवक्रे । इति

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।।

ततौ नवधा सप्तधा पञ्चधा वा मूल मुच्चरन् व्यत्स

तस्ताभ्यां व्यापक न्यास विधाय ।

ततो यथोक्त विधिना बिन्दु त्रिकोण षट-कोण अष्ट-दल-

चतुर्विंशति दल भूपरयुत यन्न निर्माय पीठे धृत्वा ।

पीठ यन्यास कुर्यात् ।

ॐ आधार शक्त्यै नमः ।

ॐ प्रकृत्यै नमः ।

ॐ कूर्माय नमः ।

ॐ सूधां बुध्ये नमः ।

ॐ मणिद्वीपाय नमः ।

ॐ चिन्तामणि गृहाय नमः ।

ॐ श्मशानाय नमः ।

ॐ पारिजाताय नमः ।

ॐ तन्मूले । ॐ रत्नवेदिकायै नमः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ मणिपीठाय नमः । एतावद्धृदि न्यसेत् । चतुर्दिक्षं ।

ॐ नाना मुनिभ्यो नमः ।

ॐ नाना देवेभ्यो नमः ।

ॐ शवेभ्यो नमः ।

ॐ शं न मुण्डेभ्यो नमः ।

ॐ बहुमांसास्थि मोदमान शवेभ्यो नमः ।

ॐ धर्म्माय नमः दक्षांसे ।

ॐ ज्ञानाय नमः वामांसे ।

ॐ वैराग्याय नमः वामोरो ।

ॐ ऐश्वर्याय नमः दक्षोरो ।

ॐ अज्ञायाय नमो वाम-पार्श्वे ।

ॐ अवैराग्याय नमः नाभो ।

ॐ अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे । ततो हृदि ॥

ॐ आनन्द-कन्दाय नमः ।

ॐ सविन्नालय नमः ।

ॐ सर्व-तत्वात्मक पद्माय नमः ।

ॐ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नमः ।

ॐ विकार-मय केसरेभ्यो नमः ।

ॐ पञ्चाशद्बीजाढ्य कर्णिकायै नमः ।

ॐ अष्टादश कलात्मने सूर्य-मंडलाय नमः

ॐ षोडश कलात्मने सोममंडलाय नमः

ॐ मन्दशकलात्मने वह्निमंडलाय नमः ।

ॐ सं सत्वायनमः ।

ॐ रं रजसे नमः ।

ॐ तम् तुमसे नमः ।

ॐ आं आत्मने नमः ।

ॐ अं अन्तरात्मने नमः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं पं परमात्मने नमः
ओं ह्रीं ज्ञानात्मने नमः अष्टदिक्षु ।
ओं इं इच्छायै नमः ।
ओं ज्ञाँ ज्ञानायै नमः ।
ओं क्रि क्रियायै नमः ।
ओं क्रि क्रियायै नमः ।
ओं कां कामिन्यै नमः ।
ओं कां कामदायिन्यै नमः ।
ओं रं रत्यै नमः ।
ओं आं आनन्दायै नमः । मध्ये ।
ओं म मनोन्मन्य नमः ।
ओं एं परायै नमः ।
ओं प परायण्ये नमः ।
ओं ह्सौः ब्रह्मा विष्णु-रुद्र-महाप्रेत पद्मासनाय नमः ।
इति पीठ न्यासः कृत्वा तत्र दुर्गां ध्यायेत् ।
ऊँ शंख चक्रं गदां वाणान् चापं परिध शूलके ।
भुशुण्डी च शिरः खड्गं दधतीं दश वक्त्रकाम् ॥१
तामसी श्यामलां नौमि महाकालीं दशांघ्रिकाम् ।
मालाञ्च परशुं वाणान् गदां कुलिशमेव च ॥२
पद्मं धनुः कुण्डिकां च दंडं शक्तिमसि तथा ।
खेट कंजलज घण्टां सुरापात्रं च शूलकम् ॥३
पाशं सुदर्शनं चैव दधती लोहित प्रभाम् ।
पद्मे स्थितां महालक्ष्मी भजे महिषमर्दिनीम् ॥४
घंटा शूल हल शंख मुसलारिधनु शरान् ।
दधतींमुज्वलां नौमि देवीं गौरी समुद्भवाम् ।५
इति ध्यात्वा मानसै रूप चारैरभ्यर्च्य प्रणमेत् ।
ध्यान-सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजैः शंखं चक्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धनुः शरांश्च दधती नेत्रै स्त्रिभिः शोभिता । आमुक्ताङ्‌ गद-हारकंकणरणत्काञ्चीक्वणन्नूपुरा दुर्गा दुर्गति हारिणी भवतु

अथ देव्या कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्द, चामुण्डा-देवता, अंगन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्वन्धदेवतास्तत्वम्, श्री जगदम्बा प्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोगः ।

ओं नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच ओं यत्गुह्य परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१
ब्रह्मोवाच--अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्त कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥२
प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीय चन्द्रघंटेति कूष्मांडेति चतुर्थम् ॥३
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तम कालरात्रिति महागौरीति चाष्टकम् ॥४
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिता ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणंव महात्मना ॥५
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ता शरणं गताः ॥६
न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥७
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥८
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥९
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्मी पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥१०
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना: ।
ब्राह्मी हंसमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥११
इत्येता मातर: सर्वा सर्वयोगसमन्विता: ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिता: ॥१२
दृश्यन्ते रथमारूढ़ा देव्य: क्रोधसमाकुला: ।
शंखं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥१३
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥१४
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥१५
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि: ॥१६
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥१७
दक्षिणेऽवतु वाराहीं नैर्ऋत्यां खङ्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणीं रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥१९
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे जाग्रत: पातु विजया पातु पृष्ठत: ॥२०
अजिता वामपार्श्वे तं दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१
मालाधारी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२
शंखिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिकां रक्षेत्कर्णमूले तु शांकरी ॥२३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वयाँ च सरस्वती ॥२४
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवायां भद्रकालीं च पृष्टवंशे धनुर्धरी ॥२६
नीलग्रीवां बर्हिः कण्ठे नलिकां नलकूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च ।
नखञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८
स्तनो रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्र गुदे महिषवाहिनीं ॥३०
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
जङ्घां महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥३१
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ।
पादांगुलींषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥३२
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कावेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥३३
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥३५
शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकार मनो बुद्धि रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥३६
प्राणापानो तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणकल्याण शोभना ॥३७
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥३८
आयु रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
यशः कीर्ति च लक्ष्मी च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥३९
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥४०
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥४१
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं रक्ष में देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥४२
पदमेकं न गच्छेत् यदोच्छेच्छुभमात्मनः ।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैवं गच्छति ॥४३
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकाः ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥४४
निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृत पुमान् ॥४५
इद तु देव्याः कवचं देवानामपि दुलभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥४६
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद् वर्षशतं साग्रममृत्युविवर्जितः ॥४७
दृश्यन्ति व्याधय सर्वे लूतार्विस्फोटकादयः ।
स्थावरं जगमं चैव कृत्रिमं चाप यद्विषम् ॥४८
अभिचार्रिणी सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥४९
सह कुलजा माला डाकिनी शाकिनीं तथा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबला: ।।५०
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसा: ।
ब्रह्मराक्षसवेताला: कूष्माण्डा भैरवादय: ।।५१
दृश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ।।५२
दृश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ।।५३
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्तति: पुत्रपौत्रिकी ।।५४
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादत: ।।५५
लभते परम रूपं शिवेन सह मोदते ।। ॐ ।।५६

देवी-सूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नम: ।
नम: प्रकृत्यै भद्रायै नियया: प्रणता: स्मृताम् ।।१
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनम: ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नम: ।।२
कल्याण्यै प्रणता वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नम: ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नम: ।।३
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नम: ।।४
अति सौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नम: ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नम: ।।५
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम: ।।६
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥८
या देवी सर्वभूतेषु निन्द्रा रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥९
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमतस्यै नमो नमः ॥११
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमतस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५
या देवी सर्वभूतेषुलज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमतस्यै नमो नमः ॥१७
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४
य देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६
इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीं भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥२७
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण ।
दिनेषु तेविता । करोतु सा न शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदाः ॥२९॥ या सांप्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरल्माभिरीशात्च सुरैर्नमस्य ते। या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति न सर्वापदो भक्ति विनम्रमूर्तिभि ॥३०

॥ इति देवीसूक्तं ॥

आठ लाख मन्त्र जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। जप के बाद त्रिमधु-युक्त तिल अथवा दूध मिले अन्न से आठ हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए। इसमें दशांश हवन का नियम नहीं है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिशक्ति रहस्य

स्पष्टीकरण–

'शक्ति' की पूजा अक्षर (निराकार) रूप में नहीं की जा सकती। इसलिए उसके प्रत्यक्ष स्वरूप की कल्पना उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार पर करनी पड़ती है। इन तीनों शक्तियों का नाम क्रम से सरस्वती लक्ष्मी और काली रख दिया गया है, वस्तुतः ये तीन भिन्न-भिन्न देवियाँ नहीं वरन् एकही निराकर देवी की पूजा के लिए तीन स्वरूप हैं! इन शक्तियों के अनुरूप देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इसी प्रकार तीन अलग-अलग देव नहीं हैं, वरन् एक ही निराकार परमात्मा के तीन रूप कल्पित किये गये हैं, नवरात्रि के उत्सव में जगत् की इन तीन शक्तियों महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीकी पूजा ही की जाती है।

महासरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी की तंत्रोक्त त्रिशक्ति कहते हैं। इनका मूल नियम श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।५) के मन्त्र में है।

अजमेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजासृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जषुमाणेऽनुशेते
जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

अर्थात् अपने समान रूप वाली, असंख्य प्राणियों को रचने वाली, लाल, श्वेत, काली एवं अजन्मा प्रकृति को ही एक अजन्मा अज्ञानी प्राणी मोहयुक्त होकर भोगता है, परन्तु दूसरा ज्ञानी पुरुष इस भोगी हुई प्रकृति का त्याग कर देता है।

श्वेत वर्ण का प्रतीक महासरस्वती, काले वर्ण का महाकाली और रक्तवर्ण का महालक्ष्मी है। महासरस्वती, सत्व गुण प्रधानहै, महाकाली

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तमोगुण-प्रधान है महालक्ष्मी रजोगुण प्रधान। यूँ भी कह सकते हैं कि महासरस्वती काल है महाकाली प्रलय काल है और महालक्ष्मी सृष्टि काल। यह परम प्रकृति की तीन विकृतियाँ हैं। जिनके न्याय-शास्त्र के अनुसार आध्यात्मिक नाम-ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति क्रिया-शक्ति है। सांख्य-योग के अनुसार यह सत् रज और तम हैं। पारमार्थिक वेदान्तोक्त नाम—सत् चित् और आनन्द है। तान्त्रिक मत से ऐं क्लीं ह्रीं (श्री) है।

ज्ञानेच्छाक्रियायाँ तिसृणां व्यष्टीनां महासरस्वतीमहाकाली महालक्ष्मीरित प्रवृत्तिर्निमितवैलक्षण्येन नामरूपान्तराणि सच्चिदानन्दात्मकपरब्रह्मधर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम्।

महासरस्वति चिते महालक्ष्मि सदात्मिके।
महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्वज्ञानसिद्धये।
अनुसदध्महे चण्डि वयं त्वां हृदयाम्बुजे ॥
महालक्ष्मीब्रह्मत्वं महाकाली रुद्रात्वं
महासरस्वती विष्णुत्वं प्रपेदे।

(सप्तशती की गुप्तवती टीका)

अर्थात्–"ज्ञान-इच्छा और क्रियाओं की तीन प्रकृति हैं--महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी। प्रवृत्ति और निवृत्ति की विलक्षणता से नाम और रूपों में अन्तर होते हैं।

सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म के धर्म होने से ही शक्ति के भी तीन रूप हैं। महासरस्वती चित्रूपा हैं--महालक्ष्मी सत्रूपा है और महाकाली आनन्दरूपिणी हैं। आपके तत्व का ज्ञान सिद्धि के लिए ही है। हेचण्डिके ! हम हृदय कमल में आपका अनुसन्धान करते हैं।

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्वाधिको भवेत्।
तमोगुणाधिको रुद्रः सर्व कारण-रूपधृक् ॥
स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरिः स्मृतः।
रुद्रस्तु कारणे देहस्तुरीयस्त्वहमेव हि ॥

(दे० भा० १२-७-७२३)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात्—ब्रह्मा रजोगुण की अधिकता वाले हैं। विष्णु में सत्व गुण की अधिकता है और रुद्र तमोगुण की अधिकता से युक्त हैं और सब कारण के रूप को धारण करने वाले हैं। ब्रह्मा स्थूल देह वाले हैं-- हरिलिंग देह से युक्त हैं और रुद्र कारण देह वाले हैं, तुरीय देह तो मैं ही हूँ।

योऽस्य प्रथमा रेखात्सा गार्हपत्यश्चाकारो रजः स्वात्मा
क्रियाशक्तिऋग्वेदः प्रातः सवन महेश्वरौ देवतेति ॥६
योऽस्य द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकारः सत्वमन्तरात्मा
केच्छाशक्तिर्यजुर्वेदी माध्यंदिन सवनं सदाशिवो देवतेति॥७
योऽस्य तृतीया रेखा साऽऽहवनीयो मकारस्तमः परमात्मा
ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं महादेवो देवतेति ॥८

(कालाग्नि रुद्रोपनिषद्)

अर्थात्–'तीन रेखाओं में से प्रथम रेखा तो गार्हपत्य अग्निरूप 'अ' कार रूप, रजोगुण रूप, भूलोक रूप, स्वात्मक रूप, क्रिया शक्ति, रूप, ऋग्वेद रूप, प्रातः सवन रूप और महेश्वर देव के रूप की है। दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि रूप, 'उ' कार रूप, स्वात्म रूप, अन्तरिक्ष रूप, इच्छा-शक्ति-रूप, यजुर्वेद रूप, माध्यदिन सवन रूप और सदाशिव के रूप की है। तीसरी रेखा आह्वनीय रूप, तम रूप, द्युलोक रूप, परमात्मा रूप, ज्ञान शक्ति रूप, सामवेद रूप, तृतीय भवन रूप और महादेव रूप की है।

शक्ति स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा।
एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा ॥
अनन्ताः शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादयः।
इच्छाशक्तिमहेशस्य नित्या कार्यनियामिका ॥
ज्ञानशक्तिस्तु-तत्कार्य-कारणं तथा ।
प्रयोजन च तत्तवेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति ॥
ययेप्सित क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्पयत्यखिलं कायक्षणात् संकल्परूपिणी ॥
(शिवपुराण, वायुसंहिता, उत्तरखण्ड, अ० ७ अ० ८)

अर्थात्-उसकी शक्ति तो स्वाभाविकी है और विद्या विश्व-विलक्षणा हैं। वह एक ही अनेक स्वरूप से सूर्य की प्रभा की भाँति प्रतीत होती हैं। उसकी इच्छा-ज्ञान क्रिया आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। महेश की इच्छा शक्ति कार्यकी नियामिका और नित्य है। ज्ञान शक्ति उसका कार्य है तथा कारण है। तत्व से प्रयोजन बुद्धि रूपा होकर अध्यवसित होता है। क्रिया शक्ति ईप्सित के अनुरूप है और जगत यथाध्यवसित होता है। एक ध्यान मात्र में संकल्प रूप वाली सम्पूर्ण कार्य को सम्पादित कर देती है।

शास्त्रकारों का मत है कि परमात्मा अपनी योग-माया के सहयोग से सृष्टि की यथापूर्व इच्छा से युग-युग में अवतार ग्रहण किया करते हैं। जब पुरुष रूप में अवतीर्ण होते हैं तो ब्रह्मा, विष्णु महेश कहे जाते हैं। उनकी तीन शक्तियों के नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली हो जाते हैं। यह परमात्मा की चितिशक्तिके रूप हैं। जिस प्रकार यह तीन देवता प्रकृति के ३ गुणों के प्रतीक है, उसी तरह यह तीन शक्तियाँ भी त्रिगुणा हैं सत्व प्रधान वैष्णव रूप को महालक्ष्मी रजप्रधान वाली शक्ति को महासरस्वती और तमःप्रधान रौद्र-रूप वाली को महाकाली कहते हैं।

सार यह है कि परमात्मा निरञ्जन, निराकार, निर्गुण, निष्क्रिय और निर्लिप्त है। वह अपनी माया शक्ति से सृष्टि--पालन और संहार करता है। कार्य-भेद से उसी के तीन नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो जाते हैं। जिन शक्तियों के सहयोग से यह महान कार्य सम्पन्न हो पाते हैं,उनका नामकरण महासरस्वती,महालक्ष्मी और महाकाली किया गया।

यौगिक रूप--

त्रिशक्ति--महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती पिण्ड में तीन बन्धन-ग्रन्थियों--रुद्रग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि और ब्रह्म-ग्रन्थि की प्रतीक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधक की जब विज्ञानमयकोश में स्थिति होती है तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो उसके भीतर कठोर, गठीली चमकदार हलचल करती हुई, हलकी गाँठें हैं। इनमें से एक गाँठ मूत्राशय के समीप दूसरी आमाशयके ऊर्ध्व भाग में और तीसरी मस्तिष्क के मध्य केन्द्र में विदित होती है। इन गाँठों में से मूत्राशय वाली ग्रन्थि को रुद्रग्रन्थि आमाशय वाली को विष्णु ग्रन्थि और शिर वाली को ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं ।

इन तीन महाग्रन्थियों की दो-दो सहायक ग्रन्थियाँभी हैं जो मेरुदण्ड स्थित सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में रहने वाली ब्रह्मा नाड़ी के भीतर रहती हैं। इन्हें चक्र भी कहते हैं। रुद्र ग्रन्थि की शाखा-ग्रन्थियाँ मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र कहलाती हैं। विष्णु-ग्रन्थि की दो शाखायें मणिपुर चक्र और अनाहत चक्र हैं। मस्तिष्क में निवास करने वाली ब्रह्म ग्रन्थि के सहायक ग्रन्थि चक्रों को विशुद्ध चक्र और आज्ञाचक्र कहा जाता है। हठयोग की विधि से इन षट् चक्रों का वेधन किया जाता है।

रुद्र-ग्रन्थिका आकार बेरके समान ऊपर को नुकीली,नीचे को भारी और पेंदेमें गड्ढा लिए होता है। इसका वर्ण कालापन मिला हुआ लाल होता है। इस ग्रन्थिके दो भाग हैं, दक्षिण भाग को रुद्र और वाम भाग को काली कहते हैं। दक्षिण भाग के अन्तरङ्ग गह्वरमें प्रवेश करके जब उसकी झांकी की जातीहै तो ऊर्ध्व भाग में श्वेत रङ्गकी छोटी-सी नाड़ी हलका सा श्वेत रस प्रवाहित करती है, एक तन्तु तिरछा पीत वर्ण की ज्योति सा चमकता है। मध्य भाग में एक काले वर्ण की नाड़ी सीप की तरह मूलाधार से लिपटी हुई है। प्राण वायु का जब उस भागसे सम्पर्क होता है तो डिम-डम जैसी ध्वनि उसमें से निकलती है। रुद्रग्रन्थि की आंतरिक स्थिति की झांकी करके ऋषियोंने रुद्रका सुन्दर चित्र अंकित किया है है। मस्तक पर गङ्गाकी धारा, जटा में चन्द्रमा गलेमें सर्प,डमरू की डिम-ध्वनि, ऊर्ध्व भाग में नुकीलापन त्रिशूल के रूपमें अंकित करके भगवान शंकरका एक ध्यान करने लायक सुन्दर चित्र बना दिया। उस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आलंकारिक रूप से रुद्रग्रन्थि की वास्तविकतायें ही भरी गई हैं। उस ग्रन्थि का वाम भाग जिस स्थिति में है, उसकी वायु शृंखलायें, कोण, स्फुल्लिग, तरंगें, नाड़ियां जिस स्थिति में है, उसी के अनुरूप काली का सुन्दर चित्र सूक्ष्मदर्शी आध्यात्मिक चित्रकारों ने अङ्कित कर दिया है।

विष्णुग्रन्थि किस वर्ण की, किस गुण की, किस आकार की, किस आन्तरिक स्थिति की, किस ध्वनि की, किस आकृति की है,यह सब हमें विष्णु के चित्र से सहज ही प्रतीत होता है। नील वर्ण, गोल आकार, शंख-ध्वनि, कौस्तुभ मणि, वनमाला यह चित्र उस मध्य-ग्रन्थि का सहज प्रतिबिम्ब है।

महाग्रन्थि मध्य मस्तिष्क में है। इसके ऊपर सहस्र-शतदल कमल है, यह ग्रन्थि ऊपर से चतुष्कोण और नीचे से फैली हुई हैं। इसका नीचे का एक तन्तु ब्रह्मरन्ध्र से जुड़ा हुआ है। इसी को सहस्र मुख वाले शेष नाग की शय्या पर लेटे हुए भगवान के नाभि कमलसे उत्पन्न चार मुख वाला ब्रह्म चित्रित किया गया है। वाम भाग में यही ग्रन्थि चतुर्भुजी सरस्वती है। वीणा झंकार से ओंकार ध्वनि का यहां निरन्तर गुञ्जार होता है।

यह तीनो ग्रन्थियां जब तक सुप्त अवस्था में रहती है, बँधी हुई रहती हैं तब तक जीव साधारण दीन-हीन दशामें पड़ा रहता है,अशक्ति अभाव और अज्ञान उसे नाना प्रकार से दुःख देते हैं। पर जब इनका खुलना आरम्भ होता है तो उनका वैभव बिखर पड़ता है। मुँह बन्द कली में न जप है, न सौन्दर्य, न गन्ध है आकर्षक पर जब वह कली खिल पड़ती है और पुष्प के रूप में प्रकट होती है तो एक सुन्दर दृश्य उपस्थित हो जाता है। जब तक खजाने का ताला लगा हुआ है, थैली का मुँह बन्द है तब तक दरिद्रता दूर नहीं हो सकती, पर जैसे ही रत्न राशि का भण्डार खुल जाता है वैसे ही अतुलित वैभव का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब इन तीनों का अलग-अलग विवेचन किया जाता है।

महासरस्वती

सरस्वती का आशय भौतिक बुद्धि, संवेदना और ज्ञान से है। अतः सरस्वती की पूजा आधिभौतिक बुद्धि विवेक का उदय, विचार-शक्ति तथा ज्ञान (आत्म प्रकाश) के लिए है।

महासरस्वती का स्वरूप और ध्वनि इस प्रकार है--

घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकम्
हस्ताब्जैर्दधती धनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिनयनामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्।

अर्थात्--जो अपने हस्तकमल में घन्टा, शूल, हल, शंख मूसल, चक्र धनुष और बाण धारण करती है, गौरी की देहसे उत्पन्न, त्रिनेत्रा, मेघास्थित चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, त्रिजगत की आधार धूता, शुम्भादि दैत्यों का मर्दन करने वाली, उस महासरस्वती को हम नमस्कार करते हैं।

महासरस्वती की उत्पत्ति की कथा मार्कण्डेय पुराण में इस प्रकार वर्णित है-

प्राचीन काल में जब शुम्भ और निशुम्भ ने इन्द्र का आसन व समस्त अधिकार छीन लिए तो देवताओं ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए देवी से प्रार्थना की। उन्हें पार्वती के दर्शन हुए जिसके शरीरमें 'शिव' का आविर्भाव हुआ। सरस्वती देवी का पार्वती के शरीर-कोषसे प्रकट होने के कारण 'कोशिकी' नाम हुआ। कोशिकी के रूपलावण्य को देखकर शुम्भ और निशुम्भ के दूतों-चण्ड और मुण्ड ने उन्हें सूचित किया कि इस परम सुन्दरी कन्या का प्राप्त करना दानवपति के लिए महान गौरव की बात होगी। प्रणयप्रस्ताव लेकर सुग्रीव नामक दूत गया। देवी ने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई कि जो युद्ध क्षेत्र में मुझ पर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजय प्राप्त कर के मेरे दर्प को दूर करेगा, वही मेरा पति होने का अधिकारी है। शुम्भ-निशुम्भ को क्रोध आया और सेनापति धूम्र-लोचन को युद्ध के लिए भेजा। वह देवी से मारा गया। चण्ड और मुण्ड भी परलोक पहुँचा दिए गए। तब शुम्भ निशुम्भ अपनी सारी सेना सहित आए और देवी को चारों दिशाओं से घेर लिया। तभी देवी ने घन्टा नाद किया। देवता और उनकी शक्तियाँ उपस्थित हो गईं। उस समय देवीके शरीर से चण्डिका का प्राकट्यहुआ। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। जब देव की शक्तियों के भीषण प्रहारों से दैत्यों की सेना कटने लगी तो रक्त-बीज मैदान में आया। उसकी विशेष यह थी कि उसकी जितनी बूँदें रक्त की भूमि पर गिरती थीं, उतमे ही दैत्यों की उत्पत्ति हो जाती थी और वह भी युद्ध करने लगते थे। र क्त बीज के आक्रमणों से देव सेना में भय छा गया। तब चण्डिका ने उसकी इस प्रकार व्यवस्था की काली को आदेश दिया कि उसके रक्त की एक बूँद भूमिपर न गिरने पाए। उसका सारा रक्त वह पीती जाए। इस योजना से देव-पक्ष में शक्ति आई और रक्त बीज मारा गया। महा-सरस्वती का यह रूप दैत्य विनाशक है। ज्ञान और विद्या का उज्ज्वल वर्ण होता ही है।

अज्ञान और अविवेक रूपी अन्धकार को नष्ट करना ही उसका मात्र उद्देश्य होता है। उसी का प्रतीक यह महासरस्वती है।

सरस्वती रहस्योपनिषद् में महासरस्वती की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया--

ऋषयो ह वै भगवन्तमाश्वलायनं संपूज्यपप्रच्छु-
केनोपायेन तज्ज्ञान तत्पदार्थविभासकम्।
यदुपासनया तत्वं जानासि भगवन् वद।
सरस्वतीदशश्लोक्या सऋचा बीजमिश्रया।
स्तुत्वा जपत्वा परां सिद्धिमालभे मुनिपुंगवाः॥

अर्थात्--'एक समय की बात है भगवान् आश्वलायन के निकट

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋषिगण गये और उनकी विधिवत् पूजा कर प्रश्न किया-भगवन् ! जिस ज्ञान के द्वारा 'तत्' पदात्मक परमेश्वर का स्पष्ट बोध होता है, उस ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हो? आपको जिस देवता की उपासना द्वारा तत्वज्ञान की प्राप्ति हुई है,इसके सम्बन्धमें बताने की कृपा करें ।'

भगवान् आश्वलायन ने कहा-ऋषियो ! मैंने बीजमन्त्र सहित इस ऋषियों वाली सरस्वती दशश्लोकों के द्वारा उपासना करते हुए परा-सिद्धि को प्राप्त किया है ।

'दशश्लोकी सरस्वती' का विवरण इस प्रकार है ।

प्रथम श्लोक-

या वेदांतार्थतत्वैकस्वरूपा परमेश्वरी ।
नामरूपात्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती ।।

अर्थात् 'जिस सरस्वती का स्वरूप वेदान्त का साहभूत ब्रह्मतत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपोंमें प्रकट है,वे सरस्वती मेरी रक्षिका हो।'

द्वितीय श्लोक-

या संगोपांगवेदेषु चतुष्वकेव गीयते ।
अद्वैता ब्रह्मणः शक्तिः सा मां पातु सरस्वती ।।

अर्थात् 'वेदों और उनके अङ्ग-उपांगों में जिन एक देवकी स्तुति की जाती है तथा जो परब्रह्म की अद्वैत शक्ति है भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हों ।

तृतीय श्लोक-

या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणैव वर्तते ।
अनादिनिधनाऽनन्ता सा मां पातु सरस्वती ।।

अर्थात्--जो वर्ण, पद, वाक्य में अर्थों सहित सर्वत्र व्याप्त हैं, जो आदि अन्त से परे एवं अनन्त रूप वाली हैं वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हों ।

चतुर्थ श्लोक-

अध्यात्ममधिदैवं च देवानां सम्यगीश्वर ।
प्रत्यगास्ते वदन्ती या सा मां पातु सरस्वती ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात्--'जो सरस्वती देवताओंकी प्रेरणात्मिका शक्ति, अधिदैव-रूपिणी एवं हमारे भीतर वाणी रूप में प्रतिष्ठित, वे भगवती मेरी रक्षिका हों।

पञ्चम श्लोक-

अन्तर्याम्यात्मना विश्व त्रैलोक्य या नियच्छति।
रुद्रादित्यादिरूपस्था सा मां पातु सरस्वती॥

अर्थात्--जो सरस्वती अन्तर्यामी रूप से लोकत्रय का नियन्त्रण करने वाली है तथा जो रुद्र-आदित्य आदि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित हैं वे हमारी रक्षिका हों।'

षष्ठ श्लोक-

या प्रत्यग्दृष्टिभिर्जीवैर्व्यज्यमानाऽनुभूयते।
व्यापिनी ज्ञप्तिरूपैका सा मां पातु सरस्वती॥

अर्थात्-जो सरस्वती देवी अन्तद्रग वाले जीवों के समक्ष विभिन्न रूपों में प्रकट होती तथा जो ज्ञप्ति रूप से व्याप्त हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हों।'

सप्तम श्लोक-

नामजात्यादिभिर्भेदैः रष्टधा या विकल्पिता।
निर्विकल्पात्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती॥

अर्थात्--'जो देवी सरस्वती नाम रूप के द्वारा अष्टधा बनी हुई तथा निर्विकल्परूप में भी प्रकट है, वे भगवती मेरी रक्षा करने वाली हों।'

अष्टम श्लोक-

व्यक्ताव्यक्तगिरः सर्वे वेदाः व्याहरन्ति याम्।
सर्वकामदुधा धेनुः सा मां पातु सरस्वती॥

अर्थात् व्यक्त शब्दात्मक वेदादि शस्त्र जिसके स्वरूप का गुणगान करते हैं, जिसके वृहद् रूप का प्रतिपादन करते हैं, वे सर्वकाम दुधा धेनु रूपा सरस्वती हमारा पालन करें।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नवम श्लोक–

यां विदित्वाऽखिल'बन्धं निर्मथ्या खिलवर्त्मना ।
योगीयाति परं स्थानं सा मां पातु सरस्वती ।।

अर्थात्–जिन सरस्वती को ब्रह्म विद्या रूप से जान लेने पर योगी राज सभी बन्धनों को काट डालते हैं,जिससे पूर्ण मार्ग द्वारा उन्हें परम-पद की प्राप्ति होती है, वे देवी मेरी रक्षा करने वाली हों ।

दशम श्लोक–

नामरूपात्मकं सर्वं यस्यामावेश्यतां पुनः ।
ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मां पातु सरस्वती ।।

अर्थात्–हे सरस्वती ! तुम देवियों में, नदियों में और माताओं में भी सर्वश्रेष्ठ हो । हम धन के अभाव से निन्दा को प्राप्त हुए के समान हो रहे हैं, तुम हमें धन रूप में समृद्धि दो ।'

इन दश श्लोकों की सरस्वती-उपासना में दसवाँ श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उसमें सबका सार आ गया है, यही सरस्वती तत्व है । इसमें सरस्वती की विभिन्न संज्ञाओं का दिग्दर्शन कराया गया है वे संज्ञाएं हैं–अम्बितमा नदीतमा और देवीमता ।

अम्बितमा में शब्द 'अम्बा' का अर्थ माता है । अम्बितमा का अर्थ है–मासृतमा । उसका भाव यह है कि अखिल ब्रह्माण्ड में जितनी मातृ-शक्तियाँ काम करती हैं, तुम उन सबका नेतृत्व करती हो, उन सबमें बड़ी हो । ज्ञान का महत्व सबसे अधिक है ही जो ज्ञान का मूल स्रोतहै, उससे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? अज्ञानान्धकार को दूर करने से श्रेष्ठ और कल्याणकारी कार्य और कौन सा हो सकता है? जिसे तुम्हारे दुग्ध के पयपान करने का सौभाग्य प्राप्त हो वह अपने जीवन को धन्य मानता है, ऐसी हैं, हमारी 'अम्बा' सरस्वती ।

'नदीतमे' का अर्थ हैं–समस्त नदियों में श्रेष्ठ हो । 'नद' धातु का अर्थ है–बन्द करना । शब्द के मूल में गति, क्रियाशीलता रहती है । नदी उसे कहते हैं जो पार्वतादि से निकल कर शब्द करती हुई किसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बड़े नदी या समुद्र में जा मिलती है। नदी को तो समुद्र में मिलना ही है, अतः जो उसका आश्रय ग्रहण करेगा। यह भी समुद्र निश्चय हो जायगा। नदी का विशेषण शब्द-गति है अतः जो शब्द-ब्रह्म का आश्रय ग्रहण करता है, उसका अन्तिम लयस्थल ईश्वर ही है। यह सरस्वतीके आध्यात्मिक भाव से भी लक्षित होता है। वाह्य दृष्टि से तो हम इसके दर्शन प्रयोग में करते है-जहाँ गंगा, यमुना मिलती है। इन तीनों के मिलन को संगम कहा जाता है। योग की भाषा में यह संगम मूलाधार में इडा पिंगला के साथ सुषुम्ना का होने पर होता है। इस त्रिवेणी में जो स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त करता है वह नि.सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है। 'नदीतमे' का आध्यात्मिक भाव यही है।

'देवितमे में 'दिव' धातु का अर्थ है दीप्ति, प्रकाश और ज्योति, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करके ज्ञान की ज्योति और प्रकाश देने वाली जितनी भी शक्तियाँ विश्व में विद्यमान हैं, उन सबसे तुम श्रेष्ठ हो।

तभी तो वेद-(ज्ञान) की उत्पत्ति सरस्वती से बताई गई है।

आत्मनाकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति,
वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोंकारो भवति, ओंकाराद्
व्याहृतिर्भवति, व्याहृतितो गायत्री भवति, गायत्र्याः
सावित्री र्भवति, सावित्र्या सरस्वती भवति
सरस्वत्या वेदा भवन्ति, वेदेभ्यो लोकाः।

(गायत्री हृदय)

"आत्मा रूपी ब्रह्म से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु होती है, वायु से अग्नि और अग्नि से ओंकार होता है। ओंकार से व्याहृतियां होती है। व्याहृतियों से गायत्री, गायत्री से सावित्री, सावित्री से सरस्वती और सरस्वती से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। वेदों से समस्त लोकों का आविर्भाव होता है।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरस्वती की श्रेष्ठता का रहस्य तो उसके अर्थ में निहित है। सरस्वती शब्द-सृ 'धातु के आगे असुर प्रत्यय लगाने से सरस् पद सिद्ध होता है। धातु का अर्थ हे गति प्रसारण विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है और कहता है--"ईदर एट रेस्ट इज डार्कनेस ईदर इन मोशन इज लाइट" गति से ही प्रकाश बना रहता है। जहाँ गति का अवरोध होता है, वहीं अन्धकार और संकोच आ जाता है, वहीं ज्ञान और विद्याधन का अभाव हो जाता है। धन की प्रचुरता के लिए आवश्यक है कि गति निरन्तर बनी रहे। सरस्वतीसे धन सम्पत्ति माँगने का अभिप्राय यही है कि हमारी गति में कोई वाधा उपस्थित न हो। गति बनी रही तो आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार सम्पत्तियों का वाहुल्य भी बना रहेगा गति के अभाव में अन्धकार दिखाई देगा।

सरिता के जल में गति रहती है तभी वह पवित्र व स्वच्छ रह पाता है, गति रुकने पर तो वह सड़ने लगता है। अतः जो प्राणियों के हृदय को 'सरस'-जल की तरह पवित्र व स्वच्छ बनाती है। वह सरस्वती है। सरस्वती पवित्रता की प्रतीक है।

सरस्वती का वर्ण श्वेत है। श्वेत वर्ण मोक्ष का, सात्विकता का प्रतीक है, ज्ञान और प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है श्वेत वर्ण में स्वाभाविकता है। इस पर सभी रंग सुविधापूर्वक चढ़ाए जा सकते हैं, उतारने पर वही शेष रह जाता है। श्वेत रंग ईश्वर की संज्ञा है। वही प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। श्वेत वर्ण अद्वैत के लिए प्रेरित करताहै। श्वेत रंग की उत्पत्ति तव हो पाती है, जब सारे रंग क्रियाशील रहते हैं। जब वह मूर्छित रूप में एक स्थान पर पड़े रहते हैं, तो वह अपने-अपने वास्तविक रूप में ही दिखाई देते है। वे एकता से ही श्वेत बनते हैं। जगत का भेद अस्वाभाविक है। अभेद स्वाभाविक है। द्वैत में अज्ञानता है। अद्वैत में ज्ञान और प्रकाश है। यही सरस्वती के श्वेत वर्ण की प्रेरणा और अभिप्राय है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महासरस्वती पूजन-विधि–

सरस्वती रहस्योपनिषद् में सरस्वती की दशश्लोकी उपासना का वर्णन है। भगवान आश्वलयन से ऋषियों ने पूछा तो उन्होंने भगवती सरस्वती की उपासना-विधि का वर्णन किया। महर्षि आश्वलायन ने कहा–

इस श्री सरस्वती दशश्लोकी महामन्त्र का ऋषि मैं ही हूँ। इसका छन्द अनुष्टुप, देवता वागीश्वरी और बीज यद्वागहैं। शक्ति 'देवी वाच' कीलक 'प्रणो देवी'है। इसका विनियोग श्री वागीश्वरी देवताके प्रीत्यर्थ है। अङ्गन्यास श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धारणा वाग्देवता और महासरस्वती इन नाम मन्त्रों से किया जाता है।

जप से पहिले इस श्लोक के उच्चारण से प्रणाम किया जाता है।

नीहारहारघनसनसारसुधाकराभां
कल्याणदां कनकचम्पकदामभूषाम्।
उत्त ुँगपीनकुचकुम्भमनोहरांगीं
वाणीं नमामि मनसां वचसां विभून्यै॥

'कल्याण-प्रदायिनी, हिम, कपूर, मुक्ता अथवा चन्द्रप्रभा के समान शुभ्र कान्तिवती, सुवर्ण के समान, पीले चम्पक पुष्पों की काला से अलंकृत, उन्नत सुस्पष्ट वक्ष सहित सुन्दर अङ्ग वाली वागेश्वरी को मन और वाणी द्वारा विभूति की सिद्धि के निमित्त नमस्कार करता हूँ।

'ओं प्रस्णो देवी' मन्त्र के ऋषि भारद्वाज, छन्द गायत्री और देवता सरस्वतीजी हैं। ओं नमः बीज शक्ति तो है ही, साथ ही कीलक भी है अभीष्ट कार्य की सिद्धि के निमित्त इसका विनियोग और मन्त्र के द्वारा अङ्गन्यास किया जाता है।

प्रथम मन्त्र–

ॐ प्रस्णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
धी नाम वित्र्यवतु।

जो दानादि गुण से युक्त हैं, जो अन्नदात्री हैं, जो अपने शरणागत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपासकों की रक्षा करने वाली हैं, वे सरस्वती देवी हमारे लिए तृप्ति प्रदान करें।

'आ नो देवा' इस मन्त्र के ऋषि अत्रि छन्द त्रिष्टुप् और देवता सरस्वती हैं। 'ह्रीं' बीज शक्ति और कीलक है। इच्छित कार्यकी सिद्धि के लिए इसका विनियोग तथा इसी मन्त्र द्वारा न्यास किया जाता है।

द्वितीय मन्त्र–

ह्रीं आनो देवो वृहतः पर्वतादा सरस्वती तजता गन्तुयज्ञम्।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाममुशती शृणोतु ॥

'जगन्माता ब्रह्मरूपिणी, चिद्रूपा सर्वव्यापिनी हैं और हमारे और अलभ्या हैं। माँ की अव्यक्त अवस्थाएँ भी हमारे लिए अनभिगम्य है। माँ हमारे ऊपर कृपा करके अपनी अव्यक्त सूक्ष्मावस्था से हमारे यज्ञ (पूजा) की सिद्धि के लिए आविर्भूत होवे। वही यज्ञ की प्रवर्तिका हैं। हमारी स्तुति को वे सादर ग्रहण करे।'

'पावकान' इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री, देवता सरस्वती है बीज, शक्ति और कीलक 'श्री' है। इसका विनियोग कामना सिद्धि के निमित्त है तथा इसी मन्त्र द्वारा अङ्गन्यास करने का विधान है।

तृतीय मन्त्र–

श्री पावकानः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः।

'सरस्वती देवी हमारी यज्ञ-कामना करें। प्रचुर अन्न और धन के लिए। वे अन्न-यज्ञ की अधिष्ठात्रीं हैं उनकी कृपा से हम कर्म करके धन प्राप्त करें।'

'चोदयत्री०' इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री, देवता सरस्वती हैं। वीज शक्ति और कीलक 'ब्लू' तथा कार्य पूर्ति के लिए इसका विनियोग एवं मन्त्र द्वारा ही अङ्गन्यास किया जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थ मन्त्र–

ब्लूँ चोदयित्री सूनृतानाँ चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ।

जो हमें सूनृत वाक्यों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति देती हैं, तथा जो सुमति और चेतना प्रदान करतीहैं, वही सरस्वती हैं । हम सरस्वती का यज्ञ करेंगे और सरस्वती ही यज्ञ करावेंगी ।

'महोअर्णः' इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री और देवता सरस्वती हैं । बीज, शक्ति और कीलक 'सों' है । इसमें मन्त्र के द्वारा ही न्यास किया जाता है ।

पञ्चम मन्त्र–

सोः महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयाति केतुना ।
धियो विश्वा विराजति ॥

'जो सरस्वती इस महार्णव रूप समस्त विश्व का संचालन करती हैं, जो विश्व की ज्ञान शक्ति स्वरूप हैं, वे हम पर कृपा करें ।'

'चत्वारिवाक्० ऋषि उचथ्य-पुत्र दीर्घतमा, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सरस्वती, वीज, शक्ति, कीलक एं । मन्त्र द्वारा अङ्गन्यास किया जाता है ।

षष्ठ मन्त्र–

एं चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि
विदुर्ब्राह्मणां ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता
नेङ्गयंति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।

'वाक् की जो चार अवस्थायें परा, पश्यन्ती मध्यमा और बेखरी है इनमें से तीन अवस्थायें गुहानिहित (अप्रत्यक्ष) वे ही जान सकते हैं जो मनीषी हैं, योगी हैं वे दिव्य दृष्टि द्वारा उन अवस्थाओं को प्रत्यक्ष करते हैं । मनुष्य जिस वाक् का प्रयोग करते हैं वह चतुर्थ (बैखरी) अवस्था है ।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'यद्वाग्वदन्ति०' ऋषि भार्गव: छन्द त्रिष्टुप् देवता सरस्वती है। बीज, शक्ति, कीलक 'क्लीं' है। मन्त्र द्वारा ही न्यास होता है।

सप्तम मन्त्र–

क्लीं यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्रव लज्जं दुदुरे पयांसि
क्व लिवदस्या: परमं जयाम ॥

'राक विश्वव्यापिनी है। और उसके द्वारा समस्त भूत व्याप्त है। जो अल्प चैतन्य हैं, वे भी वाक् (वोली) का व्यवहार करते हैं। देवताओं की भी वही संचालका है। माँ, तुम्हारी परमावस्था को हम कव जान सकेंगे और कव तुम्हारे पयोधरों से शदित चतुष्ट्य रूपी दूध को प्राप्त कर सकेंगे।'

'देवी वाच' के ऋषि भार्गव, छन्द त्रिष्टुप् देवता सरस्वती। बीज, शक्ति कीलक 'सो' है। मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिए।

अष्टम मन्त्र–

सो देवा वाचमजननन्त देवास्तांविश्वरूपा: पशवो वदन्ति।
सा नो मत्द्रेष मूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपमुष्टुतेतु ॥

देवगण जिस मध्यमा वाक् सब प्राणियों के अन्दर उत्पन्न करते हैं, जो क्रमश: वैखरी अवस्था में परिणित होती है वह सरस्वती देवी हमें तृप्त करें। मनुष्य जिस प्रकार गौ दुह कर कृतार्थ हो जाते हैं उसी प्रकार हे माता हम तुम्हें दुहकर कृतार्थ हों।'

'उत त्वं० ऋषि बृहस्पति, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सरस्वती। बीज शक्ति और कीलक 'स'। मन्त्र द्वारा ही त्याग करना चाहिए।

नवम मन्त्र–

स उत त्वं पश्यन्न ददर्शवाचमुतउत त्वं शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वां विसस्त्रे जाये पत्येव उशती सुवासा ॥

माता! तुम्हारी कृपा से ही सब बातें करते हैं, तुम्हारी कृपा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से ही विचार करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही तुम्हें असत् सिद्ध करते हैं, परन्तु कोई तुम्हें जान नहीं सकता। तुम्हें देखते हुए भी देख नहीं पाता। जिस पर तुम्हारी कृपा होती है वही तुमको देख पाता है।'

'आम्बित में, ऋषि गृत्समद, छन्द अनुष्टुप्, देवता सरस्वती, बीज शक्ति, कीलकाऐं। मन्त्र द्वारा न्यास करे।

दशम मन्त्र--

ऐसम्वितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्त इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥

'मातृगणों में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ देवियों में श्रेष्ठ महासरस्वती! हम अप्रशस्त के समान अर्थात् धनाभाव में असमृद्धवत् ही हो रहे हैं। एवं हे माता! हमें प्रशस्ति अर्थात् धन सम्पत्ति-महानता प्रदान करो।'

महालक्ष्मी

लक्ष्मी का आशय केवल धन-धान्य की वृद्धि ही नहीं वरन् हर प्रकार की उन्नति, सम्मान, बड़प्पन्न आनन्द, ऐश्वर्य का समावेश लक्ष्मी के स्वरूप में ही हो जाता है। अप्पय दीक्षित ने तो अन्तिम मुक्ति को भी मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी कहा है। इसलिए लक्ष्मी पूजा का अर्थ है जगत की स्थिति की केन्द्र रूपी देवी शक्ति की पूजा।

शास्त्रों का विश्वास है कि शक्ति ही सब कुछ है, वे ही महान् शक्ति शालिनीहैं, इनके बिना ब्रह्मभी कुछ कार्य नहीं कर सकते,निष्क्रिय रहते हैं। इस महान शश्ति का संज्ञा 'महालक्ष्मी' है। देवी माहात्म्यमें महालक्ष्मी से ही समस्त देवी देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन उपलब्ध होता है। क्रम इस प्रकार से है-महालक्ष्मी से सरस्वती, लक्ष्मी और महाकाली। सरस्वती से गौरी और विष्णु, महालक्ष्मी से लक्ष्मी और हिरण्यगर्भ, महाकाली से सरस्वती और रुद्र आदि।

महालक्ष्मी का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार हैं-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ अक्षस्त्रक्परशुमदेषुकुलिशपद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिर्मसि च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशुसुदर्शने च दधतीं हस्तै प्रसन्ननानां ।
सेवे सरिभभदिनीमिह महालक्ष्मी सरौजस्थिताम् ॥

अर्थात् मैं कमल के आसन पर स्थित प्रसन्न मुख महिषासुर-मर्दिनी महालक्ष्मी का ध्यान करता हूँ जो स्वहस्त में अक्षमाला परशु, गक्षा, वाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका दण्ड शक्ति, खंग चर्म ढाल, शंख, घण्टा, मधुपाल, शूल, पाश और सुदर्शन चक्र धारण करता है ।'

महालक्ष्मी की उत्पत्ति शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित की गई है--'देव और दानवों में सौ वर्ष तक युद्ध होने पर देवता पराजित हुए । दानवों का नेता महिषासुर इन्द्र बना । देवताओं का प्रतिनिधि-मण्डल ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् विष्णु और शिव के पास गया । इनके शरीर में एक तेजपुञ्ज निकला । जिसने नारी का शरीर धारण कर लिया । सभी देवताओं ने अपने अस्त्र-शस्त्र इसे समर्पित किए । देवीको महालक्ष्मी का नाम दिया गया ।'

महालक्ष्मी की महिमा शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है-

मत्प्राप्ति प्रति जन्तूना संसारे पततामथ ।
लक्ष्मी पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ।
ममापि च मतं त्ये तन्नान्यया लक्षणं भवेत् ॥

(पाँचरात्रगण)

'भगवान् कहते हैं कि संसार में जो प्राणी मेरा कृपा पात्र बनना चाहते हैं, महर्षि ने सिद्ध किया है कि उनके लिए लक्ष्मी (शक्ति) ही पुरुषाकारभूता है । मेरा भी ऐसा ही मत है ।'

अहं मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपति स्वयम् ।
लक्ष्मीः पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्ति योगिनी ।
[illegible] विशेषोऽयं निगमान्तेषु श्रूयते ॥ (पाँचरात्रगण)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं स्वयम् लक्ष्मीपति ही सत्य हूँ। मेरी पत्नी पुरुषाकार देवी है। मैं उपाय हूँ वह पुरुषाकार है।'

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्ति-प्रदायिनी ।
मन्त्रमूर्त सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ।।
आद्यन्तरहिते देवि आदिशक्ते महेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ।

अर्थात् 'हे देवि ! आप सिद्धि और बुद्धि दोनों के प्रदान करने वाली हैं तथा सांसारिक सुखों के उपभोग ओर आवागमन-रहित परमार्थ एवं मोक्ष दोनों को देने वाली हैं। हे देवि ! आप मन्त्र की मूर्ति वाली हैं। हे महालक्ष्मे ! आपके लिए नमस्कार है । हे देवि ! आप आदि और अन्त इन दोनों से रहित हैं। आप आदि शक्ति और माहेश्वरी हैं। योग से समुत्पन्न योग को जन्म देने वाली हैं। हे महालक्ष्मे! आपको मेरा नमस्कार है।''

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृमधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सताँ कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नतां स्म परिपालय देवि विश्वम् ।।

अर्थात् 'जो श्री अर्थात् स्वयं महालक्ष्मी स्वयं पुण्यत्माओं के यहाँ अलक्ष्मी बन कर रहती है, पापियों के हृदय में बुद्धि रूप से सत्पुरुषों के हृदय में श्रद्धा, और कुलीनों के हृदय में लज्जा (पुण्यापुण्य विवेक) रूप से रहती है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवी! तू विश्व का पालन कर।'

'लक्ष्मी-तन्त्र (अ० ६२) में महालक्ष्मी के पाँच कार्यों का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-

शक्तिर्नारायणस्याह नित्या देवी सदोदिता ।
तस्या में पञ्चकर्माणि नित्यानि त्रिदशेश्वर: ।।
तिरोभावस्तथा सृष्टिस्थितिस्संहृतिरेव च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुग्रहं इति प्रोक्तं मदीयं कर्मपञ्चकम् ।।

अर्थात् 'हे त्रिदशेश्वर ! मैं नारायण की शक्ति हूँ । मैं नित्या और सदा ही उदित रहती हूँ । उसमें मेरे नित्य पाँच कर्म होते हैं । तिरोभाव-सृजन-स्थिति-संहार और अनुग्रह-ये ही मेरे पांच कर्म कहे गये हैं ।'

इसी तन्त्र (अ० ।३-१) में उनके वास्तविक स्वरूपका स्पष्टीकरण किया गया है-

नित्यनिर्दोषनिस्सीमकल्याणगुणशालिनी ।
अहं नारायणी नाम सासत्ता वैष्णवी परा ।।

यहाँ महालक्ष्मी स्वयम् कहती हैं कि 'मैं नित्य, निर्दोष, असीम, कल्याण गुणशालिनी नारायणी नाम की परा सत्ता हूँ ।'

इस मन्त्र के 'अ० २।११।१२ में महालक्ष्मी को विष्णु की अहंता नाम की शक्ति कहा गया है-

तस्य या परमा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ।
सर्वावस्थां गता देवी स्वात्मभूतानपायिनी ।।

यहाँ महालक्ष्मी इन्द्र को सम्बोन्धित करते हुए कहती है कि उस परब्रह्म की जो चन्द्र की चाँदनी के समान समस्त अवस्थाओं के साथ रहने वाली देवी स्वात्मभूता अनापायिनी अहंता नाम की पराशक्ति है, वह सनातनी शक्ति मैं ही हूँ ।'

लक्ष्म्या सहहृषीकेषो देव्या कारुण्यरूपया ।
रक्षकस्सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते ।

अर्थात्-'भगवान् हृषीकेश करुणा के स्वरूप वाली देवी लक्ष्मी के साथ ही रक्षक होते हैं-ऐसा यह सबका सिद्धान्त है और वेदान्त में भी यही गाया जाता है ।

अणिमादिका सिद्धीश्च पाताल गुटिकाञ्जनाः ।
[illegible] ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् केवल लक्ष्मी जी की आराधना से ही अणिमादि सिद्धि, पाताल सिद्धि गुटिका-सिद्धि, वेताल सिद्धि और अंजनादि सिद्धि उपलब्ध होती है।

ठीक भी है ज्ञान,प्रेम, वैराग्य, भक्ति उसी की शक्तियाँ हैं। दैवी सम्पत्ति, षट् सम्पत्ति अर्थ सम्पत्ति सब उन्हीं के चमत्कार हैं। लेखन, वक्तृत्व प्रजापालन और राजशक्ति की नींव में वे ही निहित हैं, वीरता उदारता, प्रेम वात्सल्य, साधुता, चतुरता, त्याग, संयम, तप, ब्रह्मतेज में वही विद्यमान हैं, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जय की शक्तियाँ उसी से उद्भूत होती हैं। श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा, शान्ति, कान्ति उसी के विशेषण हैं। राधा, सीता, सती, दुर्गा, गायत्री, सरस्वती, सावित्री, आदि उसी के नाम हैं।

महालक्ष्मी का ध्यान रक्त वर्ण से किया जाता हे। रक्तवर्ण रजोगुण का सूचक है। इसीलिए साधारणतः महालक्ष्मी को वैभव और सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कहा भी है 'उद्योगिन' पुरुष सिहमुपैत्ति लक्ष्मी' अर्थात् परिश्रमी व्यक्ति को ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, आलसी को नहीं। इसलिए महालक्ष्मी अपने उपासकों को कर्मयोगी और व्यवहार कुशल देखना चाहती हैं।

महालक्ष्मी कमल के आसन पर स्थित रहती हैं। कमल की विशेषता यह हैं कि वह कीचड़ में उत्पन्न होता है उसके चारों ओर कीचड़ और गन्दा पानी रहता है परन्तु फिर भी वह निर्मल और पवित्र बना रहताहै। चारों ओरके गदले वातावरण में रहकर भी हम गँदले न हों। गृहस्थ और जगत में रहकर हम उसमें आसक्त और लिप्त न हों, यही कमलासना महालक्ष्मी की प्रेरणा है।

महालक्ष्मी-पूजन-विधि--

'सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्' में श्री सूक्त की ऋचाओं द्वारा उपासना का इस प्रकार निर्देश दिया गया है–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन पन्द्रह ऋचाओं के ऋषि इन्दिरा, आनन्द, कदम और चिवलीत है। प्रथम मन्त्रकी ऋषि इन्दिरा शेष मन्त्रों के ऋषि पुत्र है। प्रथम तीन ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप्, चौणी का बृहती, पाँचवीं-छठवीं का त्रिष्टुप्, सातवीं से चौदहवीं तक अनुष्टुप् और प्रस्तार-पंक्ति है। देवता श्रीं और अग्नि, बीज 'हिरण्यवर्णम्' शक्ति का 'सोस्मि' है। हिरणमयी, चन्द्रा, रजतस्रजा, हिरण्यास्रजा, हिरण्या, हिरण्यवर्ण इन नामों का चतुर्थी विभक्ति में रखकर ओंकार से प्रारम्भ कर अन्त में नमः उच्चारण करता हुआ न्यास करे-

फिर श्री सूक्त के मन्त्रों से अङ्गन्यास करे। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ हिरण्यवर्णा सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरणमयी लक्ष्मी जानवेदो मआवह ॥१
ॐ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्या हिरण्य विन्देयं गामश्व पुरुषानहम् ॥२
ॐ अश्वपुर्वा रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवी मुपह्वये श्रीर्मादेवी जुंषताम् ॥३
ॐ कांसोस्ति तां हिरण्यपकारा
मार्द्रा ज्वलन्तीं तृप्ताँ तर्पयन्तीम् ॥
पद्मे स्थिता पद्मवर्णा तामिहोपह्वये श्रियम् ॥४
ॐ चन्द्रा प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं ।
श्रियं लोके देवजुष्टामुदारम् ॥
ता पद्मनेमि शरणामहं प्रपद्ये
अलक्ष्मी मे नश्यतां त्वा वृणोमि ॥५
ॐ आदित्वर्णे तपसोधिजातो
वमस्पति स्तववृक्षोय बिल्वः ।
तस्य फलानि नुदन्तु
मायांतरायाश्च बाह्याऽलक्ष्मी ॥६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ॥
प्रादुर्भूतोस्मि राष्ट्रेस्मि कीर्तिवृद्धिं ददातु मे ॥७
ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठा महालक्ष्मी नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥८
गन्धद्वारा दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥९
ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशुनां रूपमन्नस्य श्रीः श्रयतांयशः ॥१०
ॐ कर्दमेन प्रजाभूता मनिसम्भव कर्दमः ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११
ॐ आपः स्रजन्त स्निग्धानि चिक्लीत वश मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२
आर्द्रां पुष्करिणी पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरणमयी लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥१३
ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥१४
ॐ तास्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनाम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूत गावो दास्यो
ऽश्वान् विदेयपुरुषानहम् ॥१५
ॐ यः शुचि मयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रिय पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६
अमलकमलशस्था तद्रजः पुञ्जवण
करकमल घृतेष्वा भीतियुग्मास्बुजा च ।
मणिकटक विचित्रालंकृताकल्पजालैः
सकल भुवनमाता सन्वतं श्रीः श्रियै नः ॥

'अरुण वर्ण के कमलदल पर विराजमान, कमल-पराग की राशि के समान पीले रङ्ग वाली, वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो हाथोंमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कमल-पुष्प-धारिणी, मणिमय कङ्कणों से अलकृत, सब लोकों की माता श्री महालक्ष्मी हमें निरन्तर श्री से सम्पन्न बनावें ।

इसके वाद 'सौभाग्यलक्ष्युपनिषनिषद्" में विधि का निर्देष इस प्रकार है-

तत्पीठम् । कर्णिकायां ससाध्यं श्रीबीजम् ।

वस्वादित्यकलापद्मेषु श्रीसूक्तगतार्धार्धर्चा तद्वहिर्यः शुचिरिति मातृकया च श्रियं यन्त्राङ्गददर्श विलिख्य श्रियमावाहयेत् ।।५

अंगैः प्रथमाऽऽवृतिः । पद्माभिर्द्वितीया । लोकेशैस्तृतीया ।

तदायुधैस्तुरीयाऽऽवृतिर्भवति । श्रीसूक्तैरावाहनादि । षोडश सहस्रजापः ।।६

सौभाग्यरर्मकाक्षर्या भृगुनृचद्गायत्रीश्रिय ऋष्यादय ।

शमिति वीजशक्तिः श्रीमित्यादि सङ्गमम् ।।७

ययादभयो द्विपद्मा भयवरदकरा तप्तकातस्वरां मां

शुभाभ्राभ्रामेभयुग्मद्वयकरवृतकुम्भाद् भिरासिच्यमाना ।

रत्नौवानद्धमौर्लिविमलतरदुकूलावार्तलेपनाढ्या

पद्माक्षीं पद्मनाभोरसि कृतवसतिःपद्मया श्रीः श्रियैः नः

'पीठ कर्णिका के भीतर साध्य कार्य श्री बीज लिखे फिर अष्टदल द्वादशदल और षोडशदल वाले पद्मों पर भूवृतों के मध्य में श्रीसूक्तकी आधो-आधी ऋचा लिखे । फिर निर्भू वृत्त में फलश्रुतिरूप ऋचा लिख षोडशार के वीच में और ऊपर 'अ' से 'स' कार तक मातृका वर्णों का लेखन करे । सबसे ऊपर निर्भू वृत्त से वषड् सम्पन्न त्वरित बीज के सहित श्री बीज का लेखन करे । इस प्रकार दश अ गों वाला श्रीचक्र बनावे । अङ्ग मन्त्रों द्वारा प्रथम आवरण पूजा की जाती है । पद्म विधियों के द्वारा दूसरी बार आवरण पूजा की जाती हैं । लोकपालोंके द्वारा तृतीया आवरण-पूजा होती हैं । वज्रादि आयुधों के द्वारा चतुर्थ आवरण पूजा का क्रम है । श्रीसूक्त की ऋचाओं से आवाहनादि कार्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किये जाते हैं। इतना करने के पश्चात् पुरश्चरण के लिए सोलह हजार मंत्र-जप का विधान है।'

'एकाक्षर सौभाग्यलक्ष्मी मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द निचृद् गायत्री और देवता श्री है। बीज 'श्रीं' और अङ्गन्यास 'श्रीं' इत्यादि के द्वारा होता है।'

जिन श्रीदेवीने अपने दो हाथों में कमल तथा दो में वर मुद्रा और अभय मुद्रा ग्रहण की हुई है, जिनके देह की कान्ति स्वर्ण के समान है, शुभ मेघ के समान आभा वाले दो हाथियों की सूड़ों में धारण किए कलशों के जल से अभिषिक्त हो रही हैं, जिनके सिर पर लाल वर्ण के रत्नों का मुकुट सुशोभित है, जिनके अङ्ग राग छिपे हुए हैं, जो स्वच्छ वस्त्र वाली हैं, कमलके समान नेत्रवाली, पद्मनाभ निवासिनी, कमलासना, श्री देवी हमारे निमित्त परम ऐश्वर्य प्रदान करावें।' ।५-८।

तत्पीठम् । अष्टपत्रं वृत्तत्रयं द्वादशराशिखण्डं चतुरश्र रमापीठं भवति । कर्णिकायां ससाध्यं श्रीबीजम् । विभतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्तिः सन्नतिर्व्युष्टिरुत्कृष्टि ऋद्धिरिति प्रणववादिनमोऽन्तैश्चतुर्थ्यन्तैर्नवशक्ति यजेद् ॥९
अंगैः प्रथमाऽऽवृत्तिः । वासुदेवादिर्द्वितीया । बालक्यादिस्तृतीय । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी भवति । द्वादशलक्षजपः ॥१०
श्रीलक्ष्मीर्वरदा विष्णुपत्नि वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्णमालिनी रजतस्रवा स्वर्णप्रभा स्वर्णप्रकारा पद्मवासिनी पद्महस्ता पद्मप्रिया मुक्तालंकारा चन्द्रा सूर्या विल्वप्रिया ईश्वरी भुक्तिमुक्तिर्विभूतिर्ऋद्धिः समृद्धिः कृष्टिः पुष्टिर्धनदा धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा धात्री विधात्रीत्मादिप्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ता मन्त्रः। एकाक्षरवङ्गादिपीठम् । लक्षजपः । दशांशं तर्पणम् । शतांशं हवनम् । सहस्रांश द्विजतृप्ति ॥११॥ निष्कामानान्नेव श्रीविद्यासिद्धि नमः न कदाऽपि सकामानामिति ॥१२॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीन वृतों से युक्त रमापीठ यन्त्र अंकित करे । अष्टदल कर्णिकामें साध्य रहित श्रीबीज लिखे । प्रारम्भ में ओंकार और अन्त में नमः के योग सहित प्रत्येक नाम के साथ चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग द्वारा नौ शक्तियों की पूजा करे । विभूति, उन्नति, कान्ति सृष्टि, कीर्ति, सन्नति, व्युष्ठि, संत्कृष्ठि एवं ऋद्धि यही नौ शक्तियाँ हैं । अङ्गन्यास द्वारा प्रथम आवरण की पूजा करें । वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का क्रमशः पूजन करें । इस प्रकार द्वितीय आवरण-पूजा होती है । फिर बालकी आदिकी पूजा द्वारा चतुर्थ आवरण भी पूजे । फिर इन्द्रादिदेवों और उनके आयुओं के द्वारा चतुर्थ आवरण की पूजा करे । पुरश्चरण के निमित्त द्वादश जक्ष मन्त्र-जप का विधान है ।'

त्र्यक्षरी विद्याके पूजन आदिमें ओंकार और अन्त में नमः लगाकर प्रत्येक नामका चतुथी विभक्ति सहित प्रयोग होता है । श्रीलक्ष्मी वरदा विष्णुप्रिया, हिरण्यरूपा, वसुप्रदा, रजतस्स्रजा, स्वर्णमालिनी, स्वर्णप्रभा, स्वर्णप्रकाशा, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया,विल्वप्रिया, चन्द्रसूर्या, मुक्तालङ्कारा, ईश्वरी, भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, कृष्ठि, पुष्टि, धनदा, धनेश्वरी,श्रद्धा सावित्री, भोगिनी, भोगदा, धात्री विधावी प्रभृति नामों के द्वारा शक्ति-पूजन करे । एकाक्षर मन्त्र के समान ही पूजा पाठ की जाती है पुरश्चरण के निमित्त एकलक्ष मन्त्र जप करना चाहिए । जप का दसवाँ भाग तर्पण का दशवाँ भाग हवन और हवन का दसवाँ भाग, ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । इस श्रीविद्या की प्राप्ति उन्हीं को होती है जो कामनारहित भाव से उपासना करते हैं । कामना सहित उपासना करने वालोंको इसकी सिद्धि नहीं होती'।९-१२

लक्ष्मी का दूसरा मन्त्र है–'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं' इसकी विधि एकाक्षर मन्त्र की तरह है । केवल ध्यान में अन्तर है । इस मन्त्र का ध्यान इस प्रकार हैं––

माणिक्यप्रतिप्रभां हिमनिभैस्तुङ्गैश्चर्भिगजैः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हस्तग्राहितरत्नकुम्भसलिलंर्णसिच्यमानां मुदा ।
हस्ताब्जैर्बरदानमम्बुजयुगा भीतीर्दधानां हरेः
कांतांकांक्षिनपारिजातलतिकाँ वन्दे सरोजासनाम् ।।

इसका पुरश्चरण १२ लाख जप का है। दशाँश हवन करना होता है जो लाल कमलों से सम्पन्न होता है।

निबन्धग्रन्थ के अनुसार लक्ष्मी का दशाक्षर मन्त्र है-

"नमः कमलवासिन्यै स्वाहा।

इसकी पूजन विधि में पहिले पीठन्यास और फिर ऋष्यादिन्यास करे।

शिरसि दक्षऋषये नमः। मुखे विराट् छन्दसे नमः।
हृदि श्रियैं देवतायै नमः।

करांगन्यास

ओं देव्यै नमोऽङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ पद्मिन्यै नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा ।।
ॐ विष्णुपत्न्यै नमो मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ वरदा नमोऽनामिकाभ्यां हुँ।
ॐ कमलारूपायै नमः कनिष्ठाभ्यां फट्।

इससे बाद निम्न ध्यान करे।

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताबुजैर्बिभ्रतीः
दानं पद्मयुगाभये च वपुषा सौदामिनीसन्निभा।
मुक्ताहारविराजमानपृथुलोत्तुंगस्तनोद्भासिनी,
पायाद्वः कमला कटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ।।

फिर मानसोपचारों द्वारा पूजन और शंख स्थापन होता है। फिर पीठ-पूजा करके निम्न प्रकार पूजा करे--

अणिमादिक सिद्धदीश्च पातालगुटिकाञ्जनाः।
चातुष्कं दिव्य वेतालं प्राप्नुयात् कमलार्चनात् ।।
कमला च भवेद्दुदेवी कमला सर्व देवता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कमला पार्वती साक्षात् कमला एवं कारणम् ।
यस्याःपूजनमात्रेण त्रैलोक्य पूजनं भवेत् ।
कमला च महादेवी त्रिधामूर्ति व्यस्थिता ।।
परा चैवापराचैव तृतीया च परापरा ।
कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजाफलं लभेत् ।।
हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा शत्रूं महौत्कटम् ।
व्याधयः सर्वारिष्टानि फलायन्ते न संशय ।।

आवाहनं

महालक्ष्मि नमागच्छ पद्मनाभ पदादिह ।
पूजामिमां गृहाण त्वां त्वं देवि संभृता ।।

आसनं

आलयस्तेहिकधितः कमलं कमलालये ।
कमलेकलेह्यस्मिन् स्थिर्ति मत्कृपयाकुरु ।।

पाद्यं

गङ्गादि सलिलाधरं तीर्थ मंत्राभिमन्त्रितम् ।
दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं मे प्रतिगृह्यतां ।।

अर्घ्यम्

तीर्थोदकैर्महापुण्यै कल्पितं पापहारकैः ।
गृहाणार्घ्यं महालक्ष्मि भक्तानामुपकारिणि ।।

आचमन

कर्पूरागुरु संम्मिश्रं शीतलं जलमुत्तमम् ।
लोकमातृगृहाणेहं दत्तमाचमनं मया ।।

स्नानं

स्नानायते महालक्ष्मि कर्पूरागुरुवासित ।
आहृतं सर्वतीर्थेभ्यः सलिलं प्रतिगृह्यतां ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंचामृत-स्नानम्

पयोदधि घृतं देवि मधुकर्करयायुतम् ।
पञ्चामृतं मया दत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

वस्त्रम्

ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि ।
शुद्धस्नानं गृहाणेदं नारायणि नमोस्तुते ॥

शुद्धोदक स्नान

तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशल-कल्पितं ।
सर्वांगाभरणं श्रेष्ठं वसनं परिधीयतां ॥
(अधोवस्त्रम्, कचुकं उपवस्त्रञ्च समर्पयामि)

चन्दनम्

मलयाचलसम्पन्नं नानापन्नगरक्षित ।
शीतलं बहुलामोदं चन्दनं प्रतिगृह्यतां ॥

अक्षतान्

अक्षताश्चसुरश्रेष्ठे कुंकमाक्तान् सुशोभनान् ।
मया निवेदितान् भक्तया गृह्य परमेश्वरि ॥

सौभाग्य-द्रव्यम्

तालपत्रं मयानीतं दरिद्राकुकमाञ्जनं ।
सिन्दूरालक्तकं दास्ये सौभाग्यद्रव्यमीश्वरि ॥

अलंकारात्

रत्नककणकेयूरकाञ्चीकुण्डलनूपुरं ।
मुक्ताहार-किरीटञ्च गृहाणाभरणानि मे ॥

पुष्पाणि

मिलित्परिमलामोह मत्तालि कलसंकलं ।
गृहाण नन्दनोत्पनं पद्मे कुसुम सञ्चयं ॥

धूपं

गन्धसंभारसन्नद्धं नाना द्रुमरसोद्भवं ।
सुरासुरनरानन्दं धूप देवि गृहाण मे ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूर्वा

विष्णवादि सर्व देवानां प्रियां सर्व सुशोभनां ।
क्षीर-सागर सम्भूते दूर्वां स्वीकुरु सर्वदा ।।

दीप

मार्तण्डमण्डला खण्डचन्द्रबिंबाग्नितेजणां ।
निदान देवि दीपोऽयं कल्पितस्तवभक्तितः ।।

नैवेंद्य

देवतालयपाताल भूतालाधारधान्यजं ।
षोडशाकारं संभारं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।

फल

इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेञ्जन्मनि ।।

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूतं वदनांभोजभूषणं ।
नानागुणसमायुक्तं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ।।

दक्षिणा

हिरण्यगर्भगर्भस्त हेमबीजं विभावसो ।
अनन्त पुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।

तहानीराजनं

चक्षुर्द सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणं ।
आर्तिक्यं कल्पितं भक्ति वा गृहाण परमेश्वरि ।।

नमस्कार

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मृताम् ।।

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणां पदे पदे ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैश्च देशकालोद्भवैर्युतम् ।
पुष्पांजलि मया दत्तं गृहाण हरिवल्लभे ।।

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीश्लाभूतिर्हरिप्रिया
पद्मा पद्मालया संपदुच्चैः श्रीः पद्मधारिणी
नमस्ते सर्व देवानां वरदासि हरिप्रिये
या गतिस्यत्व प्रपन्नां सामे भूयात्वदर्चनात्
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।

फिर आवरण पूजन करे। चारों दिशाओं, मध्य में और चारों कोणों में इन मन्त्रों से पूजन करना चाहिए--

'ॐ' देव्यै नमो हृदयाय नमः । ॐ पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा । ॐ महालक्ष्म्यै नमः शिखायै वषट् । ॐ वरदायै नमः कवचाय हुँ । ॐ कमलारूपायै नमोऽस्त्राय फट् ।

इसका पुरश्चरण दस लाख मन्त्र जप का है । पद्मों में घी, शहद और शक्कर मिलाकर १० हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए ।

४--महालक्ष्मी का द्वादशाक्षर मन्त्र है-"ॐऐं, ह्रीं श्रीं क्लीं हसौः जगत्प्रसूत्यै नमः ।'

पीठन्यास तक पूर्व विधि है । ऋष्यादिन्यास इस प्रकार है--

शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः
मुखे गायत्री छन्दसे नमः
हृदि महालक्ष्म्यै देवतायै नमः

पंचबीजों का न्यास

अंगुष्ठे ॐ ऐं नमः
तर्जन्यां ॐ ह्रीं नमः
अनामिकायां ॐ क्लीं नमः
मध्यमायां ॐ श्री नमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कनिष्ठायां ॐ ह्सा: नमः ।

करतले ॐ जगतप्रसूत्यै नमः ।

मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके फिर मन्त्रन्यासादि न्यास करना चाहिए--

मस्तके ॐ नमः, मुखे ह्लीं, नमः हृदये श्रीं नमः, गुह्ये क्लीं नमः पदे ह्सौःनमःत्वाक्माँसरक्तमेदास्थिमज्जाशुक्रादिसप्तधातुषु जगत्प्रसूत्यै नमः ।

करांगन्यासः

ऐं ज्ञानाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्लीं ऐश्वर्याय तर्जनीभ्यां स्वाहा श्रीशक्तये मध्यमाभ्यां वषट्। क्लीं वलाल अनामिकाभ्यां हुँ । हसौः वीर्याय कनिष्ठाभ्यां वौषट् । जगत्प्रसूत्यै नमस्तेजसे करतलपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादि षडंगन्यास करके निम्न ध्यान करे--

बालार्कद्युतिमिन्दुरखण्डविलसत्कोटीरहारोज्वलां ।
रत्नाकल्पविभूषितां कुचनतां शाले, करैर्मञ्जरीम् ॥
पद्म कौस्तुभरत्नमप्ययिरतं संविभ्रतीं सस्मितां ।
फुल्लांभोज विलोत्रनत्रययुतांध्यायेत् परामम्बिकां ॥

ध्यान के वाद पूजन पद्धति पूर्वोक्त है । फिर आवरण-पूजा इस प्रकार है--

ॐ शंकरनन्दनाम नमः (दक्षिण भाग में)

ॐ पुरुषधन्वने नमः (वाम भाग में)

ऐं ज्ञानाय नमः

ह्लीं ऐश्वर्याय नमः

श्रीं शक्यये नमः

क्लीं वलाय नमः

दसौः वीर्याय नमः

ॐ जगत्प्रसूत्यै नमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ तेजसे नमः

इसका पुरुश्चरण १२ लाखहै। दशांश हवन श्रीफल या पद्म द्वारा और १० हजार तर्पण करना चाहिए।

५-महालक्ष्मी का आदि मन्त्र है-ओं श्रीं ह्रीं कमले कमलालये प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मी नमः।

ऋष्यादिन्यास तक की विधि पूर्वोक्त है। करांगन्यास इस प्रकार है-

श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः श्रीं ह्रीं श्रींकमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। श्रीं ह्रीं श्रींप्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं मध्यमाभ्यां वषट् श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं अनामिकाभ्यां हुँ। श्रीं ह्रीं महालक्ष्मी श्रीं ह्रीं श्रीं कनिष्ठाभ्यां वोषट् श्रीं ह्रीं श्रीं नमः महालक्ष्मी श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्।

हृदयादि षडङ्गन्यास के बाद ध्यान करना चाहिए-

सिन्दूरारुणकान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्यवारां निधि,
कोठीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रांदभिभूंषिताम्।
हस्तब्जैर्वसुपात्रमब्जयुगलादर्शौं वहन्तीं परा

आवरण पूजा से पहले की विधि पूर्वोक्त है। आवरण पूजन इस प्रकार करे--

अग्न्यादि कोणों बध्य और चारों दिशाओं में इस प्रकार अङ्ग पूजा करना चाहिए-

मावीतां परिचारिकाभिरनिशंध्यायेत् प्रियाशांगिणः

श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः। श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा। श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीदश्रींह्रीं शिखायै वषट्। श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रींह्रीं श्रीं कवचाय हुँ। श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि श्रीं ह्रीं श्रीं नेत्रत्रयाय वषट्। श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका पुरश्चरण एक लाख जप का है। विल्वफल में घी, शक्कर और शहद मिलाकर हवन करना चाहिए।

लक्ष्मी कवच—

लक्ष्मीर्मे चाग्रतो पातु कमला पातु पृष्ठतः ।
नारायणी शीर्षदेशे सर्वांग श्री स्वरूपिणी ॥

लक्ष्मी मेरे अग्रभाग की कमला मेरे पृष्ठ भाग की, नारायणी मेरे शिर की और श्रीस्वरूपा भगवती मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करें।१।'

रामपत्नी प्रत्यंगे तु सदावतु रमेश्वरी ।
विशालाक्षी योगमाया कौमारी चक्रिणो तथा ॥
जयदात्री धनदात्री पाशाक्षमालिनी शुभा ।
हरिप्रिया हरिरामः जयंकरी महोदरी ॥
कृष्णपरायणा देवी श्रीकृष्णामनोमोहिनी ।
जयांलरी महारौद्री सिद्धिदात्री शुभंकरो ॥
सुखदा गोक्षदा देवी चित्रकूटनिवासिनी ।
भयं हेरत्सदा पायाद् भवबन्धाद्विमोचयेत् ॥

'भगवान रामकी धर्मपत्नी, विशाल नयन वाली योगमाया कुमारी और चक्रधारिणी लक्ष्मी मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करें, वही विजय प्राप्त कराने वाली धन देने वाली, पाशाक्षमालिनी, कल्याणी, हरिप्रिया, सहा रौद्री,सिद्धिदात्री, शुभदायिनी, सुखदायिनी,मोक्षमायिनी,चित्रकूटवासिनी लक्ष्मी मेरे भय को दूर करती हुई सदा रक्षा करें और संसार सागर की पाश को काट डालें।२।

वचन्तु महापुण्यं यः पठेम् भक्तिसंयुतः ।
त्रिन्ध्चमेकसन्ध्यम्वा मुच्यते सर्वसंकटात् ॥

'तीनों समय अथवा एक समयही जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस महा-पुण्यमय कवच का पाठ करते हैं वे सभी संकटों से मुक्त होते हैं।३।

पठनं कवचस्यास्य पुत्रधनविवर्द्धनम् ।
भीतिविनाशनञ्चैव त्रिषु लोकेषु कीर्त्तितम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस कवच का पाठ करने से पुत्र और धन आदि की वृद्धि होती है तथा भय दूर हो जाता है। तीनों लोकों में इस कवच की महिमा गाई जाती है।४।

भूर्ज्जपत्रे समालिख्य रोचनाकुंकुमेन तु।
धारणाद् गलदेशे च सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥

'रोचन और कुंकुम से इसे भोजपत्र पर लिखकर कण्ठ में धारण करे तो सर्व सिद्धियों की प्राप्ति होती है।५।

अपुत्रा लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति कवचस्य प्रसादता ॥

'इस कवच के प्रभाव से पुत्रहीन को पुत्र, धनहीन को धन और मोक्ष की कामना करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है।६।'

गर्भिणी लभते पुत्रं बन्ध्या च गर्भिणी भवेत्।
धारयेद्यदि कण्ठे च अथवा वामबाहुके ॥

'कण्ठ अथवा बाँये हाथ में इस कवच को गर्भिणी स्त्री धारण करे तो श्रेष्ठपुत्र की प्राप्ति होती है और वन्धा स्त्री पुत्रवती होती है।७।

यः पठेन्निवतो भक्ततो स एव विष्णुवद्भवेत्।
मृत्युव्याधिभयं तस्य नास्ति किञ्चिन्महीतले ॥

''भक्तिपूर्वक इसे कवच का पाठ करने वाले मनुष्य विष्णु के समान समर्थ होते हैं, मृत्यु और रोग आदि उनको व्याप्त नहीं होते।८।

पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रृणुयाच्छ्रावयेदपि।
सर्वपापविमुक्तस्तु लभते परमां गतिम् ॥

'इस कवच को पढ़ने, पढ़ाने और सुनने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर परमगति लाभ करते हैं।९।

विपदि संकटे घोरे तथा च गहने वने।
राजद्वारे च नौकायां तथा च रणमध्यतः ॥
पठनाद्धारणादस्त जयमाप्नोति निश्चितम् ॥

'विपत्ति काल, घोर संकट के समय, भीषण जंगल में, राजद्वार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या नौकारोहण में, युद्धक्षेत्र अथवा अन्य कहीं भी इस कवच को धारण करने वाले मनुष्य निश्चय ही विजयी होते हैं ।१०।

अपुत्रा च तथा वन्ध्या त्रिपक्षं शृणुयादपि ।
सुपुत्रं लभेत सा तु दीर्घायुष्कं यशस्विनम् ॥

'वन्ध्या या पुत्रहीना नारी डेढ़ मास तक इस कवच को श्रवण करे तो वह महातेजस्वी और दीर्घायुष्य पुत्र प्राप्त करती है ।११।

शृणुयाद्यः शुद्धबुद्ध्या द्वौ मासो विप्रवक्त्रतः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्व बन्धाद्विमुच्यतः ॥

'पवित्र मन से दो मास पर्यन्त जो मनुष्य विद्वान ब्राह्मण से इस कवच को सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ सिद्ध होतीहै और वह सभी प्रकार के वन्धनों से मुक्त हो जाता है ।१२।

मृतवत्सा जीववत्सा त्रिमासं शृणुयाद्यदि ।
रोगी रोगाद्विमुच्येत पठनान्मासमध्यतः ॥

'जिस नारी के मरा हुआ बालक होता हो अथवा जिसके हो ही कर मर जाये, वह तीन महीने तक इस कवच को श्रवण करे अथवा जो रोगी पुरुष इसका पाठ करे वह सभी रोगों से छूट जाते हैं ।१३।

लिखित्वा भूर्जपत्रे च ह्यथवा ताडपत्रके ।
स्थापयेन्नियत्तं गेहे नाग्निचौरभयं क्वचित् ॥

भोजपत्र या ताड़पत्र पर इस कवच को लिखकर जो अपने घर में स्थापित करे, उसके लिए अग्नि या चोर आदि का भय नहीं रहता।१४

शृणुयाद्धारयेद्वापि पठेद्वा पाठयेदपि ।
यः पुमान्सततं तस्मिन्प्रसन्ना सर्व देवतः ॥

नित्यप्रति जो इस कवचको सुनता, पढ़ता, दूसरे को पढ़ाता अथवा इसे धारण करता है, उस पर देवता प्रसन्न रहते हैं ।१५।

वहुना किमिहोक्तेन सर्वजीवेश्वरी ।
आद्या शक्तिः सदा लक्ष्मीर्भक्तानुग्रहकारिणी ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारके पाठके चैव निश्चला निवसेद् ध्रुवम् ॥

इस कवच का पाठ करने और धारण करने वाले पुरुषों पर,भक्तों पर अनुग्रह वाली आद्या शक्ति लक्ष्मी कृपा करती और उनके घर में निवास करती हैं ।१६।

महाकाली

महाकाली का आशय है देवी स्वरूपान्तपशक्ति जो कि अनेक को एक लय में कर देती है ।

महाकाली का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है--

खड्गंचक्रगदेषुचापपरिधाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंख सदधती करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददत्तकां सेवे महाकालिका ।
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमला हन्तुं मधुं कैटभम् ॥

अर्थात् "अपने दस हाथों में खग, चक्र, गदा, धनुष, वाण, परिधि शूल, भुशुण्डि, कमाल और शंख को धारण करने वाली, समस्त अङ्गोंमें दिव्य आभूषणों से सुसज्जित, नीलमणि के समान शरीर कान्ती वाली, दस मुख और दस पैर वाली महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ, जिसका स्तवन भगवान विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभको मारने के लिए ब्रह्माजी ने किया था ।

शास्त्रों में महाकाली की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित की गई है--

प्रलय काल में भगवान विष्णु योग-निद्रा में लीन थे कि उनके कानों से मधु और कैटभ नाम के दो राक्षस उत्पन्न हुए जो ब्रह्माजीको मारने के लिए दौड़े । ब्रह्माने भगवान की योगनिद्रा भंग करने के लिए भगवान के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु और हृदय से बाहर निकल कर भगवती उपस्थित हो गई । भगवान की योगनिद्रा भी समाप्त हुई । ब्रह्मा को बचाने के लिए भगवान राक्षसों से युद्ध करने लगे । यह युद्ध पांच हजार वर्ष तक चलता रहा परन्तु राक्षस न मारे गए । अन्त में भगवती ने उन राक्षसों की बुद्धि में उत्पन्न किया, जिससे अभिमान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का उदय हुआ और वे भगवान से वर मांगने की शेखी बघारने लगे। भगवान ने अवसर का लाभ उठाया और अपने हाथों उनके मारे जाने का वरदान माँगा जो दे दिया गया। भगवान ने चक्र से उनका सर काट डाला। इस प्रकार ब्रह्मा की रक्षा के लिए भगवती ने काली का रूप धारण किया।

देवी का कालिका नाम क्यों पड़ा ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया हैं कि पार्वती के शरीर कोष में से एक शिवा निकली जिसके कारण देवी कृष्ण वर्ण हो गई और कालका नाम पड़ा।

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत सापि पार्वती ॥
कालिकेति समाख्याता हिमालयकृताश्रया ॥

काली के आविर्भाव के उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि देवी नित्य हैं परन्तु देवताओं कीं कार्य-सिद्धि के लिए विशेष रूप ग्रहण करके इस लोक में अवतीर्ण होती है।

देवानां कार्यसिद्धि्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्याभिधीयते ॥

(सप्तशती १:६७)

इनका आद्याशक्ति महामाया के नाम से गुण-गान किया जाता है। दश महाविद्याओं में सबसे पहला नाम काली का ही आता है। शिवकी तरह काली की मूर्तियों के भी आठ भेद हैं परन्तु 'दक्षिणा' अधिक प्रसिद्ध है।

काली का रूप अत्यन्त भयङ्कर है। उसके हाथों में खड्ग और नृमुण्ड हैं। रक्त-धारा का प्रवाह, श्मशान में निवास, जलती चिता, शवासना यह सभी काली के भयङ्कर रूपको प्रदर्शित करते हैं। उनकी बाह्याग्रेति में ध्वंस और प्रलय के दर्शन होते हैं। यह उनके 'श्मशानाजय वासिनी शवासना, शवरूप आदि नामों से ही विदित होता है। मुण्डकोपनिषद् (१।२।४) ए भी लिखा है--

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधम्रवर्णा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी
लोलायमाना इति सप्त जिह्वः ॥

अर्थात् 'काली अत्यन्त उग्र मन के समान चंचल, लाली युक्त, धूम्र वर्ण, चिनगारियों से युक्त, देदीप्यमान विश्वरुचि-यह लपलपाती सात जिह्वाएँ अग्नि की हैं।'

काली का तत्वज्ञान जानने के लिए यह रूप आवश्यक है क्योंकि काली का सम्बन्ध काल से हैं। काली वह जो काल पर प्रतिष्ठित है। काल उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की क्षमता नहीं रखता बल्कि उसका सहारा ग्रहण करता है। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हुए कहता है--

'वह काल जगत का आधार है'

कालो हि जगदाधार: ।

काल का दूसरा नाम रुद्र अथवा सदाशिव है। रुद्र उग्रता के प्रतीक और ध्वंस के देवता हैं।

भगवान् शंकर का निवास स्थान श्मशान है। वे गले में मुंड-माला धारण करते हैं। मृत्यु के काल-पाश-महासर्प उनके कण्ठ में भुजाओं में यज्ञोपवीत में लिपटे हुए हैं। तीक्ष्ण त्रिशूल उनका शस्त्र है जब ये तीसरा नेत्र खोलते हैं तब चारों ओर आग बरसती है। कुपित होकर वे तीसरे नेत्र से जिसे भी देखते हैं वह जल कर भस्म हो जाता है। कामदेव की मृग मरीचिका को एक बार उनके पलक मारते-मारते जलाकर भस्म कर दिया था। उनके वीरभद्र-भैरव एवं नन्दीगण कितने विकराल हैं इसकी कल्पना करने मात्र से रोमांच हो उठता है। जब प्रलय की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है तब वे ताण्डव नृत्य करने खड़े हो जाते हैं। उनके चरणों की थिरकन जैसे-जैसे गतिशील होती चलती है, वैसे ही जराजीर्ण कूड़ा करकट प्रभूत दावानल में जल-जल कर अनन्त अन्तरिक्ष में विलय होता चला जाता है। पाप-पुरुष उनके चरणों में आ गिरता है। शिव-ताण्डव नृत्य के चित्रों में एक उकड़ूँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उलटे मुँह पड़ा हुआ भयभीत जीव दिखाई पड़ता है । उसकी पीठ पर नटराज के चरणों की थिरकन गतिशील होती है । यह पाप-पुरुष मानव अन्तःकरण में निवास करने वाले पशु ही हैं, इसी की समय-समय पर असुर शब्द से भर्त्सना की जाती रहती है। ताण्डव नृत्य का प्रयोजन इस पाप पुरुष को परास्त करना, उसकी माया मरीचिका को निरस्त करना ही है ।

रुद्र का आभूषण सर्प संहारक शक्ति है । वह काल का प्रतीक है। काल किसी को नहीं छोड़ता । इस जगत में उत्पन्न हर वस्तु उसके गले के नीचे उतर जाती है । सर्प क्रोध का भी प्रतीक है । कबीर ने क्रोधको भी काल की संज्ञा दी है ।'

रुद्र को वेदों में अग्नि का प्रतीक माना गया है । अग्नि का कार्य भस्म करना है और जलाना है । इसलिए भस्मको शिव का चिन्ह माना गया है । मूर्तियों और चित्रों में वह भस्म विभूषित दिखाए हैं । भस्म नाश और संहार का चिन्ह है क्योंकि जलने के बाद का यह अन्तिम रूप है । रुद्र को श्मशान प्रिय है, वे प्रलय का साकार रूप है । इसलिए शास्त्रों ने काल की परिभाषा करते हुए कहा है--

जो सर्वभूतों का नाश करता है, वह काल कहलाता है । वह काल ही नहीं महाकाल कहलाता है। कालीतत्व का विवेचन करते हुए बताया गया है कि वह कालतत्व पर प्रतिष्ठित रहती है ।

महाकाली को पुराणों में इस प्रकार चित्रित किया गया है कि महाकाल भूमि पर लेटे हुए हैं और वे उनकी छाती पर खड़ी अट्टहास कर रहीं हैं । यों पति की छाती पर पत्नी का खड़ा होना अटपटा सा लगता है। पर पहेलियों में यह अटपटापन जहाँ कौतूहलवर्धक एवं मनोरंजक होता है वहाँ ज्ञानवर्द्धक भी । कबीर की उल्टवांसी और खुसरो की मुकरानी, पहेलियों के रूप में सामने आती हैं और अपना रहस्य जानने के लिए बुद्धिमत्ता को चुनौती देती हैं । भूमि पर लेटे हुए शिव की छाती पर काली का खड़े होकर अट्टहास करना, घटना के रूप में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घटित हुआ था या नहीं इस झंझट में पड़ने की अपेक्षा हमें उसमें सन्निहित मर्म और तथ्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

ध्वंस एक आपत्ति धर्म है--सृजन सनातन प्रक्रिया। इसलिए ध्वंस को रुकना पड़ता है, थक कर लेट जाना और सो जाना पड़ता है। तब सृजन को दुहरा काम करना पड़ता है, एक तो स्वाभाविक सृष्टि संचालन की रचनात्मक प्रक्रिया का संचालन-दूसरे ध्वंस के कारण हुई विशेष क्षति की विशेष पूर्ति का आयोजन। इस दुहरी उपयोगिता के कारण ध्वंस के देवता महाकाली की अपेक्षा स्वभावत: सृजन की देवी महाकाली का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। शिव जब पड़े होते हैं, तब शक्ति पड़ी हैं। शिव पीछे पड़ जाते हैं। शक्ति आगे आती है। शिव सोये होते हैं और शक्ति जाग्रत रहती है। शिव का महत्व घट जाता है और शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है। महाकाल की छाती पर खड़े होकर महाकाली का अट्टहास करना इसी तथ्य का अलङ्कारिक चित्रण है।

शिव के हाथों में त्रिशूल अवश्य है, वे उसका अनिवार्य परिस्थितियों में प्रयोग भी करते हैं पर हृदय में उनके सृजन की असीम करुणा ही भरी रहती है। सृजन की देवी काली उनकी हृदयेश्वरी हैं। उसे वे सदा अपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं आवश्यकतानुसार वह मूर्तिवान् गतिशील और प्रखर हो उठतीहै। ध्वंसके अवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो उठती है। आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू, कैंची, आरी, सुई और तीक्ष्ण धार वाले शास्त्रों की भी जरूरत पड़ती है, पर उससे भी अधिक सामग्री मरहमपट्टी की जुटानी पड़तीहै आपरेशन के समय किये गये घाव को भरा कैसा जाय ? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं। अतएव वे रुई, गौज, मरहमपट्टी दवायें आदि भी बड़ी मात्रा में पास रख लेते हैं। ध्वंस-प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम-पट्टी। भगवान को ध्वंस करना पड़ता है पर मूल में अभिनव सृजन की आकांक्षा ही रहती है। क्रूर कर्म में भी अनन्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करुणा ही छिपी रहती है। महाकाल की आन्तरिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकांक्षा है। अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो।

इस चित्रण का एक और भी उद्‌देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुनर्निर्माण में मातृ-शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है। बाप द्वारा प्रताड़ना दिये जाने पर बच्चा माँ के पास ही दौड़ता है और तब वही उसे अपने आँचल में छिपाती, छाती से लगाती, पुचकारती और दुलारती है। मातृ-शक्ति करुणा की स्रोत है। अस्पतालों में नर्सका काम महिलायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं,छोटे बालकों को शिक्षा देने वाले मन्दिर--शिशु सदनों में महिलाओं द्वारा जैसी अच्छी तरह शिक्षण दिया जा सकता है,उतना पुरुषों द्वारा नहीं।कारण कि उनके अन्दर स्वभावत: जिस करुणा, दया-ममता, सेवा-सौजन्य एवं सहृदयता का बाहुल्य रहता है, उतना पुरुष में नहीं पाया जाता, पुरुष प्रकृतित: कठोर है और नारी कोमल है। दोनों का सम्मिश्रण होने से एक संतुलित स्थिति बनतीहै अन्यथा एकाकी रहने वाले पुरुष सेना जैसे कठोर कार्यों के लिए ही उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं।

यदि वर्तमान अवांछनीय परिस्थितियों की जिम्मेदारी नर-नारी में से किसकी कितनी है इसका विश्लेषण किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि ९० प्रतिशत उद्धतता पुरुषों द्वारा बरती गई है,क्रूर कर्मों और दुर्भावनाओं के अभिवर्धन में उन्हीं का प्रमुख हाथ है। अपराधी, दुष्ट, दुरात्मा और दण्डभोक्ता व्यक्तियों में पुरुषों की संख्या ९० प्रतिशत होती है। वर्तमान उद्धतता की जिम्मेदारी प्रधानतया पुरुषोंकी होने के कारण दण्ड भाग भी उन्हीं के हिस्से में आयेगा। भावी विनाश में प्रताड़ना उन्हीं के हिस्से में अधिक आने वाली है। नारी क्रूर कर्मों से बची रहती है उनमें उसका योगदान नगण्य होता है इसलिए वह अपनी आध्यात्मिक गरिमा के कारण पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उज्जवल, सौम्य रहने के कारण दुर्दैव की कोपभाजन नहीं बनती। शिव की छाती पर शक्ति खड़े होने का तात्पर्य यह भी है कि आकस्मिक श्रेष्ठता की कसौटी पर कसे जाने पर नारी की गरिमा ही अधिक भारी बैठती है। वही ऊपर रहती है। पुरुष इस दृष्टि से जब कि गिरा हुआ सिद्ध होता है तब नारी अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हुई गर्वोन्नत प्रसन्न वदन खडी होती है।

भावी वन निर्माण में इमारतों सड़कों, कल-कारखानों, सेना अथवा शास्त्रों का अभिवर्धन प्रधान नहीं, वरन् भावनात्मक निर्माण की प्रधानता रहेगी। इस क्षेत्र में नारी का ज्ञान अनुभव तथा अधिकार असंदिग्ध है। इसलिये स्वभावतः जो जिसका अधिकारी है। वही इस उत्तरदायित्व को वहन करेगा। भावी पुनरुत्थान में प्रधान भूमिका नर की नही नारी की होगी। विनाश की भूमिका का सरंजाम जुटाने में पुरुप आगे रहेगा, क्रूर कर्मों में उसकी बुद्धि आगे चलती है। सामान्य जीवन-आनन्द की हत्या उसी ने की है। विश्व-शान्ति पर आक्रमण उसी ने किया है। अब अपनी दुष्टता की पूर्णाहुति में भी अपनी कला के दो-दो हाथ दिखावे तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन भावनात्मक नव-निर्माण की, इसके तुरन्त बाद ही जिस पुनरुत्थान की आवश्यकता पड़ेगी उसे वह पूरा नहीं कर सकेगा। यह कार्य नारी को करना है। इसी तथ्य की प्रतिपादन करती हुई महाकाल के थक जाने पर उसकी छाती पर महाकाली का हास विलास चित्रित किया गयाहै।

पुरुष में अन्य विशेषतायें कितनी ही क्यों न हों, भावनात्मक क्षेत्र में आध्यात्मिक क्षेत्र में--नारी से वह बहुत पीछे है। यही कारण है कि साधना क्षेत्र में नारी ने जब भी प्रवेश किया वह पुरुष की तुलना में सौ गुनी तीव्र गति से आगे बढ़ी है। उसे इस दिशा में अधिक शीघ्र और अधिक महत्वपूर्ण सफलतायें मिलती हैं। माता को कन्यायें अधिक प्रिय होती हैं, उन्हें वह दुलार भी अधिक करती हैं और अनुग्रह भी। अध्यात्म की अधिष्ठात्री महाशक्ति का अवतरण अनुग्रह यदि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नारी साधकों पर अधिक सरलता से, अधिक मात्रा में होता है तो यह उचित ही है। भावी नव निर्माण में जिस स्तर की क्षमता, योग्यता, पूँजी एवं तत्परता की आवश्यकता होगी वह स्वभावतः नारी में ही प्रचुरता से मिलेगी। इसलिए ममाहत पुरुष को कसक-कराह के साथ विश्राम करने देकर नारी ही आगे बढ़ेगी ओर वही पुनरुत्थान को परि परिस्थितयों का सृजन करेगी। समय-समय पर ऐसा होता भी आया है। पुरुष अध्यात्मवादियों की सफलताओं में प्रधान भूमिका नारी की रही है। वह ख्याति प्राप्त भले ही न कर सकी हो, पर तथ्य की दृष्टि से यही सुनिश्चित है कि आत्मबल के उपार्जन में किसी भी पुरुष को अद्भुत, असाधारण सहयोग इन्हीं नारियों का रहा है।

राम की महिमा का श्रेय सीता और कौशल्या को कम नहीं है। कौशिल्या के प्रशिक्षण तथा सीता के सहयोग को यदि हटा दिया जाय तो राम का वर्चस्व फिर कहाँ रह जायगा? सीताके विना रामका चरित्र ही क्या रह जाता है? उनकी सारी गतिविधियों के पीछे सीता ही आच्छादित है। कृष्ण की बाँसुरी में राधा ही रहती थी। देवकी और यशोदा का वात्सल्य, कुन्ती का प्रोत्साहन और आशीर्वाद, द्रोपदी, की श्रद्धा गोपियों का स्नेह इन सब तत्वों ने मिलकर कृष्ण के कृष्णत्व की पूर्ति की थी। इन उपलब्धियों के अभाव में वेचारे कृष्ण कुछ कर पाते या नहीं इसमें सन्देह ही रहता है।

बुद्ध का आध्यात्मिक प्रशिक्षण उनकी मौसी द्वारा सम्पन्न हुआ था। तपस्या के बाद लौटे तो उनकी पत्नी यशोधरा भी अनुगामिनी होकर आई। अम्बपाली के आत्म-समर्पण के उपरान्त तो भगवान का प्रयोजन हजार गुनी गति से तीव्र हुआ। प्रतिभाशाली व्यक्ति जहाँ आते हैं वहाँ किसी भी दिशामें अभिवृद्धि होती है। पाण्डवों की महान् भूमिका में द्रोपदी का 'रौल' अत्यन्त प्रभावी है। एक नारी द्वारा पाँच नर-रत्नों का प्रचुर बल प्रदान किया गया, यह नारी शक्ति भाण्डागार का चिह्न है। मदालसा ने अपनी सभी पुत्रों को अभीष्ट शिक्षा से सुसम्पन्न किया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था। एक नारी असंख्य मानव प्राणियों को सर से नारायण बनाने में समर्थ हो सकती है। उसकी भावनात्मा सृष्टि इतनी परिपूर्ण है कि कृष्ण का सामाजिक अस्तित्व न होने पर भी मीरा ने उन्हें पतिरूप में साथ रहने और नाचने के लिए मूर्तिमान कर लिया था।

प्राचीन काल के तपस्वी, तत्वदर्शी एवं महामनीषी ऋषियों में से प्रत्येक सपत्नीक था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवताओं की पत्नियाँ, सरस्वती लक्ष्मी काली उनके वर्चस्वको स्थिर रखने में आधार स्तम्भ की तरह हैं। नारी के रमणी रूप की ही भर्त्सना की गई है, अन्यथा उसकी समग्र सत्ता, गङ्गा की तरह पवित्र और अग्नि की तरह प्रखर है। पिछले दिनों भारतीय राजनैतिक क्रान्ति का नेतृत्व करने में एनीबेसेन्ट की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू आदि कितनी ही महिलायें इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम कर चुकी हैं। इस क्रान्ति-युग की परिस्थितियोंको उत्पन्न करने में जिन महानुभावोंने गुप्त किन्तु अद्भुत पुरुषार्थ कियाहै उनमें रामकृष्ण परमहंस और योगी अरविन्द मूर्धन्य हैं। दोनों को नारी का शक्ति-सान्निध्य प्राप्त था। परमहंस के साथ महायोगिनी–भैरवी तथा पत्नी शारदामणि और अरविन्द के साथ माताजी का जो अनुपम सहयोग हुआ उसी के बल-बूते पर वे अपनी महान भूमिका सम्पादित कर सके। ऐसे असंख्य उदाहरण भारत व विदेशों में विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में, भावनात्मक उपलब्धियों में नारी का वर्चस्व प्रधान है और इसी के सहयोग से नर को इस दिशा में महान सफलता मिली है। शिव की छाती पर शक्ति का खड़े होना इसी तथ्य का उद्घाटन करता है कि अन्य क्षेत्रों में न सही कम से कम आत्मबल की दृष्टि से तो नारी की गरिमा असंदिग्ध है ही।

भावी नव-निर्माण निकट है। उसकी भूमिका में नारी का योगदान प्रधान रहेगा। अगले ही दिनों कितनी ही तेजवान् नारियाँ अपनी महान् महिमा के साथ वर्तमान केंचुल को उतार कर सार्वजनिक क्षेत्र

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में प्रवेश करेंगी और उनके द्वारा नव-निर्माण अभियान का सफल संचालन सम्भव होगा। भावी संसार में नये युग में हर क्षेत्र का नेतृत्व नारी करेगी। पुरुष ने सहस्राब्दियों तक विश्व-नेतृत्व अपने हाथमें रख कर अपनी अयोग्यता प्रमाणित कर दी। उसकी क्षमता विकासोन्मुख नहीं विनाशोन्मुख ही सिद्ध हुई। अब वह नेतृत्व उसके हाथ से छिनकर नारी के हाथ जा रहा है। हमें उसमें बाधक नहीं सहायक बनना चाहिए। खिन्न नहीं, प्रसन्न होना चाहिए। विरोध नहीं स्वागत करना चाहिए। भावी परिस्थियों के अनुकूल हमें ढलना चाहिए। इसी का संकेत उस चित्रण में सन्निहित है जिसमें महाकाल की छाती पर महा काली की प्रतिष्ठापना प्रदर्शित की गई है।

काली का श्याम वर्ण क्यों? श्याम वर्ण तमोगुण का प्रतीक है। ध्वंस के सभी चिह्न उसमें दिखाई देते हैं। मृत्यु का रङ्ग भी काला दिखाया जाता है। मृत्यु के देवता यमराज का शरीर भी श्याम वर्ण से चित्रित किया जाता है। काले रङ्ग की यह विशेषता है कि उस पर कोई भी दूसरा रङ्ग नहीं चढ़ सकता और जब काला रङ्ग किसी वस्तु पर चढ़ जाताहै तो वह उतरता भी नहीं। इसमें सभी तरहसे रंग समा जातेहैं और यह सभी पर अपना प्रभुत्व रखताहै। प्रथमकी स्थिति सारा जगत उसमें समा जाताहै परन्तु उसमेंकोई परिवर्तन नहीं होता।

ऋग्वेद १।५४।४७ में सूर्य को कृष्ण कहा गया है। ऋग्वेद १।३५।२ में पृथ्वी को भी कृष्ण कहा है। वेदों में आकर्षण शक्ति से युक्त वस्तु को भी कृष्ण कहा गया हैं संसार में सबसे अधिक आकर्षण शक्ति सूर्य में होती है। इसीलिए उसे कृष्ण कहा गया है।

जिन ग्रहों को सूर्य संचालित करते हैं, उनको भी कृष्ण कहा गया है क्योंकि उनमें भी आकर्षण षक्ति होतीहै। यदि उनमें यह शक्ति न होती तो वह नियमबद्ध रूप से सूर्य के चारों ओर न घूमते रहते। सूर्य उन्हें अपनी ओर खींच लेता और भस्म कर देता। इसीलिए पृथ्वी को भी कृष्ण कहा गया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाह्य जगत में पृथ्वी, सूर्य और उनके ग्रहादि विश्व की महान् शक्तियों के द्योतक हैं। अतः काली का यह कृष्ण वर्ण शक्ति-प्रतिष्ठा को चित्रित करता है। कहते हैं-सृष्टि से पहले चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। यह स्थिति भी काली की ही है।

यह काली का रहस्यात्मक चित्रण है।

काली पूजन विधि

तत्र कालीतन्त्रे कामय वह्निसं थं रतिविन्दुविभूषितम् ।
कूर्म युग्म तथा लज्जायुगल तदन्तरम् ॥
दक्षिणे कालिके चेति पूर्व बीजानि चोच्चरेत् ।
अन्ते वह्वि वधूं विद्याद्विद्यांराज्ञी प्रकीर्तिता ।
मन्वयं माहया मले । ककारोज्वलरूहत्वाकेववं मोक्ष-
दायिनी । ज्वलनार्थ समायोगात्सर्व येजोणयी शुभा ॥
मायात्रपेण देवेशि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
विन्दुनां निष्कलत्ताच्छ कैवल्यफलदायिनी ॥
बाजत्रया शाम्भवी सा केवलं ज्ञानचित्कला ।
शव्दबीजद्वैनैत शव्द राशि प्रबोधिनी ॥
लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
सम्बोधनपदेनैव सदासन्निधिकारिणी ।
स्वाहया जगतां माता सर्व पापप्रणाशिनी ॥

काली तन्त्र के अनुसार काली का मन्त्र यह है--'क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा' यह सब सब मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र है। इसके वर्णों का अभिप्राय इस प्रकार है-जल-रूपी ककार मुक्ति का देने वाला है, अग्नि रूप रेफ सर्वतेजोमयी है। क्रीं क्रीं क्रीं--यह सृजन, स्थिरता और प्रलय के द्योतक हैं। विन्दु निष्कल ब्रह्म रूप हैं, अतः यह कैवल्य प्रदान करता है। हूँ हूँ-शब्द ज्ञान प्रदान करते हैं। ह्रीं ह्रीं यह दोनों बीज सृजन, स्थिरता और प्रलय का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब दक्षिण कालिके को सम्बोधन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया जाता है तो इससे देवी की समीपता अभिप्रेत हैं । स्वाहा से विश्वके मातृ रूपका बोध होता है । यह सब पापों को हरने वाला है ।

दक्षिण कालिका के अन्य मन्त्र इस प्रकार है–क्रीं एकाक्षर मन्त्र है । यह महामन्त्र सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है । ह्रीं दूसरा एकाक्षर मन्त्र है । इस मन्त्र में उपासना करने के उपासक सब शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है । इन दोनों एकाक्षर मन्त्रों का पुरश्चरण एक लाख मन्त्र जाप का है । और दशाँश हवन का विधान है । 'कुल चूड़ामणि तन्त्र' के अनुसार दिन में एक लाख मन्त्र और रात में एक लाख मन्त्र जप का विधान है । रात्रि जपके दक्षिण कालिका की सिद्धि होती है ।

काली तन्त्र में काली के अन्य मन्त्र भी लिखे हैं--

ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं ।

इसका एक लाख का पुरश्चरण होता है और दशांश हवन । विश्वसार-मन्त्र के अनुसार उपरोक्त मन्त्र में स्वाहा मिलाने पर यह २६ अक्षर का मन्त्र हो जाता है । इस २६ अक्षर वाले मन्त्र में से जब प्रणव को अलग कर दिया जाता है तो यह २२ अक्षर का बन जाता है यथा–

ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

'प्रणव और स्वाहा' हटा देने पर १० अक्षरका मन्त्र बन जाता है ।

'ओं ह्री क्रीं में स्वाहा' यह मन्त्रों का राजा विख्यात है । इसका नाम काली हृदय है ।

विश्वासार-तन्त्र में कुछ और मन्त्रों का निर्देश है--

क्रीं ह्रीं ह्रीं यह महाकाली का मन्त्र है जिसको स्ययं महाकाली ने कहा है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा ।
क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा ।
ऐं नमः क्रीं ऐं नमः क्रीं कालिकायै स्वाहा ।
क्रीं क्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।
क्रीं हुँ ह्रीं दक्षिणे कालिके फट् ।
क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।
क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।
क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।
क्रीं हूँ हूँ ह्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं स्वाहा ।
क्रीं क्रीं हँ हँ ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ स्वाहा ।
क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।
नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा ।
नमः आं आं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा कालिके हूँ ।
क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा ।
क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा ।
क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा ।
ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा ।
क्रीं ह्रीं ह्री दक्षिणे कालिके स्वाहा ।
क्रीं हूँ स्त्रीं दक्षिणे कालिके फट् ।
क्रीं क्रीं हूँ हूँ खीं स्त्रीं कालिके कीं कीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।
क्रीं स्वाहा ।
क्रीं हूँ खीं स्वाहा ।
क्रीं क्रीं क्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा ।
क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।
क्रीं हूँ ह्रीं क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रीं क्रीं हूँ ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रींस्वाहा

माया तन्त्र में यह लिखा है--

नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

तन्त्रान्तर में यह मन्त्र है--

नमः आँ काँ आँ क्रीं फट् स्वाहा कालिके हुँ।

न्यास–

ऋष्यादिन्यास-

शिरसि महाकाल भैरवं ऋषये नमः (दाँये अँगूठे से)

मुखे उष्णिक् छन्दसे नमः (मध्यमा अनामिका से)

हृदये श्री दक्षिणकालिकादेवमायै नमः

(त० म० अनामिका कनिष्ठा से)

गुह्यके बीजाय नमः (तत्वमुद्रा से)

सर्वांगेर कीलकाय नमः (करतलद्वय से)

करन्यास--

क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।

क्रां मध्याभ्यां बषट् क्रीं अनामिकाभ्यां हूँ।

क्रौं कनिष्ठाभ्यां बौषट्, क्रीं करतलकरपृष्ठाभ्याँ फट्।

षडंगन्यास--

क्रां हृदयाय नमः (अनामिका मध्यमा तर्जनी से)

क्रीं शिरसे स्वाहा ,, ,, ,,

क्रीं शिखायै वषट् (मूठी बाँधकर अँगूठे से)

क्रौं कवचाय हुं (दोनों करतलों से)

क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् (तर्जनी, मध्यमा, अनामिकासे)

क्रः अस्त्राय फट् (दक्ष तर्जनी मध्यमा से बांयी हथेली में फटकार कर)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यापकन्यास–

इस मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए ३, ५, ७ बार सिर से पैर तक और फिर पैर से सिर तक करे।

अतिमातृका न्यास–

धूम्राभ विशुद्ध चक्र के १६ दलों में १६ स्वरों के आदि में 'ओं' और अन्त में नमः मिलाकर हर दलमें न्यास करना चाहिए। यथा 'ओं' 'आ नमः' आदि मूँगे की तरह लाल रंग के अनाहत चक्र के १२ दलों में 'क' से लेकर 'ठ' तक के १२ व्यंजनों को उसी तरह एक व्यंजन का एक-एक दल में न्यास करना चाहिए। नील जीमूत वर्ण के मणिपूर चक्र के १० दलों में 'ड'से 'फ' तक के १० अक्षरों का पहले की तरह न्यास करना चाहिए। वियन् की तरह रंग वाले स्वाधिष्ठान चक्र के ६ दलों में 'ब'से 'व' तक ६ वर्णों का पहले की तरह न्यास करे। सोने की तरह लाल रंग के मूलाधार चक्र का पहले की तरह न्यास करे। चन्द्रमा की तरह रंग वाले आज्ञा चक्र के दोनों दलों में 'ह' और 'स' वर्णोंका पहले की तरह न्यास करना चाहिए।

बहिर्मातृका न्यास–

सृष्टि, स्थिति और संहार इसके तीन भेद हैं। यामल में लिखा है कि गृहस्थी के लिए स्थिरता, ब्रह्मचारियोंके लिए स्थिन्त्यन्ता और यती व वानप्रस्थों के लिए संहारता है।

सृष्टिमातृका न्यास–

मानसिक रूप से पृष्ठों द्वारा तत्वमुद्रा और नीचे लिखी मातृका मुद्राओं में न्यास करना चाहिए।

ॐ आं नमः ललाट् अनामा।

ओं आं नमः-मुखमण्डल-मध्यमा।

ओं हं नमः-नमः ओं ईं नमः-दोनों नेत्र-तर्जनी-मध्यमा

अनामा-वृद्धा, ओं उं नमः ओं ऊं नमः-दोनों कर्णः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंगुष्ठ, ओं ॠं नमः, ओं ॠं नमः दोनों नासापुट--कनिष्ठांगुष्ठ, ओं लृं नमः, ओं लृं नमः--दोनों गाल-दोनों मध्यांगुलियां, ओं एं नमः, ओं ऐं नमः। दोनों होठ मध्यमा ननामा से ओं ओं नमः, ओं ओं नमः, दोनों दन्तपंक्तियाँ ओं अं नमः, ओं अः नमः, जिह्वा और तालुमूल (ब्रह्मरन्ध्र) ओं कं नमः- दक्षिण बाहुमूल, ओं खं नमः-कूर्पर (कुहनी) ओं गं नमः-मणिबन्ध (कलाई) ओं घं नमः-अंगुलमूल, ओं ङं नमः-अंगुली अग्रः-मध्यमा। इसी प्रकार मध्यमा से ओं चं नमः ओं छं नमः ओं जं नमः ओं झं नमः, ओं ञं नमः-वामबाहुमूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल और अंगुल्यग्र में, ओं टं नमः, ओं ठं नमः, ओं डं नमः, ओं ढं नमः ओं णं नमः-दक्षिण पादतले, जानु, गुल्फ और अंगुलियों के मूल और अग्रभाग में ओं नं नमः-वामपाल मूले, जानु गुल्फ और अंगुलियों के अग्रभाग में, दक्षपार्श्व में ओं पं नमः वामपार्श्व में ओं फं नमः। ओं बं नमः-पृष्ठ में-मध्यमा अनामा और कनिष्ठा तीनों से, ओं भं नमः-नाभि तर्जनी छोड़ चारों अंगुलियों से, ओं मं नमः-पेट पाँचों अंगुलियों हस्ततल से ओं यं नमः-हृदय ओं रं नमः-दक्षबाहुमूल, ओं शं नमः, :- हृदय से लेकर दाहिने हाथ तक, ओं षं नमः-हृदय से वाम कर पर्यन्त, ओं सं नमः। हृदय से दक्ष पादपर्यन्त ओं हं नमः-हृदय से वाम पादपर्यन्त, ओं लं नमः-हृदय से नाभिपर्यन्त, ओं क्षं नमः-हृदय से मुख-पर्यन्त।

२--स्थिति मातृका न्यास

पहले की तरह ऋष्यादि करांगन्यास कर स्थिति मातृका संरस्वती का इस तरह का ध्यान करना चाहिए-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिन्दूर कान्तिममिताभरणं त्रिनेत्रां ।
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवरं दधानाम् ॥
पार्श्वस्थिता भगवतींमहि काञ्चनाङ्गी ।
ध्यायेत् कराब्जधृत पुस्तक वर्णमालाम् ॥

'इ' से 'क्ष' तक और फिर 'अ' से 'ठ' तक न्यास करे ।

३--संहार-मातृका न्यास--

पूर्व वर्णित ऋष्यादि करांगन्यास करके संहार मातृका सरस्वती का इस तरह ध्यान करना चाहिए--

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं ।
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ॥
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरबिन्दुवासां ।
वर्णेश्वरीं प्रणमतस्तनभारनम्राम् ॥

'क्ष' से न्यास शुरू करके 'अ' का विलोम क्रम से जब न्यास किया जाता है तो वह संहार मातृका न्यास कहलाता है ।

४--कला-मातृका-न्यास--

ॐ अस्य श्रीं कलामातृकान्यासस्थ प्रजापतिर्ऋषि गायत्री छन्दः श्रीं शारदा देवता जपाङ्गत्वे (पूजाङ्गत्वे) विनियोगः
शिरसि प्रजापतिऋषये नमः ।
मुखे गायत्री छन्दसे नमः ।
हृदि श्री शारदा देवतायै नमः ।
अं ओं आं अंगुष्ठाभ्यां नमःऋणों ऋ अनामिकाभ्यां नमः ।
इं ओं ईं तर्जनीभ्यां नमः लृं ओं ओं लॄं कनिष्ठाभ्यां नमः
उं ओं खं मध्यमाभ्यां नमः ओं अः करतलपृष्ठाभ्यां नमः

इसी तरह षडङ्ग न्यास का ध्यान करना चाहिए । यथा-

हस्तै पद्मं पथाङ्ग गुणमय हरिणं पुस्तकं वर्ण मालां टङ्कं
शुभ्रं कपालं दरममृड्डलसद्धेमकुम्भं वहन्तीम् ॥
मुक्ता विद्युत्पयोदस्फटिकनवजवाबन्धुरैः पञ्चवक्त्रैस्त्र्यक्षैर्व-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षोजनम्रां सकलशनिभां शारदां तां नमामि ।।

ॐ अं निवृत्यै नमः ।

ॐ आं प्रतिष्ठायै नमः ।

ॐ इं विद्यायै नमः ।

ॐ ईं शान्त्यै नमः ।

ॐ उं इन्धिकायै नमः ।

ॐ ऊँ दीपिकायै नमः ।

ॐ ऋं रेचिकायै नमः ।

ॐ ॠं मोचिकायै नमः ।

ॐ ऌं परायै नमः ।

ॐ ॡं सूक्ष्मायै नमः ।

ॐ एं सूक्ष्मामृतायै नमः ।

ॐ ऐं ज्ञानमृतायै नमः ।

ॐ ओं आप्यायिन्यै नमः ।

ॐ औं व्यापिन्यै नमः ।

ॐ अं व्योमरूपायै नमः ।

ॐ अः अनन्तायै नमः ।

ॐ कं सृष्ट्यै नमः ।

ॐ खं ऋद्धयै नमः ।

ॐ गं स्मृत्यै नमः ।

ॐ घं मेधायै नमः ।

ॐ ङं कान्त्यै नमः ।

ॐ चं लक्ष्म्यै नमः ।

ॐ छं द्युत्यै नमः ।

ॐ जं स्थिरायै नमः ।

ॐ झं स्थित्यै नमः ।

ॐ ञं सिद्धयै नमः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ टं जरायै नमः ।
ॐ ठं पालिन्यै नमः ।
ॐ डं शान्त्यै नमः ।
ॐ ढं ऐश्वर्यै नमः ।
ॐ णं रत्यै नमः ।
ॐ तं कमिकायै नमः ।
ॐ थं वरदायै नमः ।
ॐ दं ह्लादिन्यै नमः ।
ॐ धं प्रीत्यै नमः ।
ॐ नं दीर्घायै नमः ।
ॐ पं तीक्ष्ण्यै नमः ।
ॐ फं रौद्रयै नमः ।
ॐ बं भयायै नमः ।
ॐ भं निद्रायै नमः ।
ॐ मं तन्द्रायै नमः ।
ॐ यं क्षुद्रायै नमः ।
ॐ रं क्रोधिन्यै नमः ।
ॐ लं क्रियायै नमः ।
ॐ वं उत्क्रायै नमः ।
ॐ शं मृत्यवे नमः ।
ॐ षं पीतायै नमः ।
ॐ सं श्वेतायै नमः ।
ॐ हं अरुणायै नमः ।
ॐ लं असितायै नमः ।
ॐ क्षं अपन्तायै नमः ।

श्रीकण्ठादिमातृकान्यास--

ओं अस्य श्री कण्ठादिमातृकान्यासस्य दक्षिणामूर्ति-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋषि गायत्री छन्दः श्रीअर्धनारीश्वरौ देवता ह्लो-
बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तयः कीलकानि पूजाङ्गत्वे
(जपाङ्गत्वे) विनियोगः ।
दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः शिरसि ।
गायत्री छन्दसे नमः मुखे ।
अर्द्धनारीश्वरेदेवतायै नमः हृदये ।
ह्लो बीजेभ्यः नमः गुह्ये ।
स्वरेभ्यः शक्तियो नमः पादयोः ।
अव्यक्ततेभ्यो कीलेभ्यो नमः सर्वाङ्गे ।
अं कं खं गं घं ङं आं ह्सां अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
इं चं छं जं झं ञं ईं ह्सीं तर्जनीभ्यां नमः ।
उं टं ठं डं ढं णं ओं ह्स मध्यमाभ्यां नमः ।
एं तं थं दं धं नं ससैं अनामिकाभ्यां नमः ।
ओं पं फं बं भं मं ह्सौ कनिष्ठाभ्यां नमः ।
अं यं रं लं वं अः हंसः करतलपृष्ठाभ्यां नमः ।

इसी तरह हृदगादि ६ अङ्गों में न्यास करना चाहिए ।

बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशांकुशो च वरदं निजबाहुदण्डेः ।
विभ्राणमिन्दुसकलांभरणं त्रिनेत्र
मूर्धाम्बिकेषमनिश वपुराश्रयामः ॥

अब नीचे लिखे मन्त्रों से कण्ठादि न्यास करे हर मन्त्र के आरम्भ में हसौः और अन्त में नमः जोड़ना चाहिए । यथा-

ह्सौं, अं कण्ठेशपूर्णेदरीभ्यां नमः । आं श्री अनन्तेश्वरि-
जाभ्याँ नमः । इ सूक्ष्मेश शालीभ्यां ।
ईं त्रिमूर्तीशलौलाभ्यां । उ उमरेशवर्तुलाक्षीभ्यां ।
ऊं अर्धीशदीर्घघोणाभ्यां । ऋ भारभूतीशदीर्घमुखीभ्यां ।
ॠं अतिथिशगोमुखीभ्यां । लृ स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लृं हरेशकुण्डोदरीभ्यां। एं झिण्टीशऊर्ध्वकेशोभ्यां एं
भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां। ओं सद्योजातेश ज्वालामुखीभ्यां
ओंअनुग्रहेशउल्कामुखीभ्यां। अक्रूडेश श्री सुखीभ्यां।
अः महासोनेश विद्यामुखींभ्यां। कं कधीशमहाकालीभ्यां
खं चण्डेश सरस्वतीभ्यां।
गं पञ्चान्तकेश गौरीभ्यां।
घं शिवेश त्रैलोक्य विद्याभ्यां।
ङं एक रुद्रेश मन्त्रशक्तिभ्यां।
चं कूर्मेश अष्ट शक्तिभ्यां।
छं एक नेत्रेशमूत मातृभ्यां।
जं चतुराननेशलम्बोदरीभ्यां।
झं अजेशद्राविणीभ्यां।
ञं सर्वेशनागरीभ्यां।
टं सोमेखेचरीभ्यां।
ठं लाङ्गलीशमञ्जरीभ्यां।
डं दरुकेश कपिलाभ्यां।
ढं अर्धनारीश्वोरिणाभ्यां।
णं उमा कान्तेश काकोदरीभ्यां।
तं आषाढीश पूतनाभ्यां।
थं दण्डीश भद्रचालीभ्यां।
दं अत्रीश योगिभ्यां।
धं मीनेश शखिनींभ्यां
नं मेषेश तर्जनोभ्यां।
पं लोहितेश कालिरात्रिभ्यां।
फं शिखीश कुब्जिकाभ्यां।
बं छगलण्ड कर्पदिनीभ्यां।
मं महाकालेश जयाभ्यां।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यं वाणीश सुखीश्वरीभ्यां ।
रं भुजंगेश्वरेवतीभ्यां ।
लं पिनाकीश माधवीभ्यां ।
वं खड्गीशवारुणीभ्यां ।
शं वकेश वायवीभ्यां ।
षं श्वेतेशर क्षोविधरिणीभ्यां ।
सं भृग्वशसह जाभ्यां ।
हं नकूलीश लक्ष्मीभ्यां ।
लं शिवे शव्यापिनीभ्यां ।
क्षं सम्वर्तकेश महामाभ्यां नमः ।

वर्णन्यास--

निम्न न्यास तत्व मुद्रा से यथोक्त स्थानों में करें--

ओं अं आं इं ईं उं ऊं ऋ ॠं लृं ॡं नमः	हृदय
ओं एं ऐं ओ औं अं अः कं खं गं घं नमः	दश भुजा
ओं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः	वामभुजा
ओं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः	दक्ष जंघा
ओं मं यं रं लं वं शं सं हं क्षं नमः	वाम जंघा

षोडान्यास--

१. ओं से पुटित मातृका और मातृका-पुटित प्रणव मातृका
२. लक्ष्मी बीज-पुटित मातृकाऔरमातृका:पुटितलक्ष्मीबीज
३. कामबीज-पुटत मातृका और मातृका पुटित कामबीज।
४. माया बीज-पुटित मातृकाऔर मातृका:पुटित मायाबीज
५. काली बीज द्वय (क्री क्री)पुटित ॠं लृं ॡं और ऋॠ लृ ॡ पुटित कालीबीजद्वय ।
६. मूल पुटित मातृका और मातृका पुटित मूलबीज (क्रीं)

इनसे अनुलोम और विलोम क्रम से तत्व मुद्रा मातृका न्यास के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब स्थानों में न्यास कर लेने पर कुल १०८ बार व्यापक न्यास करना चाहिये।

तत्वन्यास--

मूल मन्त्र 'क्रीं' होने पर उसके भाग करने चाहिए--क, र, ई। विद्याराज्ञी होनेपर आरम्भ के ७ बीजों का पहला भाग (क्रीं क्रीं हूँ ह्रीं ह्रीं) मध्य खण्ड के ६ अक्षरों (दक्षिण कालिके) का और तीसरे खण्ड (क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा) नो वर्णों का करना चाहिए। इन विभागों से शिर से नाभि तक, नाभि से हृदय तक और हृदय से सिर तक न्यास करना चाहिए।

बीजन्यास--

क्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्र में।
क्रीं नमः भ्रू-युगल में।
क्रीं नमः ललाट में।
हूँ नमः गुह्य में।
हूँ नमः नाभि में।
हूँ नमः मुख में।
ह्रीं नमः सर्वाङ्ग में।

विद्यान्यास--

सिर--क्रीं नमः,
मूलाधार-- क्रीं नमः,
हृदय--क्रीं नमः,
तीनों नेत्र--क्रीं नमः,
दोनों कान--क्रीं नमः,
मुख--क्रीं नमः,
दोनों भुजा--क्रीं नमः,
पीठ--क्रीं नमः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों जानु--क्रीं नमः ।
और नाभि--क्रीं नमः ।

लघु षोडान्यास--

मस्तक--ॐ नमः,
मूलाधार--स्त्री नमः,
लिंग--एं नमः,
नाभि--क्रीं नमः,
हृदय--ऐं नमः,
कण्ठ--क्रीं नमः,
भ्रूमध्य--हसौ नमः,
दाहिनी बाहु--ॐ नमः,
वाम बाहु--श्रीं नमः,
दक्ष पाद--ह्रीं नमः,
वाम पाद--क्रीं नमः,
पीठ--क्रीं नमः,

पीठन्यास--

हृदय में तत्व मुद्रा से--ओं ह्रीं आधार शक्तये नमः ।
पं प्रकृत्यै नमः,
कं कूर्माय नमः,
शं शेषाय नमः,
ते पृथिव्यै नमः,
ओं सुधाम्बुध्ये नमः,
ॐ मणिद्वीपाय नमः,
ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः,
ॐ श्मशानाय नमः,
ओं पारिजाताय नमः,
ओं रत्निवेदिकायै नमः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ नाना मुनिभ्यो नमः,
ॐ नाना देवेभ्यो नमः,
ॐ धर्माय नमः--दायाँ कन्धा,
ॐ ज्ञानाय नमः--बायाँ कन्धा,
ॐ वैराग्याय नमः--दाहिनी कमर,
ॐ ऐश्वर्याय नमः--बाँई कमर,
ॐ अधर्माय नमः--मुख,
ॐ अज्ञानाय नमः--बायाँ भाग,
ॐ अवैराग्याय नमः--नाभि,
ॐ अनैश्वर्याय नमः--दाहिना भाग।

इसके बाद षोडश दल के कमल की कर्णिका में--

ॐ आनन्दकन्दाय नमः।
ॐ अनन्ताय नमः।
ॐ पद्माय नमः।
ॐ अर्कमण्डलाय द्वादश कमलात्मने नमः।
ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः।
ॐ मं वह्निमण्डलाय वशकलात्मने नमः।
ॐ तमं तमसे नमः।
ॐ आं आत्मने नमः।
ॐ अन्तरात्मने नमः।
ॐ पं परमात्मने नमः।
ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।

इसके बाद अष्टदलों पर पूर्व से- ईं इच्छाशक्तयै नमः
ज्ञां ज्ञानशक्तयै नमः,
कं क्रियाशक्तयै नमः,
कं कामिन्यै नमः,
कां कामदायै नमः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रं रत्यै नमः
रं रतिप्रियायै नमः,
आं आनन्दायै नमः ।
कर्णिका पर– मं ममोन्मन्यै नमः
उसके बाद ऐं परायै नमः ।
हंसौ-अपरायै नमः ।
सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः

पूजा मन्त्र---

आदौ त्रिकोणमालिख्य त्रिकोणं तद्वहिर्लिखेत् ।
ततो वै विलिखेनमन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ।।
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः ।
वृत्तं विलिख्य विधिवत लिखेदभूपूरमेककम् ।।
मध्ये तु वैन्दवं चक्रं वीजमाया विभूषिताम् ।।

'प्रथम विन्दु फिर मीज निज क्रीं, फिर भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं' लिखे और इसके बाहर त्रिकोण और उसके भी वाहर तीन त्रिकोण बना कर फिर अष्टदल पद्म और फिर वृत्त बनावे । उसके बाहर चतुर्द्वार बनावे । यही काली पूजा का मन्त्र कहा गया है–

जप--

लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्लाशी दिवा शुचिः ।
ततस्तु दद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये ।।

पूजन के अन्त में मूल मन्त्र का एक लाख बार जाप करे और जप के दशांश घृत की आहुति दे।

ध्यान--

कमलवदनां घोरा मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम् ।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणधोर्द्धपाणिकाम् ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम् ।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्च्चिताम् ॥
कर्णावतसतानींतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्राकरालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्ची हसन्मुखीम् ।
सृक्कच्छगटागलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥
घोररवांमहारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थितान् ॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समिन्दताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ॥
सुख प्रसन्नवदनां स्मेराननरोरुहाम् ।
एवं सचिन्तयेत् क्लीं सर्वकामसमृद्धिदाम् ॥

'भगवती काली देवी करालवंदना, घोरा, मुक्तकेशी, चार भुजा वाली एवं मुण्डों की माला से सुशोभित हैं। उनके बांये अंग के दोनों हाथों में तत्काल छेदित मृतक का शीश और खंग है तथा दांये अंग के दोनों हाथों में उभय और वरमुद्रा स्थित है। कण्ठ में मुण्डों की माला से युक्त वह देवी महादेघ के समान श्याम वर्ण, दिगम्बरा काली टपकते हुए रुधिर से चर्चित, घोर दंष्ट्रा, पीन पयोधरा, दोनों कानों से लटके दो मृतक-मुण्ड अलंकार रूपसे सुशोभित कटिमें मृतक हाथों की कोधनी वाली, हास्यमुखी हैं। उनके ओष्ठद्वय से रुधिर धारा टपकने के कारण कम्पित मुख वालीं, घोर शब्द वाली, महारौद्री एवं श्मशान में निवास करने वाली है। तरुण-अरुण के समान उनके तीनों नेत्र, बड़े-बड़े दांत और लम्बे-लम्बे बाल हैं। वह मृतक तुल्य सदाशिव के हृदय पर स्थिति है। घोर रव वाली गीदड़ी उनके चारों ओर घूमती हैं। महाकाल के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साथ विपरीत व्यापार में निमग्न वह देवी प्रसन्नमुखी एवं सफल कार्यों के करने वाली हैं ऐसा चिन्तन करें।'

काली कवच--

काली पूजा श्रुता नाथ भवाश्च विविधाः प्रभो ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ।
त्वमेव शरणं नाथ त्राहि मां दुःखसंकटात् ।
त्वमेव स्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि ॥

भैरवी बोली-प्रभो ! काली पूजन और उसके विविध भाव तो मैंने सुने, अब उनके कवच को सुनना चाहतीहूँ । आप उसका वर्णन कर मेरे दुःख दूर कीजिए । हे नाथ ! तुम ही मेरे आश्रय हो । तुम ही रक्षा और संहार करते हों ।१।

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे ।
श्रीजगन्मंगलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
पठित्वा धारयित्वा च त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ॥२

भैरव बोले-'हे प्रिये ! मैं तुम्हारे प्रति श्री जगन्मंगल नामक कवच को कहता हूँ । इसका पाठ करने अथवा इसे धारण करने से साधक तीनों लोकों को शीघ्र ही मोहित कर सकता है ।'

नारायणोऽपि यद्धृत्वा नारीभूत्वा महेश्वरम् ।
योगेशं क्षोभमनयद्याद्धत्वा च रघूद्वहः ।
वर-दृप्तन् जघनेव रावणादि निशाचरान् ॥३

'भगवान् नारायण ने इसे धारण किया और नारीरूप से योगेश्वर शंकर को मोहित कर लिया तथा श्रीराम ने जव इसे धारण किया तो इनकी शक्ति से रावण आदि घोर राक्षसों को नष्ट कर डाला ।३।'

यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ।
धनाधिपः कुवेरोऽपि सुरेशोऽभूश्छचीपतिः ।
एव सकला देवाः सर्वसिद्धेश्वरीः प्रिये ॥४

'मैं भी इसी से त्रैलोक्य विजयी हुआ हूँ । इसी कृपा से कुवेर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धन के अधिपति हुए और शचीपति देवेन्द्र तथा देवताओं ने इसी कवच के प्रसाद से सर्व सिद्धियों को प्राप्त किया।४।'

श्रीजगन्मंगलास्यस्य कवचस्य ऋषिशिवः।
छन्दोऽष्टुवदेवता च कालिका दक्षिणेरिता ॥
जगतां मोहने दुष्टनिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्तितः ॥५

'इस कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता, दक्षिण कालिका, मोहन, दुष्ट-निग्रह, भुक्ति।मुक्ति तथा योषिदाकर्षण में इसका विनयोग है।५।'

शिरौ मे कालिका पातु क्रीड़ारैकाक्षरी परा।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटञ्च कालिका खंगधारिणी ॥
हं हं पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम।
दक्षिणा कालिका पातु घ्राणयुग्म महेश्वरी ॥
क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हं हं पातु कपोलकम्।
वदनां सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वरूपिणी ॥६

'कालिका और क्रींकारा मेरे शिर की, क्रीं क्री और खंग धारिणी कालिका मेरे ललाट की, हुं हुं दोनों नेत्र की ह्रीं ह्रीं कानों की दक्षिण कालिका दोनों घ्राण की, क्रीं क्री रसना की, हुं हुं कपोल की और ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी मेरे सम्पूर्ण वदन की रक्षा करे।६।'

द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा।
खंगमुण्डधरा काली सर्वांगमभितोऽक्तु।
क्रीं हुँ ह्रीं त्र्यक्षरीं पातु चामुण्डा हृदय मम ।
एं हुँ ओं एं स्तत्द्वयं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम्।
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकृत्तिका।
क्रीं क्रीं हुँ हुँ ह्रीं ह्रीं करौ पातु षडक्षरी मम ॥७

बाईस अक्षर विद्या रूपिणी महाविद्या दोनों कंधों की खंग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुण्ड धारण करने वाली काली सर्वाङ्ग की हूँ ह्रौं चामुण्डा हृदय की ऐं हूँ ओं ऐं दोनों स्तनों की, ह्रीं फट् स्वाहा कन्धों की, अष्टाक्षरी महाविद्या दोनों भुजाओं की तथा क्रीं आदि षड़क्षरी विद्या मेरे दोनों की रक्षा करें ।७।

क्रीं नाभि मध्यदेशञ्च दक्षिणा कालिकाऽवतु ।
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठन्तु कालिका मा दशाक्षरी ।।
ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालके हुँ ह्रीं पातु कटिद्वयम् ।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूरुयुग्मकान् ।।
ॐ ह्रौं क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम ।
कालो ह्न्नाम विद्येय चतुर्वर्ग फलप्रदा ।।८

'क्रीं नाभि देश की दक्षिण कालिका मध्य देश की क्रीं स्वाहा और दशाक्षरी मन्त्र पीठ की, ह्रीं क्रीं कालिके हुँ ह्रीं कटि की, दशाक्षरी विद्या ऊरु की तथा ओं ह्रीं क्रीं स्वाहा मेरे जानु प्रदेश की रक्षा करे। यह विद्या चारों वर्गों को फल देने वाली है ।८।'

क्रीं ह्रीं ह्रीं पातु गुल्फं दक्षिणे कालिकेऽवतु ।
क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा पदं पातु चतुर्दशाक्षरी मम ।। ९

'क्रीं ह्रीं ह्रीं गुल्फ की, क्रीं ह ह्रीं स्वाहा पाँव की एवं चतुर्दशाक्षरीं विद्या मेरी रक्षा करे ।९।'

खंगनुण्डधरा काली वरदा भयवारिणी ।
विद्याभि: सकलाभि: सा सर्वांगमभितोऽवतु ।।१०

'खग मुण्ड धारण करने वाली, वरदायिनी, भव हारिणी भगवती काली अपनी सम्पूर्ण विद्याओं सहित मेरे सर्व शरीर की रक्षा करें ।१०

काली कपालिनी कुल्वा कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता तथोग्राभा दीप्ता घनत्विष: ।।
नीला घना बालिका च माता मुद्रामिता च माम् ।
एता: सर्वा: खंगधरा मुण्डमालाविभूषिता: ।।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रक्षन्तु मां दिक्षु देवी ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता॥
वाराही नारसिंही च सर्वाश्चामितभूषणाः।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु माँ विदिक्षु तथा तथा ॥११

'काली, कपालिनी, विप्रचित्ता, उग्रप्रभा वाली, नीला, घना, नाता, खंग धारिणी, मुंडमाला विभूषिनी यह सब रूप वाली देवी, ब्राह्मी नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा कुमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही यह सब अमित आभूषणों के धारण करने वाली भगवती मेरे दिक्-विदिक् की सर्वत्र रक्षा करें।११।'

इत्येवं कथितं दिव्यं काचं परमाद्भुतम्।
श्रीजगन्मंगलं नाम महामन्त्रौघविग्रहम्॥
त्रैलोक्याकर्षणं ब्रह्मकवचं मन्मुखोदितम्।
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात् कवचं ततः।
कवचं त्रिः सकृद्वापि यावज्जीव च वा पुनः॥१२

'यह जगन्मगलं महामन्त्र वाला कवच अद्भुत और परम दिव्य कहा गयाहै। इसके द्वारा तीनों भुवन आकर्षित हो सकते हैं। गुरु-पूजा के पश्चात् कवच को ग्रहण करे। इस कवच का एक बार, तीन बार अथवा जीवन पर्यन्त पाठ करे।१२।'

एतच्छतार्द्धमावृत्त त्रैलोक्यं विजयी भवेत्।
त्रैलोक्य क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः।
महाकविर्भवेन्मासात् सर्वसिद्धीश्वरी भवेत्॥१३

'इसके पचास बार पाठ करने से तीन लोक वश में हो सकते हैं। इसके प्रसाद से त्रिभुवन क्षोभित हो सकता है और इसी कवच के पाठ प्रताप से साधक एक महीने में ही कवि और सर्वसिद्धियों का अधीश्वर होने में समर्थ होता है।१३।'

पुष्पाञ्जलीन् कालिकायै मूले नंव पठेत् सकृत्।
शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥१४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'मन्त्र जप के द्वारा काली को पुष्पांजलि भेंट करे और यदि केवल एक बार इस कवच का पाठ करे, तो सौ हजार की पूजा के समान ही साधक को फल की प्राप्ति होती है ।१४'

भूर्ज्जे विलिवञ्चैव स्वर्णस्थं तारयेद्यदि ।
शिखायां दक्षिणे बाहो कंठे वा धारयेद्यदि ॥
त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयत्क्षणात् ।
वह्वपत्या जीववत्सा भवत्येव न संशयः ॥१५

"इस कवच को भोजपत्र या सोने के पत्र पर लिखकर शीश पर, दाहिनी भुजा पर या कण्ठ में धारण करे तो तीनों भुवनों को मोहित करले अथवा क्रोधावेश में उसे चूर्ण करने में भी समर्थ हो सकता है । स्त्री यदि इस कवच का पाठकरे तो वह सन्तानवती तथा जीवितवत्सा हो सकती हैं, इसमें संशय नहीं है ।१५।'

दश महाविद्याएँ

विद्या की परिभाषा--

श्रुति में कहा है--

'सा विद्या या विमुच्येत्'

'विद्या उसे कहते हैं जिससे मोक्ष की उपलब्धि हो ।'

'अमृतं तु विद्या'

'विद्या अमृत है ।'

'विद्या शक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।'

'विद्या समस्तों की शक्ति होती है अतएव उसे शक्ति उस नाम से कहा जाता है ।'

विद्यते देशकालानवच्छिन्नत्वेन वर्तते या सा विद्या ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देश और काल के अविच्छिन्न होने, जो सदा और सर्वत्र विद्यमान रहती है उसे ही विद्या कहते हैं। देश-काल उसका बाधक नहीं हैं।'

आचार्य शान्तनु के अनुसार-

वेदान्वोद्भावनीय परब्रह्मतत्वावगतिरूप साक्षात्कारलक्षण विद्या।

'वेदान्त के द्वारा उद्भव न करने योग्य परब्रह्म तत्व का ज्ञानरूप जो साक्षात्कार के लक्षण वाली है, वही विद्या है।'

पराशक्ति स्वयं ब्रह्म का प्रकाश है। इसे ही महाविद्या कहते हैं-देवी भागवत (१२।७।३२) में कहा है-

चेतनस्य न दृश्यत्व जडमेव तत्।
स्वप्रकाशञ्च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम्॥

अर्थात् 'चैतन्य का कभी नेत्रों से प्रत्यक्ष नहीं होता है और दृश्य है वह जड़ ही होता है, चैतन्य कभी नहीं होता। चैतन्य स्वयं ही प्रकाश होने वाला है, पर के द्वारा कभी प्रकाशित नहीं होता।'

सतोगुण जब रजोगुण और तमोगुण को दबाकर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है तो दैवी सम्पत्ति का विकास होता है। इसी ज्ञानको विद्या कहते हैं। इस विद्या के गुण हैं-सत्य, प्रेम, न्याय, अहिंसा,अभय बुद्धि, तप, उदारता, इन्द्रिय-निग्रह, श्रद्धा, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, लज्जा, घृति, स्मृति, बोध-शक्ति, स्त्री मात्र में भगवती के दर्शन करना आदि।

विद्या का धात्वर्थ इस प्रकार है-

विद् सत्तायाम् धातु से विद्ज्ञाने-विद्येत्' ज्ञायेत् व्युत्पत्ति से और 'विद्लृ लाभे' धातु से अर्थ है वह परमा शक्तिर्विद्या सच्चिदानन्द रूपा है।

ब्रह्म और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्धहै जैसे अग्नि और उसके जलाने की शक्ति अथवा उसकी गर्मी से होता है। तभी अक्षमालिकोपनिषद में कहा है--

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'यत् सूत्रं यद् ब्रह्म'

'जो सूत्र हैं वह ब्रह्म है ।'

'यत् सुषिरं सा विद्या'

'जो सुषिर हैं वही विद्या है ।'

सा विद्या परम मुक्तेहेतुभू ता सनातनी ।
सांसार हेतुश्च सैव सर्वश्वरेश्वरी ॥

(उपनिषद्)

'यह विद्या ही परमाराध्या शक्ति और भक्ति का साधन है, पर अज्ञानियों के लिए संसार-बन्धन का हेतु भी बन जाता है ।'

परा यया दक्षरमधिगम्यते ।

(मुंडको० १-१-५)

'जिसके द्वारा अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है, उसे परा-विद्या कहते हैं ।

सर्वज्ञतास्य शक्ति परिमिततनुरल्पमेवमात्रपरा ।
ज्ञानमुत्पादयन्ती विद्येति निगद्यते बुधैराद्यै ॥

(तत्व सन्दोह)

'इसकी सर्वज्ञता शक्ति परिमित होकर अल्प ज्ञान रखती हुई ज्ञान का उत्पादन करती हैं, उसे वृद्ध सुधी-जन विद्या कहते हैं ।'

ॐ सर्वं चैतन्य रूपा तमाद्यां विद्यां च ।
धीमहि । बुद्धिः यो नः प्रचोदयात् ॥

(देवी भागवत)

'जो आदि-अन्त-रहित सर्व चैतन्य-स्वरूप, ब्रह्मविद्या रूपी आदि शक्ति है, उसका हम ध्यान करते हैं, वे हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे ।

''विद्या-शक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।
गुणत्रयाक्षया विद्या सा विद्या च तदाश्रया ॥'

(बृहज्जाबालोपनिषद्)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'सर्वत्र विद्या को ही शक्ति कहा गया है, वह विद्या तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार की है। समस्त प्राणी इन्हीं तीनों रूपों के आश्रित रहते हैं।'

दिक्कालानवच्छिन्नत्वेन या विद्यते सा विद्या।

'जिसकी स्थिति प्रत्येक स्थान प्रत्येक काल में हो उसी को विद्या कहते हैं।'

निगम-आगम दोनों शास्त्रों में सृष्टि का प्रतिपादन है। अतः दोनों को 'विद्या' नामसे अभिहित किया जाताहै। सूर्य,चन्द्र, अग्नि पशु-पक्षी कीट-पतंग,धातु, रस, विष, वनस्पति, औषधि, मनुष्य ये सभी पदार्थ विद्या के अन्तर्गत आते हैं। उन्हें क्षुद्र विद्याएँ कहा जाता हैं। सम्पूर्ण विश्व-विद्या तो महाविद्या है। मनीषियों ने इसके दस भाग किये हैं। इन्हीं में विश्व के स्वरूप, उत्पत्ति, बिकास आदि सभी समस्याओं का समाधान किया गया है।

कुछ तांत्रिक विद्वान् दस महाविद्याओं को साधन की भिन्न-भिन्न अवस्था स्वीकार करते हैं। वे लक्ष्मी से कमला तक जीव की दस अवस्थाएँ मानते हैं। इन्हें भोग-वासना की एक प्रतिमा मानना चाहिए। इनका चयन क्रमशः इस प्रकार किया गयाहै कि साधक धीरे-धीरे एक-एक विकार-ग्रन्थि को काटता हुआ ऊपर उठ जाताहै और अन्तमें काली तत्व तक जा पहुँचता है, जिसे साधना का चमत्कार अथवा शेषावस्था कहा जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर भौतिक बन्धन सब ढीले पड़ जाते हैं। जीव का जीवत्व समाप्त हो जाता है और वह ईश्वरत्व में प्रवेश करता है। अतः दस महाविद्याओं की उपासना जीव को क्षुद्र भूमि से उठाकर साधना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचाना है। तभी विद्या को परम-पद, पद, परम-तत्व व अमृतत्व की संज्ञा दी जाती हैं क्योंकि विद्या से ही जीवन-मुक्ति प्राप्त होती है, बिना विद्या के मनुष्य पशुकोटि में आते हैं। वे जीवन-मृत कहे जाते हैं। विद्या ही जीवन है स्फूर्ति है, शक्ति है, सब कुछ है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवी को समस्त विद्या के गौरावान्वित नाम से सम्बोधित करने के कारण पर प्रकाश डालते हुए सप्तशती में कहा गया है–

विद्या: समस्ताव देवि ! भेदा:
स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुति: स्तव्यपरापरोक्ति ।।

अर्थात् 'हे देवि ! सारी विद्याएँ तुम्हारे ही भेद हैं और जगत् में जो समस्त स्त्रियाँ हैं वे भी आपके ही विभिन्न स्वरूप हैं। हे अम्बे ! आप एक में ही यह सम्पूर्ण विश्व पूरित कर रक्खा है। आपकी क्या स्तुति की जावे ? आप तो उक्तियों द्वारा जो स्वरूप दिया जाता है उससे तरा हैं।

विद्या के तीन भेद हैं–आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक इनका क्षेत्र इनके नामों से ही स्पष्ट है। विद्या के दो रूप हैं--परा और अपरा। इनका स्पष्टीकरण 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में इस प्रकार दिया गया है--

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते ।
तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च ।।
सामवेदस्तथाऽथर्ववेद शिक्षा मुनीश्चर ।
कल्पो व्याकरणं चैव निरुक्तं छन्द एव च ।
ज्योतिषं च तथाऽनात्मविषया अपि बुद्धय: ।
अथैषा परमा विद्या यय‌ऽऽनमा परमाक्षरम् ।।
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं रूपवर्जितम् ।
अचक्षु: श्रोत्रमत्वर्थं तदपाणिपदं तथा ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तदव्ययम् ।
तद्भूतयोनि पश्यन्ति धीरा नात्मानमात्मनि ।।

'परा और अपरा नाम की दो विद्यायें हैं, वे साधक के लिए ज्ञातव्य हैं। ऋक, यजु, साम, अथर्व, यह चारों वेद शिक्षा, कल्प

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छन्द, निरुक्त, व्याकरण और ज्योतिष- यह अधूरा है। इसमें आत्म-विषय के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार का बौद्धिक ज्ञान भरा हुआ है। परन्तु जिसके द्वारा आत्म-ज्ञान होता है, वह परा विद्या है, वही परम अविनाशी आत्मतत्व है। वह दिखाई नहीं पड़ता, न ग्रहण किया जा सकता है। उसका नाम, रूप व गोत्रादि कुछ नहीं है। उसके न नेत्र हैं, हाथ-पांव भी नहीं है। वह विषयों से परे, नित्य, विभु, सूक्ष्मातिसूक्ष्म सोने से सर्वगत और निर्विकार है। वह सब भूतों का आश्रय-स्थान है। ज्ञानी पुरुष उस परमात्मा का अपने ही आत्मा में दर्शन करते हैं।'

दस महाविद्याओं के नाम इस प्रकार हैं--

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥
मातङ्गी सिद्धविद्या च कथिता बगलामुखी।
एता दश महाविद्या हर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥

१. काली २. तारा ३. षोडशी (त्रिपुर सुन्दरी) ४. भुवनेश्वरी (राज-राजेश्वरी, श्रीविद्या, ललिता) ५. भैरवी (त्रिपुरभैरवी) ६. छिन्नमस्ता, ७. धूमावती (अलक्ष्मी) ८. मातंगी ९. बगलामुखी १०. कमला लक्ष्मी।

इनमें काली के शिव हैं, महाकाल तारा के अक्षोभ्य, षोडशी के पञ्चवक्त्र, भुवनेश्वरी के त्र्यम्बक, भैरवी के दक्षिणमूर्ति, छिन्नमस्ता के कबन्ध, मातंगी के मातंग, बगलामुखी के एकमुख महारुद्र, कमला के सदाशिव श्रीविष्णु। धूमावती विधवा है।

इन दस महाविद्याओं का दस अवतारों से भी सम्बन्ध स्थापित किया गया है--

कृष्णमूर्ति काली अरु तारा राममूर्ति जान।
छिन्ना नरसिंहमूर्ति वेदन बखानी है ॥
वामन भुवनेशी औ बगला कौ कूर्म रूप।
मत्स्यमूर्ति जान धूमा शास्त्रन में गानी है ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जामदग्न्य सुन्दरी और भैरवी हली को जान ।
बौद्ध-रूप लच्छिमी प्रसिद्ध बात मानी है ।।
दुर्गा शान्ति रूप ही सों दश अवतार भए ।
ताप-त्रय दूर करे आदि महरानी है ।।

काली की कृष्ण मूर्ति हैं और तारा की राम मूर्ति जाननी चाहिए। छिन्न मस्ता की नरसिंह मूर्ति वेदोंने बतलाई हैं। भुवनेश्वरी वामन और बगला का कूर्म रूप होता है । धूमा मत्स्य मूर्ति होती है जो शास्त्रों में पाई गई है । सुन्दरी जमदग्न्य और भैरवी हली का स्वरूप है । लक्ष्मी बौद्धरूपा है जो परम प्रसिद्ध है । दुर्गा शान्ति स्वरूप है । इस तरह ये दसों अवतार हैं जो तीनों तापोंको भगाते हैं और ये आदि महारानी है।

दस संख्या का महत्व—

दस संख्या की महत्ता निगम-अनुगम श्रुतियों में इस प्रकार वर्णित की गई हैं--

दशाक्षर वै विराट् (शत् १।१।१)

दस अक्षर वाला विराट् है ।'

यज्ञो वै दश होता (तै० ब्रा २।२।१।६)

'यज्ञ वह होता है जिसमें दस हवन करने वाले हुआ करते हैं ।'

विराट् वै यज्ञः (शत० १।१।१)

'विराट् ही यज्ञ होता है ।'

यज्ञ उ वै प्रजापतिः (कौ० ब्रा० १०।१)

'यज्ञ ही प्रजापति है ।'

प्रतिष्ठा दश महः (कौ० ब्रा० २६।२)

'जिससे दस की प्रतिष्ठा है ।'

प्रजापतिर्वै दशहोता (तै ब्रा० २।१।१।३)

'प्रजापति दस होता वाला होता है ।'

अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशमह (तै० ब्रा० २।२।३।१)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'अथवा यज्ञ का अन्त जिस दस वाला माना गया है।'

शास्त्र का कहना है कि दशाक्षर पूर्ण विराट् से सृष्टि की रचना नहीं होती। न्यून विराट् से यह कार्य सम्पन्न होता हैं। कहा भी है--न्यूनाद्वा इमा: प्रजा प्रजा प्रजायन्ते।' केवल पुरुष और पुरुष मिलकर सृष्टि नहीं कर सकते और न ही स्त्री और स्त्री यह कार्य कर सकतींहैं भोग्या-स्त्री और भोग्य-पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है। स्त्री सौम्या है, पुरुष आग्नेय है। अत: पुरुष प्रबल है, स्त्री उससे न्यून है। इस न्यून सम्बन्ध से ही, पुरुष-स्त्री के संयोग से ही उत्पत्ति होती है। इसे शास्त्रीय भाषा में यह कहा जाता है कि दशाक्षर पूर्ण से प्रजोत्पत्ति नहीं होती, ९ अक्षर में न्यून विराट् से ही यह निर्माण कार्य होता है। विराट् सूक्ष्म है। उसमें से एक अक्षर कम कर दिया जाय तो उसके विराट्पने में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करता है।

न वै एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्

९ का अंक भी महत्वपूर्ण है रामायण में परशुराम की श्रेष्ठता की चर्चा करते हुए कहा गया है कि--'नवगुण परम पुनीत तुम्हारे ब्राह्मणों के, ब्रह्मपरायण व्यक्तियों के, परम पुनीत नौ गुण होते हैं। यह नौ गुण यह हैं--(१) सत्य (२) अहिंसा (३) चोरी न करना (४) इन्द्रिय-निग्रह (५) अधिक संचय का लोभ न करना (६) पवित्रता (७) कष्ट सहिष्णुता (८) विद्या (९)ईश्वर और धर्म पर आस्था। इन्हीं नौ परम पुनीत गुणों को थोड़े हेर-फेर के साथ धर्म के दस लक्षणों में गिनाया गया है। योग शास्त्र में इन्हें पाँच यम और नियम के नाम से कहा गया है। इन्हें मनुष्य का इन्सानियत का चिह्न भी कह सकते हैं।

इस भूलोक में नौ सिद्धियाँ हैं जिन्हें प्राप्त करने से आनन्दकी वृद्धि होती है। जिसके पास यह नौ सिद्धियाँ जितनी अधिक संख्या में होंगी या जितनी अधिक मात्रा में सिद्धि होगी वह उतना ही सुखी रह

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकेगा। नौ सिद्धियाँ इस प्रकार हैं--(१) विवेक, (२) पवित्रता (३) शान्ति (४) साहस (५) स्थिरता (६) कर्तव्य-निष्ठा (७) स्वास्थ्य (८) समृद्धि (६) सहयोग।

६ का अंक इतना महत्वपूर्ण है कि इसकी महिमा कहते-कहते थक जाना पड़ता है। नीचे कुछ विवरण देखिये।

(१) रम्यो राम इमि जगत् में, नहीं द्वैत विस्तार।
जैसे घटत न अंक नव, नव के लिखत पहार ॥

नौ का पहाड़ा चाहे जितनी बार पढ़ा जाय पर उनके जोड़ का परिणाम ६ ही होता है (जैसे ६×२ = १८, १+८--६, ६×३ = २७, २+७ = ६) इसी प्रकार चाहे जितनी बार नौ का पहाड़ा गिना जाय, उन अक्षरों का योग ६ ही होगा। जैसे नौ के पहाड़े की सब संख्याओं में नौका अक्षर मिला हुआ है, उसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर छिपा हुआ है।

(२) जगते रहु छत्तीस (३६) ह्वै, राम चरन छै तीन (६३।
तुलसी देखि विचार हियः है यह मतौ प्रवीन ।

छत्तीस की संख्या में तीन और छै के अंकों का मुख एक दूसरे से विपरीत दिशा में हैं, इसी प्रकार सांसारिक मगया-बन्धनों से हमें विमुख रहना चाहिए। जैसे ६३ की संख्यामें यह दोनों अक्षर आमने-सामने हैं, वैसे ही हमें राम की ओर मुख किये रहना चाहिए। उपदेश देने वाली इन दो संख्याओं-३६ का तथा ६३ के अङ्कों का भी जोड़ नौ होता है।

(३) अक्षौहिणी सेना की संख्या में नौ का ही प्रतिफल है। अक्षौहिणी संख्या २१८७००० होती है इनका योग देखिये।

२+१+८+७ = १८, १+८ = ६

(४) युगों की संस्थाओं का परिणाम ६ होता हैं। देखिए कलियुग का वर्ष ४३२०००, ४+३+२--६, द्वापर वर्ष ८६४०००।

८+६+४ = १८ में १+८ = ६, त्रेता वर्ष १२६६००० में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१+२+९+६=१८ में १+८=९, सतयुग वर्ष १०२८००९, १+७+२+८=१८ में १+८=९।

(५) चारों युगों के वर्षों का योग (दिव्य युग) ४३२०००० । ४+३+२=९ ।

(६) मन्वन्तर (७१ दिव्य युग) ३०६७२००००, ३+६+७+२=१८ में १+८=९।

(७) कल्प (१९ मन्वन्तर) वर्ष ४२९४०८०००३, ४+२+९+४+७=२७ में २+७=९।

(८) स्वरों ९ गुण हैं। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ।

(९) चारों वेदों की मन्त्र संख्या १९४९४ है १+९+४+४=१८ में १+८=९।

(१०) श्रीरामचन्द्रजी का जन्म नवमी को--'नवमी तिथि हरि मास पुनीता ।

(११) रामायण की रचना नवमी को।

(१२) तुलसीकृत रामायण में छन्द संख्या ९९९० है, ९+९+९=२७ में २+७=९।

(१३) विप्र के गुण ९ ऋजु (सरलता), तपस्या, सन्तोष, क्षमा असृष्णा जितेन्द्रियता, सत्य, अहिंसा, स्वाध्याय।

(१४) पुराण १८, १+८=९।

(१५) नक्षत्र २७, २+७=९।

(१६) माला में बीज १०४, १+८=९ ।

(१७) पूज्यों के लिए लिखी जाने वाली श्री संख्या--१०८ में १+८=९ ।

(१८) राग ३, रागिनी ३०--दोनों का योग ३६, ३+६=९।

(१९) गिनती के अङ्क १ से ९ तक=९।

(२०) शक्ति पूजा की नव रात्रि, पृथ्वी के नौ खण्ड, नौ ग्रह-शरीर के नौ छेद, नौ रत्न, नौ रस, नवधा भक्ति, नौ नाड़ी, नौ द्रव्य, नौ दुर्गा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार नौ का अङ्क अत्यधिक महत्वपूर्ण होने से इसे 'ब्रह्म अङ्क' कहा गया है।

सामवेदी छान्दोग्य सूत्र में नौ देवताओं का वर्णन आया है, ये नौ देवता यह हैं--(१) ओंकार, (२) अग्नि, (३) अनन्त, (४) चन्द्र, (६) पितृ, (६) प्रजाषति, (७) वायु, (८) सूर्य, (९) सर्व देवता। यह नौ देवता असल में नौ शक्तियों के नाम हैं, जो विकसित मनुष्यों में निवास किया करती हैं। इनका अर्थ इस प्रकार हैं-

१- ओंकार--ब्रह्म, परमात्मा, सर्वश्यापी, न्यायकारी सत्ता को सर्वत्र व्यापक देखकर बुरे कामों से बचना।

२- अग्नि--तेज, वीरता, पराक्रम, पुरुषार्थ।

३- अनन्त--धैर्य, प्रतीक्षा, आशा, दृढ़ता।

४- चन्द्र--शीतला, शांति, मधुरता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता।

५- पितृ--स्नेह, आत्मभाव, उपकार, वात्सल्य, क्षमा।

६- प्रजापति--कुटम्ब-पालन, समाज की सुरक्षा।

७- वायु--स्वच्छता सफाई।

८- सूर्य--प्रतिभा, शक्ति, वल, दमन।

सर्व देवता--संगठन, तहयोग, एकता, समाज सेवा, सब लोगों के लिए आदर-भाव, समदर्शन।

इस तरह से दस और नौ दोनों अङ्क महत्वपूर्ण हैं। दस विराट्का प्रतीक हैं परन्तु एक अङ्ग कम होने से भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। विद्या, ज्ञान, ज्योति और अमृतत्व का मूर्टरूप है। सर्वविद्या इस प्रकार की है। उनके रहस्य का विवेचन यहाँ किया जाता है--

१--काली

काली का ध्यान इस प्रकार किया जाता है--

ॐ ध्यायेत्कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीं।
चतुर्भुजां लोलजिह्वां पर्णचन्द्रनिभाननाम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीलोत्पलदलप्रख्यां शत्रुसंघविदारिणीम् ।
नरमुण्ड तथा खड्गं कमलं वरदं तथा ।
विभ्राणां रक्तवदनां दैंष्ट्रालीं गौररूपिणीम् ।
अट्टाट्ठहासनिरतं सर्वदा च दिगम्वरीम् ॥
शवासनस्थितां देवी मुण्डमालाविभूषिताम् ।

"जो महामाया, त्रिनेत्रा बहुरूपिणी, चतुर्भुज, लपलपाती जिह्वा-वाली पूर्ण चन्द्र की तरह शोभायुक्त नील कमल की पंखुड़ियों की तरह सुन्दर, शत्रु समूह की नाशकर्ता हैं, जो नरमुण्ड, खड्ग, कमल और वर-मुद्रा धारण करती है । रक्त मुखमण्डल, दष्ट्राओं की पंक्ति से संयुक्त और घोर रूप वाली, अट्टहास करने में संलग्न, दिगम्बरा, शवासन पर स्थित मुण्डों की माला से विभूषित है, उस काली देवी का ध्यान करे ।

भक्त कहता है--

ॐ कालीं कालहरां देवी कंकालबीजरूपिणीम् ।
कालरूपां कलातीतां कालिकां दक्षिणां भजे ॥

मैं दक्षिण कालिका का भजन करता हूं जो काल की नाशकर्त्ता काली है । जो कङ्काल बीज रूपिणी, कालरूपा और कलाओं से परे है।

काली की स्तुति करते हुए साधक कहता है--

धरित्री कीलालं शचिरपि समीरोऽपि गगनं ।
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ॥
स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकं ।
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥

'हे काली ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, यह सब कुछ तुम ही हो । तुम्हीं कल्याणी गिरिश-रमणी हो, हे मातेश्वरी ! तुम्हारी और स्तुति क्या करूं ? मैं गति रहित हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न रहें ताकि मुझे और जन्म न लेना पड़े ।'

काली के स्वरूप और उसकी साधना की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए शास्त्र का वचन है--

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐअचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्टानसत्वैं कमूर्तिः। गुणातीत निर्द्वन्द्वबोधैकगम्या त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

'हे माता! तुम्हारे आकार और शक्ति को नापने में कोई भी समर्थ नहीं (अर्थात् तुम्हारा आकार और शक्ति कल्पनातीत है)' चिन्ता द्वारा भी उसे नहीं पाया जा सकता है। तुम्हारा कोई एक स्थान नहीं, तुम तो हर मनुष्यमें सत्वमर्ति से प्रतिष्ठित हो केवल त्रिगुणातीत अद्वैत ज्ञान से ही तुम्हारी प्राप्ति सम्भव है। तुम तो केवल परब्रह्म रूप से ही अधिष्ठित रहती हो।'

अगोत्राकृतित्वादनेकान्तिकत्वादलक्ष्यागमत्वादशेषाकरत्वात्
प्रपञ्चालसत्वादनारम्भकत्वात् त्वमेकापरब्रह्मरूपेण सिद्धा।

'तुम अगोत्र हो, आकार रहित हो. तुम स्थिर पदार्थ नहीं हो, तुम्हारी गति को लक्ष्य करना सम्भव नहीं,अखिल वस्तु की तुम आकार हो इस विश्व-प्रपञ्च में तुम विकसित नहीं होती, तुम किसी की आरम्भिक नहीं हो तुम तो केवल परब्रह्म सिद्ध हो।'

असधारणत्वादसम्वन्धकत्वादभिन्नाश्रयत्वादनाकारत्वात्।
अविद्यात्मकत्वादनाद्यन्तकत्वात् त्वेकापरब्रह्मरूपेण सिद्धा।

'तुम असामान्य हो जगत् के बाह्य प्रपञ्चों से अलग हो, परन्तु हर पदार्थ से संयुक्त हो, तुम निराकार हो, अविद्या रूप वाली हो, अनादि और अनन्त रूपिणी हो तुम परब्रह्म रूप में ही सिद्ध हो।

काली सबकी कारण भूता है--

सदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो न कालो न वा पञ्च भूतानि नाशा। तदा कारणीभूत सत्वैकर्मितसत्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।

'जब ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र थे, काल पञ्चभूत और दिक् कुछ भी नहीं था तब तुम इन सबकी कारणभूता तकमात्र सत्वमूर्ति से अधिष्ठित थीं, तुम्हीं एक परमब्रह्मरूप से सिद्ध हो।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न बालां च त्वं वयस्था न वृद्धा न च स्त्री न षण्ढ पुमा-
न्नैव च त्वम्। न च त्वं सुरो नासुरो नो नरो वा त्वमेका
परब्रह्मरूपेण सिद्ध ॥

'न तो तुम वाला हो, न वयस्का हो न वृद्धा हो, न स्त्री हो, न नपुंसक हो, न पुरुष हो, न देव हो, न असुर और न ही मनुष्य हो, तुम तो केवल परब्रह्म-रूपिणी सिद्धा हो।"

विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशामृतानन्दरूपाजगद्व्यापिका
च। तवेदृग्विधा या निजाकारमूर्तिः किमस्माभिरन्तर्हृदि
ध्यायितव्या ॥

'हे माता ! तुम विशुद्ध, चिन्मय स्वप्रकाश अमृत व आनन्दरूपा, जगदव्यापिका हो। तुम्हारे इस प्रकार के स्वरूप का हम किस प्रकार से ध्यान करें ?'

कालीके गुणों पर प्रकाश डालने वाला "काली अष्टोत्तर कालनाम स्तोत्र" जिसमें काली के १०८ नाम दिये गये हैं वे इस प्रकार हैं--

काली कपालिनी कान्ता कामदा कामसुन्दरी।
कालरात्रिः कालिका च काल-भैरव पूजिता ॥१
करुकुलल्ला कामिनी च कमनीयस्वभाविनी।
कुलीना कुलकर्त्रीं च कुलवर्त्म प्रकाशिनी ॥२
कस्तूरिरसनीता च काम्या कामस्वरूपिणी।
ककारवर्णविलया कामधेनुः करालिका ॥३
कुलकान्ता करालास्या कामार्त्ता च वलावती।
कृशोदरी च कामाख्या कौमारी कुलपालिनी ॥४
कुलजा कुलमन्या च कलहा कुलपूजिता।
कामेश्वरी कामकान्ता कुञ्जरेश्वरगामिनी ॥५
कामदात्री कामहर्त्री कृष्णाचैव कर्पादिनी।
कुमुदा कृष्णदेह च कालिन्दी कुलपूजिता ॥६
कामरूपी कृष्णमाला च कुलिशांगी कला तथा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रींरूपा कुलगम्या च कमला कृष्णपूजिता ।।७
कृशाङ्गी किन्नरी कर्त्री कलकण्ठी च कार्तिकी ।
कम्बुकण्ठी कौलिनी च कुमुदा कामजीवनी ।।८
कालस्त्री कीर्तिका कृत्या कीर्तिश्च कुलपालिका ।
कामदेवकला कल्पलता कामाङ्गवर्द्धिनी ।।९
कुन्ता च कुमुदप्रीता कदम्बसुमनोत्सुका ।
कादम्बिनी कमलिनी कृष्णानन्दप्रदायिनी ।।१०
कुमारीपूजनरता कुमारीगणशोभिता ।
कुमारीरञ्जनरता कुमारीव्रतधारिणी ।।११
कंकाली कमनीया च कामशास्त्रविशारदा ।
कपालखट्वाङ्गधरा कालभैरव रूपिणी ।।१२
कोटरीं कोटराक्षी च काशी कैलाश-वासिनी ।
कात्यायनी कार्यकरी काव्यशास्त्रप्रमोदिनी ।।१३
कामाकर्षणरूपा च कामपीठनिवासिनी ।
कंकिनी काकिनी क्रीडा कुत्सिता कलह प्रिया ।।१४
कुण्डलोद्भवप्राणा कौशिकी कीर्तिवर्द्धिनी ।
कुम्भस्तना कलाक्षा च काव्या कोकनदप्रिया ।।१५
कान्तारवासिनी कान्तिः कठिना कृष्णवल्लभा ।
इति ते कथितम् देवि गुह्याद्गुह्यतरम् परम ।।१६

अर्थात्--'काली कपाल धारण करने वाली--कान्ता अर्थात् सुन्दरी--कामनाओं के दान करने वाली--काम के समान सुन्दरी--कालरात्रि--कालिका--काल भैरव के द्वारा पूजित-कुरुकुल्ला-कामिनी सुन्दर स्वभाव वाली--कुलीना--कुल के करने वाली--कुल के मार्ग प्रकाशित करने वाली--कस्तूरी रस के समान नीताकामना के योग्य--काम स्वरूप वाली--ककार वर्ण के विलय वाली--कामधेनु कालिका-कुलकान्ता--कराल मुख वाली--काम से आर्त-कला से पूर्ण-कृश उदर वाली कलजा--कलमन्या-- कलहर- कुलराध्निता-- कामेश्वरी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामकान्ता- कुञ्जरेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली–-कामनाओं की देने वाली कामदेव का हरण करने वाली--कृष्णा--कपर्दिनी कुमदा-कृष्ण देह वाली--कालिन्दी- कुल के द्वारा पूजित-कश्यपी-- कृष्ण माता-वज्र के समान अंगों वाली--कला की रूप वाली--कुल-गम्या- कमला- कृष्ण के द्वारा पूजित-कृश अंगों वाली--किन्नरी-कर्त्री- कल (मधुर) कण्ठ वाली-कार्तिकी-कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली कौलिनी- कुमुदा- काम जीविनी- कालस्त्री-कीर्तिका-कृत्या-- कीर्ति कुलपालिका- कामदेव की कला -मनोरथों को पूर्ण करने वाली-कल्पलता- कामांग के बढ़ाने वाली-कुन्तार- कुमुद प्रीता- कदम्ब के सुमन के लिए उत्सुक- कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली-कुमारियों के गुणों से शोभायुक्त-कुमारियों के रञ्जन रत-कुमारी व्रत को धारण करने वाली-कङ्काली-कमनीया कामशास्त्र की पण्डित- कपाल और खाट का पाया धारण करने वाली-काल भैरव के रूप वाली, कोटरी- कोटर के तुल्य नेत्रों वाली-काशी और कैलाश पर निवास करने वाली- काम के आकर्षण करने वाले काकिनी- क्रीड़ा-कुत्सिता- कलह को प्यार करने वाली -कुण्डमोल से उद्भव प्राणों वाली- कौशिकी- कीर्ति को बढ़ाने वाली-कुम्भ के समान स्तनों वाली-कलाक्षा- काव्या-कोकनद को प्रिय मानने वाली-जंगल में वास करने वाली-कान्ति-कठिना-कृष्ण की बल्लभा-- हे देवि ! यह आपका अष्टोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीयसे भी अति गोपनीय है, जो इस समय कहा गया है।'

काली तत्व को जानने के लिए निम्न श्लोकों का विश्लेषण आवश्यक है :--

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम् ।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम् ॥
मुण्डमालाधरां देवीं लोलज्जिह्वां दिगम्बराम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एव सञ्चिन्तयेन कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥
(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

वह काली शवारूढा, भयाकृति वाली, बड़ी तीक्ष्ण व भयावह दंष्ट्रा वाली, हंसमुखी, चतुर्भुज है । एक हाथ में खड्ग, एक में नरमुण्ड एक में अभय मुद्रा और एक में वर है। उसके गले में मुण्डमाल, जिह्वा बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है । उसका निवास श्मशान है ।

काली का यह ध्यान अलङ्कारिक शैली में वर्णित है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है--

काली शवारूढा है । शव का अभिप्राय किसी प्राणी के मुर्दे से नहीं है वरन् शक्तिहीन विश्व से है । जब विश्व शक्तिमान् होता है तो उसकी संज्ञा --शिव है । जब उससे शक्ति निकल जाती है तो वह शव बन जाता है । विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की है । काली का सम्बन्ध प्रलय-रात्रि के मध्यकाल से है । इसीलिए वह कृष्ण वर्णा कहलाती है । वह विश्व का नाश करने वाली कालरात्रि है। शव-रूपी विश्व ही उसका आधार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है । इसीलिए काली को शव पर खड़ी दिखाया जाता है ।

काली भयानक आकृति वाली है । संहार उसका धर्म है । संहार करने वाले योद्धा का रूप भयानक होना स्वाभाविक है। इसीलिए काली को प्रलयरात्रि रूपा संहारकारिणी शक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है ।

युद्ध के दो पक्षों में से एक की विजय निश्चित् होती है । विजेता को अपनी शक्ति पर गर्व होने लगता है और वह अपने शत्रुकी निर्बलता पर हँसता है । काली तो शक्ति-पुञ्ज है, जब वह आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करती है, तो वह भी शत्रु पक्ष की निर्बलता पर अट्टहास करती है । इसलिए उसे 'हसन्मुखीय' कहा गया है ।

काली की चार भुजाएँ हैं । यह चार भुजाएँ पूर्णत्व की द्योतक हैं क्योंकि पूर्ण वस्तु को चतुरस्र कहा जाता है । उसके एक हाथ में खड्ग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीक है। वह स्वयं निर्भय रहती है। जो भी उसका आश्रय ग्रहण करता है, वह भी निर्भय रहता है। इस आश्वासन के रूप में वह एक हाथ में अभय मुद्रा धारण करती है और एक में वर। इसीलिए वह 'वराभयकरा' कहलाती है। ऐसी बात नहीं कि वह केवल विनाश ही विनाश करती है, उसमें अपने भक्तों के प्रति अपार दया और करुणा भी है। अपनी शक्ति का जितना भाग संहार में व्यय करती है, उतना ही वह कारुण्य में करती है क्योंकि उसके दो हाथ एक कार्य करते हैं और शेष दो हाथ दूसरा काम।

जीवित प्राणियों के अतिरिक्त मृत प्राणियों का आश्रय भी काली ही है। इसलिए मुण्डमाला पहनती है। "निरुत्तर-तन्त्र" और "काम-धेनु तन्त्र में एक और भाव भी दिया गया है....

पञ्चाशद्वर्णमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।

(निरुत्तर तन्त्र)

पचास वर्ण वाले मुण्डों से टपकते हुए रुधिर से आप चर्चित होती है।

ममकण्ठे स्थितं बीजं पञ्चशद्वर्णमद्‌भुतम्।

(कामधेनु तन्त्र)

'मेरे कण्ठ में स्थितबीज भी पचास वर्गों वाला अतीव अद्-भुत है।'

विश्व ही ब्रह्मरूपा काली का आवरण-वस्त्र है। काली का सम्बन्ध तो प्रलय रात्रि से है जब सारा विश्व नष्ट और लीन हो जाता है। विश्व के अभाव मे वह 'अवस्था' नग्न रह जाती है। केवल दिशाएँ ही उसके वस्त्र रह जाते हैं। इसी स्थिति को 'नग्न' संज्ञाएँ दी गई है।

जब उसके जगत् का लय हो जाता है, जब सारा जगत्श्मशान बन जाता है, तभी काली का विकास माना जाता है। उसका पूरा विकास काल विश्व का प्रलय काल है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना में इसका एक और भाव भी है। भगवती की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अपने हृदय को श्मशान बनाया जाय। 'राग' कामादि का नाश किया जाय। इस जगत् की आसक्ति, मोह, लगाव और लिप्तता को दूर किया जाय। जगत् भाव को बनाये रखने वाले जितने भी आसुरी तत्व हैं, उनसे अलिप्त रहा जाए तभी विश्व में रहते हुए विश्व का विनाश समझा जायेगा और जगत् श्मशान तुल्य लगेगा। जब तक इस भावना का जागरण नहीं होता भगवतीके वर व अभय मुद्रा वाले हाथ आशीर्वाद के लिए नहीं उठते।

२–तारा

परिभाषा--

तारा नाम से ही विदित होता है कि इसका सम्बन्ध 'तारण' अथवा 'तरण' से है। वास्तव में तारण करने वाली शक्ति को तारा कहते हैं। इसका शब्दार्थ भी है 'तरत्यनया सा तारा' अर्थात् इस भवसागर से जो तारती है, वह तारा है। तारा ने स्वयं भी कहा है–

तारयिष्याम्यहं नाथ ! नाना भवमहार्णवात् ।
तेन तारेति मां लोके गायन्ति मुनिपुङ्गवा, ॥

अर्थात् 'हे नाथ ! मैं अनेक प्रकार के संसार रूपी महासागर से तार दूँगा। इसी कारण से लोक में मुझको मुनियों में श्रेष्ठ जन तारा नाम से गान किया करते हैं।'

त्रितापों–आधिभौतिक, आधिदैवक और आध्यात्मिक से तारने वाली को तारा कहते हैं। वह सांसारिक बन्धनों, विपत्तियों और कठिनाइयों से मुक्ति दिलाती हैं संसार सागर से तारती है, उबारती है, तभी तारा कहलाती है।

वैदिक साहित्य में जगत् की सृष्टि सूर्य से मानी गई। वही इसका आधार है। सूर्य अग्नि का महित्पिण्ड। अग्नि हिरण्यरेता कहलाती है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मतत्व अधिष्ठित हैं, इसलिए सौरब्रह्म–'हिरण्यगर्भ' कहलाता है। इसी हिरण्यगर्भ की शक्ति को तारा कहते हैं। जिस तरह महाकाली महाप्रलय की अधिष्ठात्री हैं, उसी तरह 'उग्रतारा' सूर्य प्रलय की अधिष्ठात्री है दोनों समानधर्मा है।

सूर्य का नाम रुद्र भी है। इसके दो रूप हैं--शान्त और घोर। हिरण्यगर्भ की उनता क्षुधा के कारण थी। अन्न की आहुति से उसकी शान्ति रहती है। उसी उग्र–हिरण्यगर्भ की शक्ति को 'उग्रतारा' कहते हैं।

तारा के विविध नाम हैं। तारा, तरुणि, तरला तारिणी, प्रभा त्रिरूपा, तत्वज्ञानप्रदा, अनघ, सत्वरूपा, तमोरूपा, परानन्ना साक्षात् चैतन्य शक्ति-स्वरूपा आदि।

तारा को द्वितीय महाविद्या अथवा सिद्ध-विद्या कहते हैं। तारा की तीन शक्तियाँ हैं। वह सरलता से ज्ञान देती हैं इसलिए नील सरस्वती कहलाती है। वह कैवल्य दायिनीहै इसलिए एक-जटा है। वह उपासकों की उग्र आपत्तियों का निवारण करती है इसलिए उग्रतारा नाम पड़ा। विद्वानों का यह भी विश्वास है कि योग दर्शन में जिस ऋतम्भरा प्रज्ञा की चर्चा है, वह इसी विद्या का स्पष्टीकरण किया गया है।

तारा परमशक्तिरूपा है। वह परब्रह्म परमात्मा से विभिन्न है। कथा आती है कि जब देवासुर संग्राम हुआ तो देवों के नेता इन्द्र ने आसुरो पर विजय पाने के लिए भगवती तारा की उपासना की थी, जिससे उन्हें अभीष्ट सिद्धि मिली थी।

महिमा--

शास्त्रों में तारा की महिमा इस प्रकार वर्णित है--

ब्रह्मतरी जय तारिणि मुक्ते
        ब्रह्माविष्णुशिवशाखयुक्ते।
मोक्षफलं फलमद्भुतसरसं
        नित्यानन्दमयि मुद कुरु धाम ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् 'आप ब्रह्मा के तरु के स्वरूप वाली हैं तथा मुक्त और तारण करने वाली हैं। आपकी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी ब्रह्म-तरु की शाखाएँ हैं। मोक्ष रूपी इसका फल है जो अतीव अद्भुत और सरस है। आप नित्य ही आनन्द से परिपूर्ण रहती हैं। कल्याण करो, मङ्गल करो।

किमन्यन्महेशि ! प्रियत्वेन देवाः
भवत्पादधूलीलबेकेन देवाः।
त्वया यन्न सूत्रीयपुत्रीस्वरूपो
निरीहो नरीनर्त्यसौ विश्वरूपः।
त्वयैवोज्जिहीते परेशोऽपि शक्त्या
नमामीश्वरि ! त्वामहं देवि ! भक्त्या ॥
मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति-विकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥

अर्थात् हे महेशि ! अन्य क्या कहा जावे। ये देवगण आपके ही प्रियपात्र होने वाले है। समस्त देवगण आपके चरण की धूलि के एक कणके समान हैं। जिसकी सूत्रीय पुत्र स्वरूप नहीं किया है, वह निरीह विश्वरूप नृत्य किया करता है। परेश को भी आपने ही अपनी शक्तिके द्वारा प्रभावशाली बना दिया है। हे ईश्वरि ! हे देवि ! मैं भक्ति-भाव से आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित करता हूँ। प्रकृति मूलस्वरूपा हैं और महत्तत्वादि सातों उसी की विकृतियाँ हैं। इज प्रकार से सोलह विकृतियाँ हैं। प्रकृति में कोई भी विकार नहीं है और पुरुष भी विकृत नहीं होता है।

'नील-तन्त्र' के अनुसार--

ज्वलत्पावकज्वालजालप्रभास्व
च्चितामध्यसंस्था सुपुष्टां सुखर्वाम्।
शवं वामपादेन कण्ठे निपीड्य
[illegible]

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् 'जलती हुई अग्नि की ज्वालाओं के जल के कारण अभिभास्वमाण चिता के मध्य से स्थिति-सन्तुष्ट और सुखर्वा आप हैं। बाँये पाद से शव को कण्ठ में निपीड़ित करके संस्थित हैं तथा दाहिने पादसे चरण को निपीड़ित करने वाली हैं।

और भी कहा–

विना ध्यानं विना जापं विना पूजादिभिः प्रिये।
विना बलिं विनाभ्यासं भूतशुद्धयादिभिर्विना॥
विना क्लेशादिभिर्देवि देहदुःखादिभिर्विना।
सिद्धिराशु भवेद्यस्मात्तस्मात्सर्वोत्तमा मता॥

अर्थात् बिना ध्यान, जप,पूजा, बलि, अभ्यास भूतशुद्धि, क्लेश, देह दुःखसे ही इसकी सिद्धि प्राप्त होतीहैं इसीलिए सभी प्रकारकी सिद्धियों में इसे सर्वोत्तम माना जाता है।'

अन्य धर्मों व देशों में तारा-भक्ति का प्रसार--

तारा इतनी लोक प्रिय देवी है कि इसकी पूजा केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं, अन्य धर्मों और सम्प्रदायों में भी होती। उस देश में ही नहीं, विदेशों में भी इसका उच्च सम्मान था।

जैन धर्म मे 'सुतारा व सुतारका' नाम से देवी की उपासना होती है। श्वेताम्बर शाखा इसे सुविधि नाथ की शासन देवी या यक्षिणी मानती है।

तारा बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय की एक प्रसिद्ध देवी है। हिन्दु धर्म में जो प्रतिष्ठा तारा अथवा दुर्गा की है वही महायान में तारा की है। जैसे शिव की शक्ति को 'दुर्गा' नाम दिया है वैसे बौद्ध धर्म में तारा अवलोकितेश्वर की शक्ति। तारा को वहाँ देवमाता के सम्मानीय पद विभूषित किया है।

तारा की उपासना तिब्बत में भी प्रचलित थी। मंगोलिया में भी तारा की उपासना होती थी। वहाँ इसका नाम दरएके था।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तारा तत्व को जानने के लिए उसके विभिन्न प्रकार के ध्यानों का अबलोकन करना होगा। मन्त्र शास्त्र में तारा का ध्यान इस प्रकारहै–

विश्वव्यापकवारिमध्यविलसच्छ्वेताम्बुजन्मस्थितां
कर्त्रीखड्गकपालनींलनलिनै राजत्करां नीलभाम्।
काञ्चीकुण्डलहारकंकणलसत्केयूरमञ्जीरता।
माप्तैर्नागवरैर्विभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम्॥
पिङ्गोग्रैकजटां ललत्सुरशनां दंष्ट्राकरालाननां
चर्म द्वैपि वरं कटौ विदधतीं श्वेतास्थिपट्टलिकाम्।
अक्षोम्येण विराजमानशिरस स्मेराननाम्भोरुहां
तारां शावहृदयासनां दृढ़कुचामम्बां त्रिलोक्याः स्मरेत्।

अर्थात् विश्वव्यापी जल से निकले हुए एक सफेद कमल पर अधिष्ठित, कैंची, खड्ग, कपाल और नीलोत्पल को हाथों में धारण किएहुए सर्पों से वने काँची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर, मन्जार (नूपुर) से विभूषित तीन रक्त नेत्रों वाली एक पीली जटा वाली, सुन्दर रशना से मण्डित विकराल दष्ट्रा से युक्त, कटि प्रदेश में चीचे के चर्म को लपेटे हुए, श्वेत हड्डियों की पट्टालिका धारण किए हुए, शवहृदयासना जिसके सर 'अक्षोम्य' प्रतिष्ठित है एसो स्मितवदना, त्रैलोक्य-जननी भगवती तारा का स्मरण करे।'

'नील तन्त्र' में इस प्रकार ध्यान करने का आदेश किया गया है–

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खर्वां लम्वोदरीं भीमां व्याग्रचर्मावृतां कटौ॥
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्।
चतुर्भुजां ललजिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्॥
खड्गकर्त्रीधरां सव्ये यामे मुण्डोत्पलन्विताम्।
पिंगोग्रैकलटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्॥
वालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयं भूषिताम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रज्वलत्पितृ भूमध्यगतां दंष्ट्राकरालिनीम् ।
सावेशस्मेरवदनातस्थ्यालंकार भूषिताम् ।
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मापरिस्थिताम् ॥

अर्थात् पद को प्रत्यालीढ करने वाली-घोर और मुण्डों की माला से विभूषित हैं । सर्व छोटे कद वाली-लम्बे उदर से युक्त-भयानक कटिभाग में व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाली है । नूतन यौवन से युक्त तथा पाँच मुद्राओं से समलंकृत हैं । चार भुजाओं वाली तथा जीभ को बाहर निकालेहुए महान् भीम स्वरूप वाली एवं वरदान प्रदानकरने वाली हैं । बाँये हाथ में खड्ग और कर्त्री धारण करने वाली तथा नर-मुण्डों के कपालों से युक्त है । पिन एवं उग्र आगेकी जटा वाली मस्तक में अक्षमाला से विभूषित का ध्यान करना चाहिए बाल सूर्य मण्डल के के आकार वाले तीन लोचन से अलंकृतहैं प्रज्वलित पितृभूमि (श्मशान) के मध्य में रहने वाली, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे कराल स्वरूप से युक्त,आवेश से युक्त, मुस्कान पूर्ण मुख वाली, अस्थियों के भूषणों से भूषित एवं में व्यापक जल के अन्दर श्वेत पद्म पर स्थित हैं ।'

'मन्त्र चूड़ामणि' में तारा का ध्यान इस प्रकार दिया गया है--

तस्योपरिगृहे देवी खर्वा नीलमणिप्रभाम् ।
लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मसमावृतनितम्बिनाम् ॥
पीनोन्नतपयोभारां रक्तवर्त्तुललोचनाम् ।
ललजिह्वां महाभीमां दंष्ट्राकोटिसमुज्ज्वलाम् ॥
नीलोत्पललसन्मालां बद्धजूटां भयंकरीम् ।
श्वेतास्थिपटिकायुक्तकपालपञ्चशोभिताम् ।
ललाटे रक्तनागेन कृतकर्णावतंसकाम् ।
अतिशुभ्रमहानागकृतहारमहोज्ज्वलाम् ।
दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
चतुर्भुजां रक्तमांसखण्डमण्डितमुष्टिना ॥
जटाजूटाक्षसत्रेण शोभिता तीक्ष्णधारया ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खड्गेन दक्षिस्योर्ध्वे शोभितां वीरनादिनीम् ।।
तदधः स्याद्वोजवृन्तकर्टकालकृता पराम् ।
वामोर्ध्वे रक्तनालेन दिगम्बरमनोहराम ।
दधतीं नीलपद्मञ्च तदधः स्यात् कपालकम् ।
जगतां जाड्यसंयुक्तं दधतीं कुन्दसन्निभाम् ।।
धूम्राभनागसन्दोहकृतकेयूरसत्वराम् ।
सुवर्णवर्णननागेन कंकणोज्ज्वलपाणिकाम् ।।
शुभ्रवर्णमहादेवकृनपद्विमलासनाम् ।
नियन्त्रणभयातद्वत् संकुचत् प्रपदात्मिकाम् ।।
शवपादष्टयारूढवामपादाँ हसन्मुखीम् ।
कुन्दाभनागसंशोभिकटिसूत्राँ त्रिलोचनाम् ।।
असक्तेन नागेन कृतनूपुरपल्लवाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद् रक्तं मुण्डेरक्तविभूषणैः ।।
अन्यन्यकेशग्रथितः पादपद्मानविलम्बितैः ।
पञ्चाशद्भिर्महामालाशोभिता परमेश्वरीम् ।
ज्वलच्चितामध्यसंस्थाँ छीपिचर्मोत्तराशुकाम् ।
अक्षोभ्यनागसम्बद्धजटाजूटां वरप्रदाम् ।
एवभूतां महादेवीमात्मानं यागवस्तु च ।
विज्ञापयेन्महादेव पण्डितोन्हे महाकविः ।।

अर्थात् 'उसके ऊपर गृह में सर्व और नीलमधि की प्रभा के समान प्रभा वाली हैं। लम्वे उदर से युक्त तथा बाघ के चर्म से ढके हुए नितम्बों वाली हैं। पीत एवं उन्नत स्तनों से समन्वित तथा रक्त और वर्तुल लोचनों वाली हैं। जीभ को बाहर निकाले हुई, अति भयानक तथा करोड़ों दाढ़ों से ससुज्ज्वल हैं। नील कमलों की माला से शोभित और अपने जूड़े को बाँधे हुए भयङ्कर रूप वाली है। श्वेत अस्थियों की पट्टिका से युक्त पाँच कपालों से शोभा वालीहैं। ललाटमें रक्तनाग से कर्णावतंस बनाये हुए तथा अत्यन्त शुभ्र महानाग का हार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारण करके महान् उज्ज्वल स्वरूप वाली हैं। दूर्वा के दल और श्याम नाग का यज्ञोपवीत धारण करने वाली हैं। चार भुजाओं से युक्त तथा रुधिर और मांस के टुकड़ों से मण्डित मुष्टि वाली है। जटाजूट और अक्षों से सूत्र से शोभित तीक्ष्ण धार वाले खंग से दक्षिण भाग के ऊपर वाले भाग में शोभा से पूर्ण हैं तथा वीर-नाद करने वाली हैं। उसके नीचे रहने वाले भाग में बीज वृन्त की करने वाली से भूषित परा तथा वाम ऊर्ध्व भाग में रक्त नाग से युक्त और दिगम्बर एवं मनोहररूप वाली हैं। नील पद्म और उसके नीचे कपाल को धारण करने वाली हैं। जगतों की जड़ता से संयुक्त को धारण किये हुए कुन्द के तुल्य हैं। धूम्र की आभा वाले नागों के समूह से केयूरों वाली सत्वर हैं। सोने के वर्ण वाले नागों से हाथों में उज्ज्वल कङ्कण धारण करने वाली हैं। शुभ्र वर्ण वाले महादेव के साथ सत् और विमल आसन वाली है। नियन्त्रण के भय से आपके साथ संकोच वाले प्रपदों से युक्त हैं। शव के दोनों पादो पर अपना बाँया पाद समारूढ़ करने वाली हैं। हास्ययुक्त मुख वाली हैं। कुन्द के पुष्प की आभा वाले भाग से शोभित कटिसूत्र वाली एवं नील लोचनों से युक्त है। तुरन्त ही भेदन करने से जिसमें रुधिर बह, रहा है ऐसे रक्त से भूषित मुण्डों से जिनके केश एक दूसरे में ग्रथित हो रहे हैं और चरण कमल तक लटके हुए हैं ऐसे पचास मुण्डों की महामाला से शोभा वाली परमेश्वरी हैं। जलती हुई चिता के मध्य बह रहा है ऐसे रक्त से भूषित मुण्डों से जिनके केश एक दूसरे में ग्रथित हो रहे हैं और चरण कमल तक लटके हुए ऐसे पचास मुण्डों की महामाला से शोभा वाली परमेश्वरी हैं। जलती हुई चिता के मध्य में स्थित हाथी के चर्म से उत्तरीय वस्त्र धारण करने वाली है। अक्षोभ्य नाग से जटाजूट को बाँधने वाली तथा वर देने वाली हैं। ऐसी महादेवी को मैं अपने आपको समर्पित करता हूँ। महादेव को महाकवि पण्डित के द्वारा विज्ञापित करना चाहिए।'

उपरोक्त ध्यानों में जो विषय आये हैं, उनका स्पष्टीकरण यहाँ किया जाता है....

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगत्व्यापी जल में कमल पर स्थित

भगवती तारा विश्वव्यापी जल से निकले एक श्वेत कमल पर खड़ी हैं। इससे सूचित होता है कि वह जल-प्लावन के भय का निवारण करती हैं। यह लघुभट्टारक रचित लघुस्तव' के निम्न पद से स्पष्ट हो जायगा।

लक्ष्मी राजकुले जया रणभुवि क्षेमंकरीमध्वनि।
क्रव्यादद्विपसर्पभाजिशवरी कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूतप्रेतपिशाचराक्षसभये स्मृत्वा महाभैरवीं।
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे॥

अर्थात् 'राज-कुल में लक्ष्मी-रणभूमि में जया-मार्ग में क्षेम करने वाली क्रव्याद-हाथी-सर्प वाले कान्तार दुर्ग तथा गिरि में—भूत-प्रेत-पिशाच और राक्षसों के द्वारा होने वाले भय में महा भैरवी का स्मरण करें। व्यामोह होने पर त्रिपुरा को और तोय प्लव में तारा का स्मरण करने पर विपत्तियों से उद्धार हो जाता है।'

'ब्रह्माण्ड पुराण' के 'ललितोपाख्यान' में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई—

मनो नाम महाशाल…………
तन्मध्यकक्ष्या भागस्तु सर्वाप्यमृतवापिका।
न तत्र गन्तुं मार्गोऽस्ति नौकावाहनमन्तरा॥
तारा नाम महाशक्तिर्वर्त्तते तोरणेश्वरीं।
बह्वयस्तत्रोत्पलश्यामास्ताराया: परिचारिका:॥
रत्ननौकासहस्रेण खेलन्त्यस्सरसीजले।
अपरं पारमायान्ति पुनर्यान्ति परं तटम्॥
कोटिशस्तत्र ताराय नाविक्यो नवयौवना:।
मुहुर्गायन्ति नृत्यन्ति देव्या: पुण्यतमं यश:॥
अस्त्रपाणय: काश्चित्केश्चिच्छृगाम्बुपाणय:॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिबन्त्यस्तत्सुधातोयं सञ्चरन्त्यस्तरीशतैः ॥
तासां नौकावाहिकानां शक्तीनां श्यामलत्विषाम् ।
प्रधानभूता ताराम्बा ललौघशमनक्षमा ॥
आज्ञां विना तयोस्तारा मन्त्रिणीदण्डनाथयोः ।
त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकाम्भसि सान्तरम् ॥
तारातरणिशक्तीनां समवायोऽतिसुन्दरः ।
इत्थं विचित्ररूपाभिनौकाभिः परिवेष्टिता ।
ताराम्बा महतीं नौकामधिगम्य विराजते ॥

अर्थात् 'मनो नाम वाली एक महाशाला है, उसके मध्य वाले कक्ष में एक ऐसा भाग है जहाँ पर अमृत की बावड़ी है । वहाँ पर नौका वाहन के बिना जाने का कोई मार्ग नहीं है । वहाँ तारा नाम वाली महाशक्ति तोरणेश्वरी विद्यमान है । वहाँ बहुत-सी उत्पल के समान श्याम वर्ण वाली तारा की परिचारिकाएँ भी विद्यमान रहती हैं । सहस्रों रत्नों की नौकाओं से वे सरसी के जल में विहार किया करती हैं । दूसरे तट पर आ जाती है और फिर इस तट पर आ जाती हैं । वहाँ पर करोड़ों नवीन यौवन वाली तारा की नाविकाएँ हैं । वे बारम्बार देवी के पुण्य-तम् यश का गायन किया करती हैं और नृत्य किया करती हैं । कुछ के हाथों में अस्त्र हैं तो कुछ के हाथों में शृगाम्बु हैं । वे उस अमृत-जल का पान किया करती हैं और सैकड़ों नौकाओं में संचरण किया करती है । श्यामल कान्ति वाली उन नौका वाहिनी शक्तियों में प्रधानभूत ताराम्बा है जो बलवान् पापों के शमन करने में समर्थ है । दण्डनाथ की आज्ञा के बिना ही मन्त्रिणी तारा पूर्ण समर्थ हैं । उस वापिका के जल में वह त्रिनेत्र को भी उतरने नहीं देती हैं । तारा तरुणी की शक्तियों का अत्यन्त सुन्दर समवाय है । इस प्रकार से विचित्र रूप वाली नौकाओं से वह परिवेष्टित ! ताराम्बा एक बड़ी नौका में बैठकर विराजमान होती हैं ।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका एक और भाव भी है। जगत् में जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इस स्थिनि को श्रुति में 'निरति शमानन्दामृतसागर' की संज्ञा दी है। इस आनन्दामृत सागर में भगवती श्वेत कमल पर स्थित हैं। श्वेत वर्ण विशुद्ध सत्य का प्रतीक है। अर्थात् वही कमल उनका आसन है।

चतुर्भुजा—

चार भुजाओं में खड्ग, कैंची, कपाल और कमल है। विष्णुपुराण १।५२।१४ के अनुसार खड्ग अविद्या भय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान का प्रतीक है। भगवती तारा आध्यात्मिक ताप के निवारणके लिए कर्म-बन्धन को ज्ञान रूपी खड्ग से काटती हैं। जीव के आत्म-विकास के लिए इस अस्त्र का रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि हमारे चारों ओर का वातावरण तामसिक व राजसिक प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है। आसुरी शक्ति घात लगाये बैठी रहती है, थोड़ी सी असावधानी से वह आक्रमण करके अपना प्रभाव जमा लेती है। कैंची से भगवती आधि-भौतिक या अधिदैविक तापों को दूर करती है। खड्ग और कैंची दोनों का भाव एक ही है, अन्तर केवल बड़े और छोटे अस्त्र का है। संकुचित स्थानों पर जहाँ खड्ग से प्रहार नहीं किया जा सकता, वहाँ कैंची से काम लिया जाता है।

कपाल से रक्तपान का आभास होता है। रक्त वर्ण रजोगुण का द्योतक है। भगवती रजोगुण अथवा मोह का पान या निवारण करती हैं। जीव को भी मोह रूपी रक्त को पान करने के लिए सदैव प्रयत्न-शील रहना चाहिए।

कमल अलिप्तता का प्रतीक है। भगवती अज्ञानान्धकार, अविद्या, त्रितापों और मोहादि से संघर्ष करती है, उन पर विजय ही प्राप्त करती है, किसी से प्रभावित नहीं होती, रजोगुण रूपी रक्त का पान करती है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु एक भी छींटा उन पर पड़ नहीं पाता। साधक को भी ऐसी ही स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि जगत्में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहे।

अष्टनाग विभूषिता–

भगवती अष्टनागों से बने विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करती हैं। इसका अभिप्राय आठ प्रकार की प्रकृतियों से है जिनका वह प्रतिनिधित्व करती है। वह अष्टधा सिद्धियों से विभूषित है। यह सिद्धियाँ प्रदान करने की भी सामर्थ्य रखती है, परन्तु आत्मविकास के मार्ग में वह बाधक का काम करती है इसलिए नागरूप में इन्हें प्रदर्शित किया गया है जो भौतिक शरीर की इहलीला समाप्त करने की शक्ति रखते हैं अर्थात् जीव की यात्रा में बाधक सिद्ध होते हैं। एक भाव यह भी है कि प्राप्ति के लिए यम, नियमादि योग के आठ अंगों का पालन आवश्यक है। भगवती के साधक को इस मार्ग पर चलना ही चाहिए।

त्रिनयना–

भगवती तारा के तीन नेत्र हैं जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि के प्रतीक हैं। इससे वह सर्वसाक्षी और अन्तर्यामी सिद्ध होती है। वह ज्ञान इच्छा और क्रिया—त्रिशक्ति की द्योतक है। किसी भी सिद्धि के लिए सर्वप्रथम उसका ज्ञान अर्जित करना आवश्यक होता है। फिर उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए इच्छा जाग्रत होती है। इच्छा बलवती होने पर क्रिया रूप धारण करती है।

भगवती त्रिकालदर्शी है। वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान में जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होने वाला है, सबको जानती है। इन तीनों की गतिविधि का ध्यान रखते हुए कार्य करने वाले को ही त्रिकालदर्शी कहते हैं। अतः भगवती का आदेश है कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को देखो, त्रिकालदर्शी बनो और विवेक, अनुभव स्थिति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा दूरदर्शिता के आधार पर अपने कार्यक्रम बनाओ। संसार में जितने भी दु.ख हैं, उनके तीन कारण हैं—अज्ञान, अशक्ति और अभाव भगवती का इन तीनों पर नियन्त्रण है और उन्हें दूर करने की क्षमता रखती हैं।

भगवती तीन नेत्रों से भुवनत्रय भूः भुवः स्वः पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक को देखती हैं। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी है, उससे कुछ छिपा नहीं है। अतः छिपकर पाप करना, मानसिक पाप करना व्यर्थ है। इन सबको वह क्षण भर में जान जाती हैं और चित्रगुप्त को लिखने के लिए सूचित कर देती है।

वह अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—इस त्रिदर्शन की अधिष्ठात्री हैं। तभी पराविद्या सिद्ध होती है।

तारा—त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति, पालन और संहार का सभी प्रकार का कार्य करती है क्योंकि सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन तीन स्थितियों के प्रतीक हैं।

भगवती का गुणात्रय—सत्य, प्रेम और न्याय की ओर निरन्तर, ध्यान रहता है। सत्य की प्राप्ति के लिए विवेक का आश्रय लेना आवश्यक होता है। दूसरों के प्रति निस्वार्थ आत्मीयता का होना ही सच्चा प्रेम है। न्याय का अर्थ है—सन्तुलन। न अपना अधिकार हरण करने देना और न किसी का करना। भगवती का व्यवहार-नीतियाँ इन्हींगुणों पर आधारित हैं। भगवती को प्राप्त करने के लिए इन गुणों का विकास आवश्यक है।

पिंगैकजटा

भगवती तारा की एक जटा पिंग वर्ण की है। एक जटा का अभिप्राय केशों का वेणी रूप में बनता है। केश का आध्यात्मिक अर्थ त्रिदेवता–ब्रह्मा, विष्णु और महेश है, जिसमें 'क' का प्रतीक ब्रह्मा, 'अ' का प्रतीक विष्णु और 'ईश' का महेश हैं। ब्रह्मा सतोगुण का विष्णु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रजो गुण का और महेश तमोगुण का द्योतक है। एक जटा में तीनों गुण मिश्रित हैं। उनको अलग-अलग करना असम्भव है। वह तो साथ-साथ ही रहते हैं। सात्तिकता की वृद्धि चाहने वाले को रज और तम से घृणा नहीं करनी चाहिए, वह भी इस जीवन की स्थिरता के लिए आवश्यक है। आवश्यकता यह है कि उनके प्रभाव से अनासक्त व अलिप्त रहा जाय। एक जटा से अभिप्राय तीनों गुणों की एकता से है। सत्, रज और तम के प्रतीक वर्णों को यदि मिलाया जाए तो परिणाम पिंग वर्ण ही होगा। भगवती को तीनों की एकता ही अभीष्ट है, तभी वह जटा में पिंग वर्ण धारण करती है और यह भी संकेत करती है कि इस अनिष्ट सिद्धि के लिए घोर परिश्रम, तप की अपेक्षा है (पिंग वर्ण तप का द्योतक है) सात्विक के विकास के लिये आवश्यक है कि रज और तम को कम किया जाए, दबाया जाए, इसके लिए तप करना होगा।

दंष्ट्राकोटिसमुज्ज्वला

इसका तात्पर्य समुज्जवल दन्तपंक्ति से है जिससे लपलपाती जिह्वा को दबाकर रखती है। उज्ज्वलता का प्रतीक सतोगुण है। लाल जिह्वा रजोगुण की द्योतक है। यहाँ सतोगुण ने रजोगुण को दबा रखा है। भगवती के उपासकों को भी यही प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें रजोगुण को नियन्त्रण में रखना चाहिए।

चीते के चर्म को ओढ़ने वाली

तारा चीते के चर्म को ओढ़ती हैं। चीता महान क्रूर स्वभाव का है। अतः तमोगुण का प्रतीक है। किसी पशु का चर्म ओढ़ने के लिए उसका वध आवश्यक है। वध करने वाला उससे शक्तिशाली होता है तभी वह साहस कर सकता है। चीते के चर्म के ओढ़ने का अभिप्राय तम को नियन्त्रण में रखना है। सतोगुण के विकास के लिये तम को दवाना ही पड़ेगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्वेतास्थिपट्टिकायुक्त

तारा श्वेत अस्थियों के आभूषणों से विभूषित है। अस्थि मांस-मज्जा से तभी अलग होती है जब मृत्यु होती है। सारे जगत के प्राणियों की मृत्यु का अभिप्राय प्रलय से है। इस समय तारा श्वेत आभूषण धारण किये हुए हैं। श्वेत वर्ण सतोगुण का प्रतीक है। चाहे अपने पर कैसी भी आपत्ति क्यों न आ जाये, कैसी भी गिरी हुई परिस्थितियों से क्यों न गुजरना पड़ रहा हो, अपनी आत्मा के स्वाभाविक गुण सत् को ही अपनी शोभा समझनी चाहिए।

शवासना

प्राणी शव रूप में तभी आता है जब उसमें आत्मशक्ति का अभाव हो जाता है। शव प्रलयावस्था को सूचित करता है। प्रलय में सभी कुछ निर्जीव हो जाता है, केवल भगवती ही अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहती है। प्रलय विनाश का चिन्ह है। भगवती—इस व्यापक विनाश से अप्रभावित रहती है बल्कि उस पर नियन्त्रण रखती है।

शव से यह भी लक्षित होता है कि यह भौतिक जगत अनित्य है। जो अनित्य जगत के मोह में फँस जाता है, वह सदैव दुखी रहता है क्योंकि नष्ट होने वाली वस्तु का स्वभाव ही नाश है। यदि उसमें आसक्ति रही तो शोक होगा ही। भगवती ने इस अनित्यता की भावना को अपने पैरों के नीचे दबा रखा है और उस पर स्वयं खड़ी है ताकि वह उठ न सके। आत्मा नित्य है। जिनमें आत्म प्रकाश होता है, वह इसी प्रकार अनित्यता रूपी शव पर खड़े दृष्टिगोचर होते हैं।

अक्षोभ्यनाग सम्बद्ध जटाजूटाम्

तन्त्र-ग्रन्थों में अक्षोभ्य शिव का ही नाम है। 'तारा-तन्त्र' अथवा 'षोडश-तन्त्र' में कहा है—

समुद्रमंथने देवि ! कालकूटं समुत्थितम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वे देवाश्च देव्यश्च महाक्षोभमवाप्नुयुः ॥
क्षोभादिरहितं यस्मात पीतं हालाहलं विषम् ।
अतएव महेशानि ! अक्षोभ्यः परिकीर्तितः ॥
तेन सार्द्धं महामाया तारिणी रमते सदा ।

अक्षोभ्य नाम का सम्बन्ध पुराणों की समुद्र-मन्थन की कथा से है। समुद्र-मन्थन करते हुए जब हलाहल विष निकला तो चारों ओर का वातावरण विषाक्त होने लगा, सारे विश्व में खलबली मच गई तो देवताओं ने भगवान शंकर से प्रार्थना कि वे इस सङ्कट से उबारें। शंकर ने इस विष का पान कर लिया और विश्व में शान्ति स्थापना हुई सभी को यह विश्वास था कि शंकर को इससे क्षोभ होगा परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वे क्षोभरहित रहे इसलिए उनका 'अक्षोभ्य' का आध्यात्मिक अर्थ 'अहङ्कार शून्य' है। 'अहङ्कार' महान विष है, उसे जो पीता है और अप्रभावित रहता है, वही अक्षोभ्यावस्था से प्राप्त होता है। यह शक्ति की उच्चतम अवस्था है। तारा को कैसी भी आसुरी शक्तियों से जूझना पड़ा हो, विषैले वातावरण के सम्पर्क में जाना पड़ा हो वह अक्षोभ्य ही रहती है। उसके मस्तिष्क में स्थायी शान्ति स्थिर रहती है। नाग 'क्षोभ' का प्रतीक है, उसके रहते हुएभी वह क्षुब्ध नहीं होती, यही विशेषता है। तभी इसी अवस्था के द्योतक अक्षोभ्य को उन्होंने अपने मस्तक पर धारण कर रखा है, अर्थात् उच्च सम्मान प्रदान किया है।

प्रत्यालीढा

प्रत्यालीढ़ा का अर्थ है बाँया पैर आगे और दायाँ पीछे। स्त्री या शक्ति जब क्रियाशील होने लगती है तो बायाँ पग ही पहिले उठता है। यह सक्रियता का द्योतक है। तारा सतोगुण के विकास का प्रतीक है और सदैव रजोगुण को नियन्त्रण में रखने को तत्पर रहती है, यह उसकी इस विशेष मुद्रा से ही लक्षित होता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुण्डमाला-धारिणी

मुण्डमाला प्रलयावस्था की सूचक है । तारा उसे अपने नियन्त्रण में रखती है ।

पचास मुण्ड वर्णों के भी प्रतीक हैं । इससे तारा का बाह्य रूप शब्द प्रतीत होता है ।

खप्परयुक्ता

तारा प्रलयावस्था से सम्बन्ध रखती है । जिस तरह महाकाली को महा प्रलम की अधिष्ठात्री माना जाता है, उसी तरह 'उग्रतारा' को सूर्य-प्रलय की अधिष्ठात्री स्वीकार किया गया है । प्रलय के समय सूर्य सभी प्राणियों का रस सुखा देता है और उग्रतारा उसे पी जाती है । इस विशेष रूप शिर के कपाल में रहता है । इसलिए खप्पर से सम्बन्ध है ।

स्थूल उदर से ब्रह्मा के विराट् विश्व रूप की ओर संकेत है । जैसे वह कूटस्थ व सूंक्ष्म होता है, वैसे वह स्थूल होता है । इससे प्रणव के आकार का भी बोध होता है, क्योंकि उकार का अभिप्राय हिरण्यगर्भ का तैजस रूपी सूक्ष्म शरीर और मकार से अव्याकृत प्रज्ञारूप विश्व शरीर है ।

करालवदना

भगवती तारा कराला है, उसे देखकर भय लगता है । ब्रह्म के परम उग्ररूप को ही उग्रतारा कहते हैं । तारा ब्रह्म की मूल सत्ता व पराशक्ति है, वह नित्य विराट् सत्ता है जिसके आदेश पर सभी अपरा शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं । सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अन्य नक्षत्र, वायु आदि सभी प्राकृतिक शक्तियों का सञ्चालन भगवती करती है । उसके भीषण रूप को देखकर सभी अपने कार्य में रत रहते हैं । उस उग्रता से विराट् ब्रह्म का तेजस्वी रूप ही सूचित होता है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खर्वा

तारा को खर्वा इसलिये कहते हैं कि वह एक क्षण मात्र में विरोधियों के अहङ्कार को चकनाचूर कर देती है, गर्व को खर्व कर देती हैं। इसीलिए इसका भोजन भी अहङ्कार मात्र बताया जाता है। वह इसी पर जीवित रहती है।

एक भाव और है। खर्वा का अर्थ नाटी भी होता है। तारा स्थूल उदर वाली है, उसका विराट विश्व रूप है, जितनी वह विराट है, उतनी सूक्ष्म भी है। ब्रह्म के यह दोनों रूप हैं, विराट भी और अणु से अणु भी। इन दोनों में सादृश्यता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ एक ही हैं। विष्णु विराट् हैं, विश्वव्यापी देव हैं, वही वामन (बौने) रूप में अवतरित हुए। वह पहले छोटा था, अल्प था फिर वह बड़ा और विराट् हो गया, अणिमा ही भूमा बनता है। अणु ही विस्तार पाकर महत् बनता है, वामन ही विस्तृत होकर विष्णु बनता है। विराट बनता है। तारा के भी यह दोनों रूप हैं, वह विराट भी हैं और अणु भी है।

व्याघ्रचर्म्मावृता

तारा ने बाघ के चर्म को अधोवस्त्र धारण कर रखा है। बाघ वन का राजा कहलाता है, वह शक्ति सम्राट है परन्तु वह शक्ति स्थूल है, अनित्य है। पशुत्व उसका वास्तविक रूप है, अज्ञानता ने उसे घेर रखा है। वह रजोगुण का प्रतिरूप है। इसे मारकर भगवती ने उसके चर्म को ओढ़ रखा है, अर्थात् उसे अपने नियन्त्रण में कर रखा है क्योंकि उसका वध किये बिना चर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता। इससे विदित होता है कि तारा का रजोगुण पर अधिकार है।

नवयौवनावस्था

साधारण जीवों का यौवन अस्थायी रहता है क्योंकि उत्पत्ति, स्थिति और लय उनका धर्म होता है। इस जगत की हर वस्तु उत्पन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होकर बढ़ती है, एक सीमा तक बढ़कर विनष्ट होने लगती है। किसी के लिए किसी भी अवस्था में स्थिर रहना सम्भव नहीं है। वह तो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हो जायेगा। परन्तु तारा की स्थिति असामान्य है। वह नित्य यौवनावस्था में ही रहती है, उसका विनाश नहीं होता, परिवर्तन नहीं होता, काल का उस पर कोई प्रभाव नहीं। इसलिए वह नवयौवनावस्था कहलाती है।

पञ्चमुद्रा-विभूषित

मुद्रा आनन्द की बोधक है। पञ्चमुद्राएँ पाँच क्लेशों का निवारण करती है। योग दर्शन (साधना पाद) के तीसरे सूत्र के अनुसार क्लेश पाँच प्रकार के हैं—१—अविद्या २—अस्मिता ३—राग ४-द्वेष, ५-अभिनिवेश। इन क्लेशों को मिथ्या ज्ञान, विपर्य्यय ज्ञान, भ्रान्ति ज्ञान-अज्ञान भी कहते हैं। सांख्य परिभाषा में अविद्या को तम, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामिस, अभिनिवेश को अन्धतामिस्त्र कहते हैं। भगवती का इन पर अधिकार है, वह इन्हें दूर करने की क्षमता रखती है।

तारा के आभूषण पांच महाभूत हैं। इनकी गतिविधियाँ भगवती की इच्छा पर सञ्चालित होती हैं। यह मानव देह इन्हीं भूतों से बना है। इससे स्पष्ट है कि सभी प्राणधारियों में क्रियाशीलता का मूल कारण भगवती हैं।

मानव शरीर में पाँच कोश हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। यौगिक भाषा में यह जीवात्मा के पाँच बन्धन हैं। इनका खोलना मानव का परम लक्ष्य है। भगवती के पास इनकी चावी है। वह इन्हें खोल सकती है अथवा सहयोग दे सकती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मिक उन्नति के इन पाँच द्वारों तक पहुँचना भगवती की कृपा से ही सम्भव है।

पाँच मुद्राओं का अभिप्राय पञ्च-रश्मि से भी है जिसका प्रणव की ओर संकेत है। भगवती का आभूषण प्रणव है।

पीनोन्नतपयोधरा

तारा के स्तन दूध से भरे हैं। माता अपने दूध से शिशु का पालन करती है। तारा सारे ब्रह्माण्ड के पालन-पोषण की क्षमता रखती है। उसके पास आहार की कमी नहीं रहती। उसके स्तन सदैव दूध से भरे रहते हैं। तारा का रूप केवल उग्र ही नहीं, वह नाश ही नाश नहीं करती रहती, पालन भी करती है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिशक्तियों का कार्य करती है। 'पीनोन्नतपयोधरा' से पालन-शक्ति का बोध होता है।

नीलवर्णा

तारा का वर्ण नीला है। जब आकाश में मेघ नहीं होते तो वह नीला होता है। आकाश व्यापकत्व का प्रतीक है। भगवती का भी यही गुण है।

जैसे श्याम वर्ण तमोगुण का प्रतीक माना जाता है, वैसे नील वर्ण सतोगुण का प्रतीक स्वीकार किया गया है भगवती सात्विकता, पवित्रता निर्मलता, शुद्धता की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।

अट्टहास की मुद्रा

बड़ी जोर की हँसी को अट्टहास कहते हैं। हँसी प्रसन्नता का परिणाम है। भौतिक सफलताओं के कारण जब मानव को अतीव प्रसन्नता प्राप्त होती है तो गम्भीर मुद्रा के संकोच को छोड़कर वह मुक्त रूप से हँसता है। इससे उसकी हार्दिक प्रसन्नता का बोध होता है। आनन्दमय स्थिति का भी द्योतक है। भगवती तो आनन्द ब्रह्म है। उसे भौतिक त्रिपातों से क्या सम्बन्ध है? वही सदैव आनन्दमयी रहती है। अट्टहास इसी अवस्था का प्रतीक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्वलच्चितामध्यस्था

भगवती जलती हुई चिता के मध्य में निवास करती है। मानव देह के नाश के बाद चिता जलाई जाती है। भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता, वह तो अपनी नित्य की स्थिति में रहती है। तारा का भी यही रूप है। उसके चारों ओर अग्नि की लपटें रहती हैं जो भौतिक वस्तुओं को ध्वस्त करने की क्षमता रखती है, परन्तु तारा का विनाश ही नहीं है।

मृत्यु इस जीवन का सबसे बड़ा कष्ट है, चिता उसका रूप है। इस जीवन की महानतम् विपत्तियों के आने पर भी तारा की स्थिति सदैव की तरह एक जैसी रहती है, यही अन्तिम प्रगति का चिन्ह है। तारा अपने भक्तों को इसी मार्ग को ओर ले जाती है।

चन्द्रार्धकृतशेखर

तारा मस्तक पर चन्द्रकला को धारण किए रहती है। इस स्थान विशेष का सम्बन्ध सोम मण्डल से है, जो ब्रह्मरन्ध्र में नीचे और आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित है। इस सोममण्डल से अमृत की धारा का अखण्ड प्रवाह चलता है। इस स्थान पर चन्द्रकला को धारण का तात्पर्य यही है कि तारा अमृत रूपा है, अमृत की सरिता का मूल प्रवाह उसी से होता है।

उपरोक्त स्पष्टीकरण से तारा के तत्वज्ञान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

तारा-पूजन-विधान

भगवती तारा देवी का मंत्र चार प्रकार से वर्णन किया गया है। इन चारों में से किसी भी एक मन्त्र के द्वारा उपासना की जा सकती है :—

(१) ह्रीं श्रीं हूँ फट्
(२) ओम् ह्रीं श्रीं फट्
(३) श्रीं ह्रीं हूँ फट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) ओं ऐं ह्लीं क्रीं हूँ फट्

दिक्पालन्यास

१-ह्लीं त्रीं हुँ अं उं ऋं लृं एं ओं अं ललाटपूर्वं इन्द्राय-नमः। २—ह्लीं त्रीं हुँ आँ ईं ॠं लॄं ऐं औं अः ललाटाग्नेय्यां दिशिअग्नये नमः। ३-ह्लीं त्रीं हुँ कं खं गं घं ङं ललाट दक्षिणे यमाय नमः। ४—ह्लीं त्रीं हुँ चं छं जं झं ञं ललाट-नैऋत्याँ दिशि निऋंतये नमः। ५—ह्लीं त्रीं हुँ टं ठं डं ढं णं ललाट पश्चिमाया दिशि वरुणाय नमः। ६—ह्लीं त्रीं हुँ तं थं दं धं नं ललाट वायव्यांदिशि वायवेनमः। ७—ह्लीं त्रीं हुँ पं फं वं भं मं ललाटोत्तरस्यां दिशि सोमाय नमः ८—ह्लीं त्रीं हुँ यं रं लं वं ललाटशान्यां दिशि ईशानाय नमः। ९-ह्लीं त्रीं हुँ त्रं यं सं हं ललाटोर्ध्वायाँदिशि ब्रह्मण नमः। १०—ह्लीं त्रीं हुँ लं क्षं ललाट-धोदिशि अनन्ताय नमः।

षट्चक्रन्यासः

१-ह्लीं त्रीं हुँ वं शं षं सं डाकिनीयुत ब्रह्ममाणाँ चतुर्दलस-मन्वितमूलाधार न्यसेत् २-ह्लीं त्रीं हुँ बं भं मं यं रं लं राकिनी-युत श्रीविष्णुलिंगस्य षड्दले त्वाधिष्ठानचक्रे न्यसेत् ३-ह्लीं त्रीं हुं डं ढं तं थं दं धं नं पं फं लानियुतंरुद्रं दशदलचक्राभिस्थे मणि-पूरेके न्यसेत्। २—ह्लीं त्रीं हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनींयुतमीश्वर अनाहते द्वादशदले चक्रेहृदिन्यसेन् ५-ह्लीं त्रीं हुं अं आं इं उं ऊं ऋं ॠं लृं लं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनोंयुत सदाशिव विशुद्धा विरूप षोडशदल कण्ठस्थे विन्यसेत्। ६-ह्लीं त्रीं हुं क्षं हाकिनी युतं परंशिवमाज्ञाचक्रे महीहरेभ्रु मध्यसस्थिते प्रविन्यसेत्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तारादिन्यास

१-ह्लीं त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमो ब्रह्मरन्ध्रे। ह्नीं त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं उग्रायै नमो ललाटे। ह्लीं त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं महोग्रायैनसो भ्रूमध्ये। ह्लीं त्रीं हुं ऋं ॠं तं थं दं धं नं बज्रायै नमः कण्ठदेशे। ह्लीं त्रीं हुं लृं लॄं पं फं बं भं मं महाकालाल्यैनमोहृदि ह्लीं त्रीं हुं एं ऐं यं रं लं वं शं सरस्वत्यैनमो नामीं ह्लीं त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं कानेश्वर्यैनमो लिंगमूले। ह्लीं त्रीं हुं अं अः ल अ चामुण्डायै नमो लिंगमूले।

पीठन्यासः

ह्लीं ३ अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूप पीठायनमो आधरे। ह्लीं ३ आ ईं ॠं लॄं औं अः जालंधरपीठाय नमो हृदि। ह्लीं ३ क ख ग घ ङ पूर्णागिपीठाय नमो ललाटे। ह्लीं ३ चं छं जं झं ञं उड्डियान पीठाय नमः केशरन्ध्रो। ह्लीं ३ ट ठ ड ढ ण वाराणासी पीठाय नमो भ्रुवोः। ह्लीं ३ तं थं दं धं नं आवन्ति पीठाय नमो नयनद्वये। ह्लीं ३ पं फं बं भं मं मायापुरी पीठाय नमो मुखे। ह्लीं ३ यं रं लं वं मथुरा पीठाय नमो कण्ठे। ह्लीं ३ शं ष सं हं अयोध्यापीठाय नमो नाभौ। ह्लीं ३ लं क्षं काञ्चीपुरी पीठाय नमः कट्याः। इति पीठ-न्यासः ॥

१--हां त्रां हां एकजटायै ह्यदयायनमः। हां त्रां हां तारिण्यै शिर से स्वाहा हां त्रां हां वज्रोदाकयं शिखायै वषट्। हां त्रां हां उग्रतारिण्यै कवचायहुं। हां त्रां हां महापरिसरायै नेत्रत्रयाय-वौषट्।

हां क्षां एक जठायै अंगुष्ठाल्यां नमः। हां त्रां हां तारिण्यै तर्जनीभ्त्रां स्वाहा। हां त्रां वज्रोदकायै मध्यमाभ्यां

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वषट् ह्रां त्रां ह्रां उग्रतारायै अनामिकाभ्याँ हुँ। ह्रां त्रां ह्रां महापरिसरायै कनिष्ठिकाभ्याँ वौषट्।

ध्यानम्—विश्वव्यापक वारिमध्य विलसच्छवेतांबुजन्संस्थितां।
कर्त्री खड्गकपाल नीलनलिनै राजतकरां नीलभां।
काञ्चीकुण्डलहारकंकणलसत्केयूरमञ्जीरताम्।
आप्तैर्नागवरैर्विभूषितनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ॥१
पिंगोग्रैकजटाँ लसत्सुरसनाँ दंष्ट्राकरालाननाम्।
चर्मद्धपिवरं कटोविदधतीं श्वेतास्यि पठ्ठालिकाम् ॥
अक्षोभ्येण विराजमान शिरसं स्मेराननाभ्भोरुहां।
ताराँ शावहृदासनाँ दृढ़कुचामम्बां त्रिलोक्योः स्मरेत् ॥२

एक मन्त्र है—

ओं ह्लीं त्रीं फट्।

यह पञ्च अक्षर का मन्त्र है। जब इस मन्त्र में ओंकार न लगाया जाए तो इसे 'एकजटा' कहते और 'ओं, फट्' को निकाल देने पर नाल सरस्वती' कहलाती है।

आसन देने का मन्त्र—'सा ह्रौं' सरस्वती योगपीठात्मने नमः

जल देने का मन्त्र—ओं वज्रोदके हुं फट्।

आचमन मन्त्र—'ह्लीं सुविशुद्धधर्म सर्व पापानि शामभ्या शेषविकल्पानपनय स्वाहा।'

शिखांवन्धन मन्त्र-ओं मणिधरिवज्ररियं सर्व वशकरणि कं हं फट् स्वाहा।'

भूमि-शोधन का मन्त्र 'ओं रक्ष-२ हु फट् स्वाहा।'

विघ्न-निवारण मन्त्र—'ओं सर्वविघ्ना[illegible] हुं फट् स्वाहा

'तारोपनिषत्' में तारा के कुछ ध्यान इस [illegible] दिये गये हैं—

विरुद्धवाक्यार्थशरीरमण्डले नवाम्बुदाभा गुह्यमुक्षतोदरीम्।
अतीवखर्वां नवयौवनस्थामनः स्थशार्दूलक कृत्तिमूर्धजाम् ॥
अनैक्यमाहत्य शवोपरिस्थतां शवाधमलीढ़-परीतमव्ययाम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशीर्णवर्णा नृशिरः स्रजोदवाँ त्रयीविवर्त्तारुणलोचनत्रयाम्
अभेदर्पिगैकजटाविरजितां विभूषिणाच्छिन्न सितास्यि क्षीष-
णाम् । महाष्टसिद्धि प्रकाराहिभूषणामट्टहासैर्जगतामभीतिदाम् ॥
जटास्वनन्तः श्रवसोश्व तक्षकों महाहिपद्मौ हृदिहारभूषणम् ।
तथैव कर्कोटकृतापवीतिकां सुमेखलायामथ देववासुकिः ॥
सशंखपालः किल कंकणे मतः पदेषु पद्मः किल नूपुरश्रियम् ।
भुजेषु नाग कुलिकीङ्ग दोमती भुजोऽर्धमालामहत्तास्थिति
स्थिता ॥
सितश्च रक्तो धवलश्च मेचकस्तथैव नागोऽथ सितश्च पाण्डर ।
भुजङ्गमानामिह वर्णजातयौ भवन्ति सर्वे मुनिभिर्ज्वलच्चिताम् ॥
कपालकर्त्री ग्रथितोग्रमूर्धजाँ सनालमिन्दीवरकान्तिमालाम् ।
वकोषखड्ग सततं च दक्षिणे स्वपोरुषात्थैदधतीं भुजै सदा ॥
पदार्थ दंष्ट्राद्वल पञ्चमुद्रया विराजमानामसिं रक्तोत्पलस्रजम् ।
विचिन्तयेत्तां च कवित्वकारणिरीमन्वागतार्थप्रजपेश्च तारिणीम्।

तारा के जप का पुरुच्चरण चार लाख मन्त्र का है । रक्त-कमल में दूध और घी मिलाकर दशांश अर्थात् ४० हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए ।

तारा मन्त्र

सुवर्णादि पीठे गोरोचनाकुंकुमादिलिप्ते 'ओं अः सुरेखे बजुरेखे ओं फट् स्वाहः इति मंत्रेणाधोमुख त्रिकोणगर्भाष्टदलपद्मं त्त चतुरस्रं चतु[illegible]युक्तमन्मुद्धरेत् ।

'स्वर्ण आदि [illegible] चौकी पर गोरोचन, कुंकुम आदि से लेप करके 'ओं अः सुरेखे, इत्यादि मन्त्र से अधोमुखी त्रिकोण में, अष्टदल कमल बनावे और उसके बाहर गोलाकार चौकीदार और चतुर्द्वार युक्त यंत्र का लेखन करे' ॥३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्षद्वयं जपेद्विद्याँ हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
पलाशकुसुमैर्देवी जुहुयात्तद्दशांशतः ।

हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहता हुआ साधक दो लाख बार मन्त्र जप करे और पलाश पुष्प के द्वारा उसका दशांश होम करें ।'

दिव्यं हि कवचं देवि तारायाः सर्वकामदम् ।
शृणुष्व परमं तत्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥१

'भैरव बोले—हे देवि ! भगवती तारा का यह कवच परम श्रेष्ठ और सभी कामनाओं का देने वाला है । तुम्हारे प्रति स्नेह होने से ही उसे प्रकट करता हूँ ॥१

अक्षोभ्य ऋषिरित्यस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
तारा भगवती देवी मन्त्रसिद्धौ प्रकीर्तितम् ॥२

'इस कवच के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द त्रिष्टुप्, देवता भगवती तारा देवी और मन्त्र सिद्धि में इसका विनियोग है' ॥२

ओंकार मे शिरः पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी ।
ह्रींकारः पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी ॥
श्रींकार पातु वदने लज्जारूपा महेश्वरी ।
हुंकारः पातु हृदये तारिणी शक्तिपधृक् ॥३

'ओंकार युक्त ब्रह्मरूप महेश्वरी मेरे शिर की रक्षा करें, ह्रींकार बीज रूपा महेश्वरी मेरे ललाट की रक्षा करें, श्रींकार लज्जा रूपा महेश्वरी मेरे मुख की रक्षा करें और हुँकार शक्तिरूपा तारिणी देवी मेरे हृदय की रक्षा करें ॥३

फट्कारः पातु सर्वाङ्गे सर्वसिद्धि फलप्रदा ।
खर्वा मां पातु देवेशो गण्डयुग्मे भयापहा ॥
लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी ।
व्याघ्र चर्मावृताकटि पातु देवी शिवप्रिया ॥४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'फट् युक्त सर्व सिद्धियों का फल देने वाली देवी मेरे सर्वांग की रक्षा करें, खर्वा देवी मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करें, लम्बोदरी महेश्वरी मेरे दोनों स्कन्धों की रक्षा करें, और व्याघ्र चर्म से आवृत्त भगवती शिवा प्रिया मेरी कटि देश की रक्षा करे, ।४।

पीनोन्नतस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी ।
रक्तवर्त्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावस्तु ।
लोलज्जिह्वां सदा पातु नाभौ माँ भुवननेश्वरी ।
करालास्या सदा पातु लिंगे देवी हरप्रिया ।।५

'पीनास्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पार्श्व की रक्षा करें, रक्त वर्ण के गोल नेत्र वाली भगवती मेरे कटि देश की रक्षा करें लोल जिह्वा भुवनेश्वरी माता मेरी नाभि की रक्षा करें और शँकर की प्रियतमा करालवदना देवी मेरे उपस्थ की रक्षा करें ।५।

विवादे कलहे चैव अग्नो चरणमध्यतः ।
सर्वदा पातु माँ देवी झिण्टीरूपा वृकोदरी ।।६

'विवाद, कलह, अग्नि के मध्य में और संग्राम भूमि में झिंटी रूपा वृकोदरी देवी मेरी सदा ही रक्षा करती रहें, ।६।

सर्वदा पातु माँ देवी स्वर्गे मर्त्यें रसातले ।
सर्वास्त्रभूषिता देवी सर्वदेवप्रपूजिता ।।
क्रीं क्रीं हुँ हुँ फट् पाहि समन्ततः ।।७

'स्वर्ग लोक में या मर्त्यलोक में सदा ही भगवती मेरी रक्षिका हो। वह देवी सभी देवताओं द्वारा पूजिता और सभी प्रकार के अस्त्रों से विभूषिता हैं । क्रीं क्रीं हुं हुं फट् फट् यह बीज मेरी सब ओर से रक्षा करने वाले हों' ।।७

कराला घोरदर्शना भीमनेत्रा वृकोदरी ।
अट्टहासा महाभाग्रा विघूणितत्रिलोचना ।।
लम्ब्रोदरी जगद्धात्री डाकिनी योगिनीयुता ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लज्जारूपा योनिरूपा विकटा देवपूजिता ।
पातु माँ चण्डी मातङ्गी ह्युग्रचण्डा महेश्वरी ।।८

'कराल रूप वाली, घोर दाँतों वाली, भीषण नेत्र वाली, वृकोदरी, महाभाग, अट्टास, करने वाली, घूर्णित नयनत्रय वाली, लम्बोदरी, जगत् के रचने वाली, डाकिनी और योगिनियों को साथ रखने वाली, लज्जा रूपिणी, विकटा, चण्डी, मातगी, उग्र चण्डा, देव पूजिता महेश्वरी सदैव ही रक्षा करने वाली हो' ।८।

जलेस्थले चान्तरिक्षे तथा च शत्रुमध्यतः ।
सर्वतः पातु मां देवी खड्गहस्त जयप्रदा ।९

'जल स्थल एवं शून्य में तथा शत्रुओं के मध्य में भी जय प्रदायिनी भगवती खंग हाथ में लिये हुए सर्वत्र ही मेरी रक्षा करें ।९।

ववचं प्रपठेद्यस्तु धारयेच्छ्रुणयादपि ।
न विद्यते भयं तस्य त्रिषु लोकेषु पार्वति ।।१०

जो व्यक्ति इस कवच का पाठ करते, इसे धारण करते अथवा सुनते हैं, उनके लिए तीनों लोकों में कहीं भी भय उपस्थित नहीं होता' ।१०।

३—षोडशी [त्रिपुर-सुन्दरी]

मध्यान्ह को जब सूर्य की शक्ति उग्र होती है, तब उसका नाम रुद्र होता है और उसकी शक्ति का नाम तारा है। प्रातः कालीन सूर्य शक्ति शिवात्मक है जिसे पञ्चवक्त्र शिव' की संज्ञा शिव-तन्त्र' में दी गई है। इसकी शक्ति 'षोडशी' है । निर्माण का कार्य इसी शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है । यह कहना चाहिये कि प्रशान्त हिरण्यगर्भ या सूर्य शिव हैं और इनकी शक्ति का नाम षोडशी है ।

चारो दिशाओं और ऊर्ध्व दिशा में अभिमुख होने के कारण से शिव का नाम 'पञ्चवक्त्र' पड़ा ।

शंकर के अघोर, तत्-पुरुष, वामदेव, सद्योजात और ईशान पाँच मुख बताए जाते हैं। ईशान का लाल रङ्ग बताया जाता है। यह अग्नि प्रधान हैं और स्वयम्भू मण्डल का प्रतीक है। यह सबसे ऊपर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थित रहता है। श्वेत रूप का तत्पुरुष पूर्व की ओर सूर्य मण्डल में स्थित रहता है। सूर्य किरणों में सात रंग होते हैं, उनके मिलने पर सफेद रूप बन जाता है। कृष्ण वर्ण का अघोर रूप दक्षिण की ओर होता है और उप प्रधान जनलोक प्रतिनिधि माना जाता है। यह मूर्ति मध्य में रहती है। पीत वर्ण में 'सद्योजात' मूर्ति पश्चिम की ओर होती है और जो महर्लोक में स्थित मानी जाती है श्वेत वर्ण के वामदेव का मुख उत्तर की ओर रहता है। यह तपोलोक का प्रतीक है।

इससे स्पष्ट है कि शिव के यह पाँच मुख पाँच लोकों के प्रतीक हैं।

शिव पुराण, वायु संहिता (उत्तर भाग) में इन पाँच मूर्तियों का विवरण इस प्रकार है :—

शिवजी की पंच ब्रह्ममूर्ति सम्पूर्ण विश्वव्याप्त है। ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और सद्योजात यह उनकी पंचमूर्ति विश्व विख्यात हैं। उनकी ईशान नामक प्रथम मूर्ति प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्र में स्थित है। तत्पुरुष नामक स्थाणु की मूर्ति गुणाश्रय होकर भी तो है, वह अव्यक्त में स्थित है।

अघोर मूर्ति शिव के बुद्धित्व में पूजित है तथा धर्मादि अष्टांग से युक्त होकर स्थित है। विधाता या वामदेव नामक शिव-मूर्ति को शास्त्रज्ञ जन अहङ्कार में स्थित रहने वाली कहते हैं। शिव की सद्योजात मूर्ति को ज्ञानीजन मन में स्थित होने वाली बताते हैं। श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की विभु तथा सबकी ईश्वरी मूर्ति को ज्ञानियों ने 'ईशान' कहा है। त्वचा, हाथ स्पर्श और वायु की अधीश्वरी मूर्ति को पुरातत्व-वेत्ता जन 'पुरुष' कहते हैं। चक्षु, चरण और अग्नि की अधीश्वरी मूर्ति को विद्वानोंने अघोर कहा है। रसना, वायु रस और जल की अधीश्वरी मूर्ति को उसके ज्ञाताओं ने 'वामदेव' कहा है। घ्राण, उपस्थ, गन्ध और पृथिवी की अधीश्वरी मूर्ति 'सद्योजात' नाम वाली कही गई।

इसी शिवात्मक शक्ति का नाम 'षोडशी' है। इसमें षोडश कला

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुष का पूर्ण विकास है। भूः भुवः स्वः रूपी तीनों ब्रह्मपुरों को यही उत्पन्न करती है। अन्तः तन्त्र में इसका नाम 'त्रिपुर-सुन्दरी' पड़ा। श्रीविद्या का नामान्तर ही त्रिपुरा है। तीन पुर मन, बुद्धि और चित्त के प्रतीक हैं, वह इनमें निवास करती है, इसलिए त्रिपुरा कहलाती है। तीन यौगिक नदियों—इडा, पिंगला और सुषुम्ना को भी त्रिपुरा कहा जाता है। वह सत्, रज, तुम को अपने नियन्त्रण में रखने की क्षमता रखती है। अतः त्रिपुरा है। उसके ज्ञान, किया और इच्छा शक्ति-तीन रूप हैं। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न करती है, वह ऋक् यजुः और साममयी है। इसलिये त्रिपुरा है।

'श्रीविद्या' ही षोडषी महात्रिपुरा सुन्दरी, राजेश्वरी, पंचदशी, ललिता, बाला आदि नामों से प्रसिद्ध है। दश महाविद्याओं में षोडशी विद्या 'श्री विद्या' का ही परिणित स्वरूप है। यह श्री विद्या ही ब्रह्म-विद्या है। 'श्री' शब्द श्रेष्ठता, सम्मान और उच्चता का द्योतक है। इसलिए सम्मानीय व्यक्तियो के साथ यह सम्बन्ध किया जाता है। त्याग मूर्ति सन्यासी श्रेष्ठता का प्रतीक माना जाता है। इसलिए उसे 'श्री १०८' के श्रेष्ठता का सूचक नाम से विभूषित किया जाता है। 'श्री' का अर्थ महालक्ष्मी गौण है। हरितायन संहिता और ब्रह्माण्ड-पुराणोत्तर खण्ड के अनुसार 'श्री' का मुख्य अर्थ 'महा त्रिपुर सुन्दरी' है। श्रीविद्या के उपासक को लोक और परलोक दोनो मे सिद्धि प्राप्त होती है। शास्त्र का प्रमाण है—

तत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
तत्रास्त्रि मोक्षा न च तत्र भोगाः।
श्री सुन्दरीसेधनतत्पराणाँ
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

अर्थात् 'जहाँ पर भोग है वहाँ मोक्ष नहीं होता, जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग का अभाव है। यह साधारण नियम है, किन्तु श्री सुन्दरी के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तवाराधन में तत्पर रहने वाले पुरुषों को भोग और मोक्ष दोनों ही पदार्थ साथ-साथ हाथ में रहा करते हैं।'

श्री शंकर भगवत्पादाचार्य ने सौन्दर्य-लहरी स्तोत्र' में कहा है—

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं।
शरण्ये लोकानां तव हि चरणादेव निपुणौ।

अर्थात् 'आपसे अन्य कोई भी देवगण नहीं है जो दोनों हाथों से अभय का वरदान प्रदान कर देवे। अभीति के अभिनय वाली और वरदान प्रकट करने वाली आप एक ही हैं अन्य कोई नहीं। भय से परित्राण करने को और फूल देने के लिए जो कि इच्छा से भी कहीं अधिक होता है आप ही एक हैं। जो आपकी शरणागति में आ जाते हैं उनकी पूर्ण सुरक्षा करने में आपके चरण परम निपुण हैं। आपके चरण की शरण में प्राप्त होने पर फिर अमंगल रहता ही नहीं।'

श्री विद्या आत्म-शक्ति है त्रिपुराम्बा आत्म-शक्ति है। हरितासन संहिता में श्री दत्तात्रेय गुरु ने परशुराम जी से 'त्रिपुराम्बा' के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि उस शक्ति का वर्णन करना सम्भव नहीं हैं, वेद-शास्त्र और तन्त्र इस कार्य में असमर्थ रहते हैं, ब्रह्मा विष्णु और महेश भी इस शक्ति के स्वरूप से अनभिज्ञ हैं, इस पराशक्ति की महिमा का गान कौन कर सकता है? क्योंकि शक्ति-महिमा स्तोत्र में देशिकेन्द्र दुर्वासा ने इनकी उत्पत्ति ही त्रिपुर सुन्दरी से मानी है।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकार द्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्ण विकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुद्रानमणुभिः।
समस्त व्यस्तं त्वाँ शरणद गृणात्योमिति पदम्॥

(म० स्तो०)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'त्रयी अर्थात् वेदत्रयी है—तीन वेत्तियां है—भुवन भी तीन है—ब्रह्म, विष्णु और महेश यह देव भी तीन हैं। तीन विकृति भी अवकारादि वर्णों के द्वारा तीन प्रकार से कही गई है। ध्वनियों से अवरुद्ध आपका धाम तुरीय है। अणुओं में समस्त और व्यस्त आपको हे शरणद ! ओम—यह पद ग्रहण किया करता है।

आद्यैरग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैरम्बत्रिलिङ् गात्मभिः
मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत्पदैस्त्रिभिः ॥
स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयै-
रुद्भूत त्रिपुरेति नाम कलयेहास्ते स धन्वो बुध ॥

—द्रोधभट्टारक (श० म० स्तोत्र)

अर्थात् हे अम्बा ! आद्य अग्नि—रवि—शशि के विम्ब में विलय काले त्रिलिङ्ग स्वरूप से युक्त—मिश्र, आरक्त और सित प्रभा से समन्वित—अनुपम आपके उन तीन पदों से—अपनी आत्मा से उत्पादित काल, लोक—निगमावस्था और अमरादित्रय से उद्भूत त्रिपुरा—इस नाम को जो लेता है वह मनुष्य परम् बुध और इस विश्व में अतीव धन्य है।''

भावनोपनिषद् में कहा है—''इच्छाशक्ति महात्रिपुर सुन्दरी, अर्थात् इच्छा ही महात्रिपुर सुन्दरी नामक आराध्य भगवती है।''

इसका ध्यान इस प्रकार है—

बालार्क मण्डलाभासाँ चतुर्वाहाँ त्रिलोचनाम् ।
पाशांकुशधनुर्वाणान् धारयन्तीं शिवाँ भजे ॥

(शक्ति प्रमोष षोडशी यन्त्र

अर्थात् उस बालार्क मण्डल की तरह आभा वाली अग्नि, सूर्य और सोम रूपी त्रिनेत्र वाली चतुर्भुज, पाश अंकुश चाप और शर को धारण करने वाली का ध्यान करता हूँ।

सूर्य की उग्रता में जब सोम की आहुति दी जाती है, तब उसकी उग्रता शान्त हो जाती है। रुद्र-विश्व वन जाते हैं। मध्याह्न में उग्रता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहती है और प्रातः शान्ति। प्रातःकालीन सूर्य को ही 'बाल-सूर्य' के नाम से अभिहित किया गया।

सूर्य की शक्ति सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक रूप से विद्यमान रहती है। यह ब्रह्माण्ड चतुर्भुज है। इसलिए 'षोडशी' को 'चतुर्बाहा' कहा है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश और यम चारों देवता इसके नियन्त्रण में रहते हैं, 'चतुर्बाहा' का एक भाव यह भी है।

त्रिलोचना का अभिप्रार्य सूर्य, सोम और अग्नि नामक तीन नेत्रों से है।

सूर्य में इतनी आकर्षण शक्ति है कि वह पृथ्वी व अन्य ग्रह-नक्षत्रों को एक व्यवस्थित नियमानुसार अपने चारों ओर घुमाने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है। इन पर निवास करने वाले समस्त प्राणी उस पर आश्रित हैं। उनका जीवन सूर्य के कारण ही क्रियाशील रहता है, अतः सभी उसके चंगुल में पाश में हैं। पाश का आध्यात्मिक अर्थ राग है रागः पाशः, (भाव सूत्र ३३)। राग को मातेश्वरी ने अपने अधिकार में ले रखा है।

इसी के भय से अग्नि और सूर्य तपते हैं और इन्द्र, वायु, यमराज अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

इससे अंकुश का भाव विदित होता है। अंकुश का आध्यात्मिक भाव है—द्वेष। द्वेषोऽङ्कुश, (भाव २४) वह द्वेष भाव को विकसित नहीं होने देती।

यजुर्वेद में वर्षा, पवन और अन्न को इषु (बाण) कहा है—

नसोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये द्विवियेषाँ वर्षमिषवः।

(१६।६४)

'जो रुद्र स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके वाण वृष्टि रूप हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो वोऽन्तर्रिक्षे येषां वातऽइषवः।
(१६।६५)

'जी रुद्र अन्तरिक्ष में वास करते हैं, जिनके वाण पवन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है।

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः।
(१६।६६)

'जो रुद्र पृथ्वी पर विद्यमान हैं जिनके बाण अन्न हैं, जो अन्न के मिथ्या आहार-बिहार द्वारा रोगोत्पत्ति कर मारते हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है।'

पञ्चबाणों का अभिप्राय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरूपी पञ्च-तन्मात्राएँ हैं। शब्दादितन्मात्राः पञ्चतु बाणः (भाव २१)।

मन ही इक्षधनु है। मय इक्षुधनुः' (भाव २२) उत्तर चतुः शती शास्त्र में पाशु, अंकुश, धनुष और बाण का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

इच्छाशक्तिर्मयं पाशमंकुशज्ञानरूपिणम्।
क्रियाशक्तिर्मयं वाणधनुषो दधदुज्वलम्॥

अर्थात् इच्छा शक्ति—पाश, ज्ञान, शक्ति, अंकुश, और क्रियाशक्ति स्वरूप—यह बाण और धनुष है। महारात्रि सुन्दरी इनका प्रतिनिधित्व करती है।

षोडशी पूजन-विधि-मन्त्र

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ओं ह्रीं श्रीं क ए ई
ल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकलह्रीं सौंः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं।

कवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश लोकानुग्रहकारक।
यदुक्तं मे महादेव कवचं सुन्दरीप्रियम्॥
तन्मे कथय देवेश यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमहादेवो उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
सर्वार्थसाधकं देवि सर्वसम्पत्तिपूरकम् ॥

अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमन्त्रवर्णात्मककवचमहा-मन्त्रस्य दक्षिण-मूर्तिभगवान् ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्री महात्रिपुरसुन्दरी देवता । ऐं बीजम् । सौः शक्तिः । क्लीं कीलकम् । मम शरीररक्षणार्थे जपे विनियोगः । ह्रामित्यादि करहृदयन्यासः ।

ध्यानम्

वालार्कमण्डलाभासाँ चतुर्बाहा त्रिलोचनाम् ।
पाशांकुशधनुर्वाणान् धारयतीं शिवां भजे ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा ऐ ह्रीं श्रीं योन्या प्रणम्य-

ककारः पातु मे शीर्ष एकारः पातु फालकम् ।
ईकारः पातु मे वक्त्रं ललारः पातु कर्णकम् ॥
ह्रींकार पातु हृदयं वाग्भवञ्च सदाऽवतु ।
हकारः पातु जठरं सकारो नाभिदेशकम् ॥
ककारोऽध्याद्वस्तिभागं हकारः पातु लिङ्गकम् ।
लकारो आनुनी पातु ह्रींकारो जंघयुग्मकम् ॥
कामराजस्सदा पातु जठरादिप्रदेशकम् ।
भकारः पातु मे जंघे ककार पातु पृष्ठकम् ॥
लकारोऽव्यान्नितम्दं मे ह्रींकारः पातु मूलकम् ।
शक्तिवीजस्सदा पातु मूलाफारादिदेशकम् ॥
त्रिपुरा देवता पातु त्रिपुरेशी च सर्वदा ।
त्रिपुरा सुन्दरी पातु त्रिपुरा श्रीस्थाऽवतु ॥
त्रिपुरा मालिनी पातु त्रिपुरा सिद्धिदाऽवस्तु ।
त्रिपुराम्वा तथा पातु पातु त्रिपुरभैरवी ॥
आविमाद्यास्तथा पान्तु व्राह्मयाद्याः मां सदा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दशमुद्रास्तथा पान्तु कामकर्षणपूर्विका: ।
पान्तु मां षोडशदले यन्त्रेऽनङ्गकुमारिका: ।
पान्तु मां पृष्ठपत्रे तु सर्व साक्षीभणादिका: ।।
पान्तु मां वाह्निदिक्कोणी मध्यदिक्कोणके तथा ।
सर्वज्ञाद्यास्तथा पान्तु सर्वाभीष्टप्रदायिका: ।।
वाशन्याद्यास्तथा पान्तु वसुपत्रस्य देवना: ।।
त्रिकोणस्यान्तराले तु पान्तु मामायुधानि च ।
कामेश्वर्यादिका: पान्तु त्रिकोणे कोण संस्थिता: ।।
विन्दुचक्रे तथा पान्तु महात्रिपुरसुन्दरी !
पुनर्न्यासादियोनिमुद्रया प्रणामन्तं श्रीं ह्लीं ऐं ओं—
इतीदं कवचं देवि कवचं मन्त्रसूचकम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कथञ्चन ।
यस्त्रिसन्ध्य पठेद्देवि लक्ष्मीस्तस्य प्रजायते ।
असभ्यां च चतुर्दश्या य: पठत् प्रयतस्सदा ।।
प्रसन्ना सुन्दरी तस्य सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।

ध्यानम्

अरुणांद्करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशांकुशपुष्पवाणचापाम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव भवानीम् ।।
ध्याये पद्मासनस्थां विकसितवदनां पद्ममपत्रायताक्षीं
हेमाभां पीतवस्त्राँ करकलितलद्धेमपद्मा वरांगीम् ।
सर्वालंकारयुक्ता सततमभयदां भक्तनभ्रां भवानीं ।
श्रीविद्यां शान्तमूर्ति सकलसुरनतां सर्वसम्पत्यदात्रीम् ।।
सुकुकुंमविलेपनामलिकक्रम्बिकतूरिकां
समन्दहसितेक्षणां सशरचापपाशाँकुशाम् ।
अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषां वरां ।
जपाकुसुमभासुरां जपविधौ स्मरेदम्बिकाम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

—अथ खंगमालापारायणं कृत्वा—
—ततः न्यासजालात्मकं कुर्यात्—

अथ मुन्यादिन्यासः

ह्रीं श्रीं दक्षिणामूर्तये नमः मूर्ध्नि
,, षङ्क्त्यै नमः मुखे
,, त्रिपुरसून्दर्यै नमः हृदि
ह्रीं श्रीं ऐं बीजाय नमः गुह्ये
,, सौः शक्त्यै नमः पादयोः
,, क्लीं कीलकाय नमः नाभौ

॥ इति मुन्यादिन्यासः ॥

अथ बहिर्मातृका न्यासः

अस्य श्रींबहिर्मातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि) गायत्र्यै नमः (हृदये) (मुखे) श्रींबहिर्मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः (हृदये) हल्भ्यौ बीजेभ्यो नमः (गुह्ये) स्वरेभ्यश्शक्तिभ्यो नमः (पादयो) बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः (नाभौ) मम श्रीविद्याङ्गत्वेन बहिर्मातृकाप्रसाद-सिद्ध्यर्थेन्यासे विनियोगाय नमः (करसम्पुटे) सर्वमातृकया त्रिर्व्यापकं सर्वाङ्गे अंजलिना।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं कं खं गं घं ङं अंगुष्ठाभ्यां नमः
हृदयाय नमः
,, इं चं छं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः
शिरसे स्वाहा
,, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः
शिखायै वषट्
,, एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः
कवचाय हुँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

,, औं पं फं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः नेत्रत्रयाय वौषट्

,, अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः अस्त्रायफट्

ध्यानम्

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोः पादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ॥
अक्षस्रक्कुम्भचिह्नामभयवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्था-
भिच्छाकल्पातुच्छस्तनजघनभरां भानेतीं तां नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य दक्षाधः करपर्यन्तं प्रादक्षिण्येन आयुधस्थितिः

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः मूर्ध्नि

,,	आं	,,	मुखवृत्ते
,,	इं	,,	दक्षनेत्रे
,,	ईं	,,	वामनेत्रे
,,	उं	,,	दक्षकर्णे
,,	ऊं	,,	वामकर्णे
,,	ऋं	,,	दक्षनासापुटे
,,	ॠं	,,	वामनासापुटे
,,	ऌं	,,	दक्षकपोले
,,	ॡं	,,	वामकपोले
,,	एं	,,	ऊर्ध्वोष्ठे
,,	ऐं	,,	अधरोष्ठे
,,	ओं	,,	ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ
,,	औं	,,	अधोदन्तपङ्क्तौ
,,	अं	,,	जिह्वाग्र
,,	अः	,,	शिरोवृत्ते

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

,, कं ,, दक्षिणबाहुमूले
,, खं ,, दक्षिणमणिबन्धे
,, गं ,, दक्षिणमणिबन्धे
,, घं ,, दक्षिणकराङ्गुलिमूले
,, ङं , दक्षिणकरांगुल्यग्रे
ऐ ह्रीं श्रीं ए क्लीं सौ चं नमः वामबाहुमूले
,, ,, जं ,, तत्कूर्मरे
,, ,, झं ,, वामकाराङ्गुलिमूले
,, ञं ,, तदंगुल्यग्रे
,, टं ,, दक्षिणपादमूले
,, ठं ,, तज्जानुनि
,, डं ,, तद्गुल्फे
,, ढं ,, तद्दङ्गुलिमूले
,, णं ,, तदंगुल्यग्रे
,, तं ,, वामोरुमूले
,, थं ,, वामजानुनि
,, दं ,, वामगुल्फे
,, धं ,, वामपादांगुलिमूले
,, नं ,, वामपादांगुल्यग्रे
,, पं ,, दक्षपार्श्वे
,, फं ,, वामपार्श्वे
,, वं ,, पृष्ठे
,, भं ,, नाभौ
,, नं ,, जठरे
,, यं ,, हृदये
,, रं ,, नमः दक्षकक्षे
,, लं ,, गलपृष्ठे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

" वं " वामकक्षे
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं शं नमः हृदयादिदक्षकरांगुल्यन्तं
" षं " हृदयादिवामकरांगुल्यन्तं
" सं " हृदयादिदक्षपादांगुल्यन्तं
" हं " हृदयादिपामपादांगुल्यन्तं
" लं " पादादिनाभ्यन्तम्
" क्षं " नाभ्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्

ह्सौं अ+क्ष ह्स्सौः नमः इति त्रिव्यापकत्वेन सर्वांगव्यापकं न्यसेत्

॥ इति वहिर्मातृका ॥

अथ अन्तर्मातृका

अस्य श्री अन्तर्मातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मण ऋषये नमः (शिरसि) गायत्रै छन्दसे नमः (मुखे) अन्तर्मातृकांसहस्वत्यै देवतायै नमः (हृदये) हल्भ्यो देवतायै नमः (गुह्ये) स्वरेभ्यश्शक्तिभ्यो नमः (पादयो) बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः (नाभौ) अन्तर्मातृकासरस्वतीप्रसादसिद्ध-यर्थे न्यासे विनियोगाय नमः ।

करहृदयादिन्यासः बहिर्मातृकान्यासवत्

ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदर्शदशदले द्वाद्वशार्धे चतुष्के ।
वासान्ते बालमध्ये उफकठसहिते कण्ठभूले स्वराणां
ह क्षं तत्वार्थयुक्त सकलदलयुत वर्णरूपं नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

हंसस्सोहं सोहं हंसः

विशुद्धचक्रे षोडशारे अ नमः+अः नमः हंसस्सोहं ।
अनाहतचक्रे द्वादशदले कं नमः+ठ नमः हंसस्सोहं ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणिपूरकचक्रे दशदले ङ नमः+फ नमः हंसस्सोहं ।
स्वाधिष्ठानचक्रे षडदले ब नमः+लं नमः हसस्सोहं ।
मूलाधार चक्रे चतुर्दले व नमः+सं नम. हंसस्सौहं ।
आज्ञाचक्रे द्विदले ह नमः+क्ष नमः हंसस्सोहं ।

ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे पञ्चाशद्वर्णान् अनुलोमप्रतिलोमेन अकरादि क्षकारान्त क्षकाराद्यकारन्त विन्यसेत्

॥ इत्यन्तर्मातृकान्यासः ॥

करशुद्धिन्यासः

दक्षकरतले अं नमः तत्पृष्ठे आं नमः तत्पार्श्वे सौः नमः वामकरतले अं नमः तत्पृष्ठे आं नमः तत्पार्श्वे सौः नमः मध्यमयोः अं नमः अनामिकयोः आँ नमः कनिष्ठिकयोः सौः नमः अंगुष्ठयोः अं नमः तर्जन्यीः आँ नमः करतलकर-पृष्ठयोः सौ तमः ॥

॥ इति करशुद्धिन्यासः ॥

आत्मरक्षान्यासः

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष इत्यञ्जलिं हृदये दद्यात् ।

॥ इत्यान्मरक्षान्यासः ॥

चतुरान्यासः

ह्रीं क्लीं सौः श्रीदेव्यात्मासनाय नमः पादयोः ॥४ है ह्रीं हसौः श्रीचक्रासनायः नमः जंघयोः ससै हस्ल्कीं हसौः सर्वमन्त्रासनाय नमः जान्वो ह्रीं क्लीं ब्लें साद्धय- सिद्धास-नाय नमः मूलाधारे ॥

॥ इति चतुरासनन्यासः ॥

वालाषडङ्गन्यासः

ऐं हृदयाय नमः
क्लीं शिरसे स्वाह
सौ कवचाय हुंः
क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीः शिखायें वषट् ऐं अस्त्राय फट्

॥ इति बालाषडङ्गन्यासः ॥

॥ वाग्देवतान्यासः ॥

ओं अं........अः ब्लूँ ३ वशिनीवाग्देवतायै नमः शिरसिः कं २ क्लीं कामेश्वरीबाग्देवतायै नमः ललाटे च ५ न्वलीं मोदिनी–बाग्देवतायै नमः भ्रू मध्ये टं ५ ल्यूं विमलावाग्देवतायै नमः कण्ठेतं ५ उम्रीं अरुणावाग्देवताय नमः हृदये पं हस्लव्यूं जयिनि वाग्देवतायै नमः नाभौ यं ४ झंम्रयं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः गुह्ये शं ३ श्रीं शालिनी वाग्देवतायै नमः मूलाधारे ॥

॥ इति वाग्देवतान्यासः ॥

मूलविद्यान्यासः

मूर्ध्नि कं-मूले एं हृदये ई-दक्षिणनेत्रे लं-वामनेत्रे ह्रीं-भ्रू-मध्ये हं दक्षिणश्रोत्रे स वामश्रोत्रे क-मुखे हं दक्षिणभुजे लं वामभुजे, ह्रीं-पृष्ठे, सं दक्षजानुनि, कं वाम-जानुनि, लं नाभौ ह्रीं ॥

॥ इति मूलविद्यान्यासः ॥

तत्वन्यासः

दक्षपादे आत्मतत्वाय नमः वामे क्रियाशक्तये नमः। दक्षपार्श्वे विद्यातत्वाय नमः। वामे ज्ञानशक्तयै नमः। दक्ष-कपोले शिवतत्वाय नमः। वामे इच्छाशक्तयै नमः। मूर्ध्नि सर्वतत्वाय नमः। तत्रैव तुर्य शक्तयै नमः॥

॥ इति तत्वन्यासः ॥

अथान्तश्चक्रन्यासः

अथ सहस्रारे अ आँ सौः चतुरस्त्रयात्मक त्रैलोक्य-मोहनचक्राधिष्ठायै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसंहि तप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै दुँ नमः। तपरि विषु-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संज्ञे षट्दले ऐं क्लीं सौः षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्रधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्तिसहित-गुप्तप्रयोगिनो रूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नमः। आधारे ह्रीं क्ली सौः अष्टदलपद्मात्मकसर्वक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनंगकुसुमाद्यष्टशक्तिसहित गुप्तरयोगनीरूपायै त्रिपुर सुन्दरीदेव्यै नमः। स्वाधिष्ठाने है हक्लीं हसौ, चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसं-क्षाभिण्यादि चतुर्दशशक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नमः। मणिपूरक ह्र्सें हक्लीं हसौः बहिर्दशारात्मकसर्वार्थसाधकचक्राधिष्टात्र्यै सर्वसिद्धप्र-दादिशक्तिसहितकुलोत्रीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्री-देव्यै नमः। अनाहते ह्रां क्लीं ब्लै अन्तर्दशारात्मकसवर-क्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदशशक्तिसहितनिगर्भ-योगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनी देव्य नमः। विशुद्धौ ह्रीं श्री सौः अष्टात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यैः वशिन्याद्यष्टश-क्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः। लम्बिकाग्रे हसैं हस्क्लीं हसौः त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धि प्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसंहितातिरहस्य योगिनीरूपात्र्यै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः। अज्ञायां क १५ विन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडंगायुधदश-शक्तिसहितपरापररहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरी-देव्यै नमः। पुनः आज्ञाचक्रोपरि एकैकांगुलदेशे विन्दौ अं आं सौ नमः अर्धचन्द्र ऐं क्लीं सौ नमः रोधिन्यां ह्रीं क्लीं नमः। नादे है हक्ली हसौ नमः नादान्ते हसैं हस्क्ली हसौ नमः। शक्तौ ह्रीं क्लीं ब्ले नमः व्यापिकायां ह्रीं श्रीं सौः नमः। समानाया हस्रैं हस्क्लीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हस्रीं नमः । उन्मनायाँ क १५ नमः ब्रह्मान्ध्रे महाविन्दौ क १४ श्रीं नमः । इत्यादि चक्रेश्वरी गन्त्राम् न्यसेद् ।'

॥ इत्यन्तश्चक्रन्यासः ॥

अथ बहिश्चक्रन्यासः

पादयोः अं आँ सौः चतुरश्चत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहितप्रकट योगिनीरूपायै त्रिपरादेव्यै नमः जान्वोः ऐं क्लीं सौः षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशपरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामार्कषिण्यादिषोडशक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायैं त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नमः । ऊरुमूलयो ह्रीं क्लीं सौः अष्टदलपद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनंगकुसुमाद्यष्टशक्तिसहितगुप्तत्तरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः । नाभौ हैं हक्की हसौः चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायक चक्रधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशंशक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नमः । हृदये हसें हस्क्लीं हसौः सहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्री देव्यै नमः । कण्ठे ह्रीं क्लीं ब्ले अन्तर्दशारान्मकरक्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदशशक्तिसहितानिगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः । मुखे ह्रीं सौः अष्टदलत्यात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः नेत्रयोः हसैं हस्क्लीं हस्रौ त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितःतिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेभ्यै नमः । मूर्ध्नि क १५ बिन्द्वात्मक सर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै। षडंगायुधदशशक्तिसहित परात्पररहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः ।

॥ इति बहिश्चक्रन्यासः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामेश्वर्यादिन्यासः

मूलेधारे ऐं ५ अग्निचक्रे कामगिरीपीठे मित्रेशनाथात्मिके जाग्रद्दशधिष्ठायिके इच्छाशक्तयात्मकरुद्रात्मशक्तिश्रीमहाकामेश्वर्यै नमः। अनाहते क्लीं ह ३ सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मिके स्वप्रदशधिष्टायिके ज्ञानशक्त्यात्तकविष्णवात्शक्तिश्रींमहावज्रेश्वर्ये नमः आज्ञायां सौः स ४ सोमचक्रे पूर्णगिरीपीठे उड्डीशनाथान्मिके सुषुप्तिदशाधिष्ठायिके क्रियाशून्यात्मकब्रह्मात्मशक्तिश्रींमहाभगमालिन्यै नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ऐं क्लीं सौः क १५ परब्रह्मचक्रे महोड्डियाणपीठे चर्यानन्दनाथात्मिके तुरीयदशाधिष्ठायिके शान्तिशत्यात्मकपरब्रह्मशक्ति श्री श्री महात्रिपुरसुन्दयै नमः।

॥ इति कामेश्वर्यादिन्यासः ॥

श्रीषोडशाक्षरीन्यासः

ओं ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्यामुच्चये नमः इति दशम ध्यामानाभ्यां शिरसि न्यसेत्।

पुन्सतां दींपाभां स्त्रवत्सुधारसां महासौभाग्दां
ध्यात्वा पुनस्तथैव तामुञ्चायै महासौभाग्यं मे देहि परसौभाग्य दण्डयामि इति सौभाग्यदण्डिन्या मुद्रय वामकर्णसंवेष्टनपूर्वक आमस्तकचरण बामनाङ्गे न्यसेत्।

पुनस्तथैव ताभुच्चार्य मम शत्रून् निगृह्णामीति रिपुजिह्वाग्रया मुद्रया वामपादाधो न्यसेत्।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य त्रैलोक्यस्याह कतति त्रिखण्डाँ फाले न्यसेत्।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य वदने वेष्टनत्वेन न्यभेत्।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य दशकर्णादिवामकर्णान्तं मुखवेष्ठनत्वेन न्यसेत्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुनस्तथैव तामुच्चार्य गलोर्ध्वमाशिरो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामाद्यन्तप्रणवमुच्चार्य मस्तकात् पादपर्यन्त पादादामस्तकं च न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य योनिमुद्रया मुखे न्यस्य सेत् । पुनस्तथैव तामुच्चार्य योनिमुद्रया ललाटे न्यसेत् ॥

॥ इति षोडशाक्षरीन्यास ॥

सम्मोहन न्यासः

श्रीविद्यां स्मृत्वा तत्प्रभया जगदरुर्णं विभावयन् अनामिकाँ ऊर्ध्वं परिभ्राम्य मूलविद्यां पुनः पुनरुच्चार्य प्रह्मरन्ध्रे मणिवन्धद्वितये फाले विन्यसेत् ॥

॥ इति सम्मोहनन्यासः ॥

संहारन्यासः

ओं ऐं ह्लीं श्रीं श्रीं नमः पादयोः
" ह्लीं " जंघयोः
" क्लीं " जान्वोः
" ऐं " कटिभागद्वये
" सौः " पृष्ठे
" ओं " लिङ्गे
" ह्लीं " नाभौ
" श्रीं " पार्श्वयोः
" क-५ " स्तनयोः
" सौ " मूर्ध्नि
" ऐं " मुखे
" क्लीं " नेत्रयोः
" ह्लीं " कर्णयुगसन्निधौ
" श्रीं " कर्णवेष्टनयोः

॥ इति संहारन्यासः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टिन्यासः

ओं ऐं ह्रीं श्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे
" ह्रीं " फाले
" क्लीं " नेत्रयोः
" ऐं " कर्णयोः
" सौः " नासापुटयोः
" ओं " गण्डयोः
" ह्रीं " दन्तपङ्क्तौ
" श्रीं " ओष्ठयोः
" क-५ " जिह्वायां
" ह-६ " चोरकूपे
" स-४ " पृष्ठे
" सौ " सर्वांगे
" ऐं " हृदि
" क्लीं " स्तनयोः
" ह्रीं " उदरे
ओं एं ह्रीं श्रीं श्रीं नमः लिंगे च न्यस्य मूलेन व्यापक कुर्यात् ।

।। इति सृष्टिन्यासः ।।

स्थितिन्यासः

ओं ऐं ह्रीं श्रीं श्री नमः अंगुष्ठयोः
" ह्रीं " तजन्तो
" क्लीं " मध्यमयोः
" ऐं " अनामिकयोः
" सौः " कनिष्ठिकयोः
" ओं " मूर्ध्नि
" ह्रीं " मुखे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

" श्रीं " हृदि
" क-५ " नाभौ
" ह-६ " कण्ठादिनाभिपर्यन्त
" स-४ " मूर्धादिकण्ठान्तं
" सौः " पादांगुष्ठयोः
" ऐं " पादतर्जन्योः
" क्लीं " पादमध्यमयोः
" ह्रीं " पादानामिकयोः
" श्रीं " पादकनिष्ठकयोः

—ततः मलेन षडंगन्यासः कुर्यात्—

॥ इति स्थितिन्यासः ॥

४—भुवनेश्वरी

बुद्धिगत शिव का अधिष्ठाता 'त्र्यम्बक शिव' माना जाता है, उसकी महाशक्ति 'भुवनेश्वरी' है।

त्र्यम्बक का शब्दार्थ इस प्रकार हैं—त्र्यम्बक त्रि+अम्बक अम्ब नाम पिता हैं। त्रयाणाँ लोकानां अम्बकः पिता त्र्यम्बकः। तीनों लोकों का जो पिता है, यह त्र्यम्बक है। यजुर्वेद ३।५८ में कहा है—

अब रुद्रमदीमह्यँव देवं त्र्यम्बकम्।

रुद्र पापियों को सन्तप्त करने वाले, तीन नेत्र वाले हैं, उनके नेत्रों से तीनों लोक प्रकाशित होते हैं।

तीनों भुवनों की सञ्चालक शक्ति भुवनेश्वरी है। संहिता में यहाँ तक लिखा है कि भगवती भुवनेश्वरी चौदह भुवनों पर अपना स्वामित्व रखती है। इसलिए उसका नाम भुवनेश्वरी पड़ा।

इसका स्वरूप इस प्रकार है—

उद्यनिद्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मरेमुखीं वरदांकुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् 'प्रातः कालीन सूर्य की आभा की तरह रक्तवर्ण वाली, चन्द्रमा को मुकुट रूप से ग्रहण कर, उन्नत कुच, त्रिनेत्र, मृदु हास करती हुई, पाश अंकुश, वरद और अभय मुद्रा से युक्त हाथों वाली भगवती भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूँ।

भगवती के वर्ण की उपमा प्रातः कालीन सूर्य की प्रभा से दी गई है जो अरुण वर्ण की होती है। जब सूर्योदय हो रहा होता है, वह रक्त वर्ण की ही होती है। यह रक्त वर्ण प्रकृति के रजोगुण का प्रतीक है, सृष्टि के कार्य में रजोगुण की ही प्रधानता रहती है। भुवनेश्वरी इससे सम्बन्धित हैं क्योंकि वह चौथी सृष्टि की धारा है, चौथी सृष्टि विद्या हैं।

मुकुटरूप चन्द्रमा सोम का प्रतीक है। सोम जगत का पोषण करता है। इसीलिए सोम को ऋग्वेद ६।८६।११,६।६६।२५ व कौषोतक ब्राह्मण ७।१० में चन्द्रमा कहा है, क्योंकि इनके पान से शीतलता प्राप्त होती है।

ऋग्वेद ६।५१।२, ६।६७।३ में इसे अमृत की संज्ञा दी गई हैं क्योंकि इसे ग्रहण करने वाला सदैव निरोगी रहता है, रोग और व्याधि उसके पास फटकने भी नहीं पाती। शतपथ ३।१।३।७ में इसे प्रजापति कहा है क्योंकि यह नई शक्तियों का सृजन करता है। शतपथ १२।७२।१३ में इसे दुग्ध कहा गया है क्योंकि उसकी तरह पोषण का गुण रखता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।७४।५ में सोम भी यही करता है।

'उन्नत कुच' का अभिप्राय पालन-पोषण की शक्ति-सामर्थ्य रखने की क्षमता से है क्योंकि कुच में विद्यमान दुग्ध का कार्य शिशु का पालन ही हैं।

'नयनत्रयमुक्ताम्' का अर्थ सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि नामक तीन तेजों से है। तीन नेत्र-इच्छा, ज्ञान और क्रिया के भी प्रतीक हैं।

'स्मेरमुखीं' का अर्थ नित्यानन्द स्वरूपा है मृदु हास आनन्दरूपता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को ही प्रकट करता हैं। मन्द हास्य से कृपा दृष्टि का भी निदान बनाया गया है।

भगवती के चारों हाथों में पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्राएँ हैं। इनमें पाश अर्थ की सूचना देता है क्योंकि इसी शक्ति के बन्धन में बँध कर मनुष्य आवागमन के चक्र में घूमता रहता है। इसीलिए पाश को आकर्षण शक्ति कहा जाता है।

अंकुश, धर्म का रूप है क्योंकि वातावरण से प्रभावित होकर जब मनुष्य बुरे मार्ग की ओर प्रवृत्त सोता है तो धर्म ही उसे अंकुश की तरह रोकने की शक्ति रखता है। इसमें स्तम्भन की शक्ति होती है। पाश और अंकुश शासन शक्ति के भी सूचक हैं।

वर मुद्रा वे भक्तों को सांसारिक ऐश्वर्यों का वरदान देती है। अभय मुद्रा का यह अभिप्राय है कि भगवती सभी प्रकार के भयों से मुक्त करने वाली है। यह मुद्रा मोक्ष की सूचक है।

भुवनेश्वरी-पूजन-विधि-मन्त्र

'नकुलीशोऽग्निमाः रूढ़ो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान्' अर्थात् नकुलीश (ह्) अग्नि (र्), वामनेत्र (ई), अर्द्धचन्द्र (ँ) इन चार कर्णों को मिलाने से 'ह्रीं' बीज बनता है जो भुवनेश्वरी का मन्त्र।

भुवनेश्वरी का प्रातः सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

अथ वक्ष्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम् ।
ब्रह्माद्रयोपि यां ज्ञात्वा लेभिरेश्रितमूर्जियाम ।।
नकुलीशोग्निमारूढो वामनेत्रार्धचन्द्रवान् ।
वीजं तस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धिकाँक्षिभिः ।।
ऋषिः शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री देवता मनोः ।
कथिता सुरसंघेन सेविता भुवनेश्वरी ।
षडदीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षटक्रमात् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका अध्ययन इस प्रकार है—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटाँ तुंगकुचाँ नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मरेन्मुखीं वरदांकुशपाशाभीतिकरां प्रभजेद्भवनेशीम् ।।

मध्यान्ह सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्भवं शम्भुवनिता रमाबीजत्रयात्मकम् ।
मन्त्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम् ।।
षडदीर्घभाजा मध्येन वाग्भवाद्येन कल्पयेत् ।
षडंगानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ।।

और ध्यानम् इस प्रकार है—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीं मापोनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीं,
सौम्यां रत्नघटस्थ सव्वचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम्

सायंकालीन सन्ध्या का मंत्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्बीजपुटिता माया विद्येयां त्र्यक्षरी मता ।
मध्येन दीर्घ युक्तेन वाकपुटेन प्रकल्पयेत् ।।
अंगानी जातिपुक्तानि क्रमेण मनुवित्तमाः ।

ध्यान यह है—

श्यामागी शशिशेखरां निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पलं,
रक्ताढ्यंचषकं परभयहरं संविभ्रतीं शाश्वतीम् ।
मुक्तहारलसत्पयोधरयुतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं,
वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधू रक्तारविन्दस्थिताम् ।

अन्तर्मातृका न्यासः

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीअन्तर्मातृकां महासरस्वती मन्त्रस्य ब्रह्माविष्णु महेश्वराः ऋषयः ऋग्यजुः सामानि छन्दांसि अन्तर्मातृका महासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तय: विन्दव: कीलकानि अन्तर्मातृका महासरस्वती प्रसाद सिद्धचर्थे जपेविनियोग: ।

ऋष्यादि न्यास:

शिरसि ब्रह्मविष्णुऋषिभ्यो नम: ।
मुखे गायत्री त्रिष्टुव अनुष्टुप् छन्दोभ्य: नम: ।
हृदि अन्तर्मातृका महासरस्वती देवतायै नम: ।
गुह्ये ॐ व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नम: ।
पादयो: ओं स्वररेभ्यो शक्तियो नम: ।
सर्वाङ्गे बिन्दुभ्य: कालकेभ्यो नम: ।

प्राणायाम

ओं ऐं ह्रीं श्रीं आं इं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं अं आं इन स्वरों से पूरक, ओं ऐं ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं वं भं मं इन व्यञ्जनों से कुम्भक और ओं ऐं ह्रीं श्रीं यं रं लं वं शं सं हं—

इनसे रेचक प्राणायाम करना चाहिए ।

करांग और षडङ्गन्यास:

ओं औ ह्रीं क्रों अं कं खं गं घं ङं पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशात्मने आं अंगुष्टाभ्यां नम: ।

ओं आं ह्रां क्रीं इं चं छं जं झं ञं शब्दस्पर्श-रूपरस गन्धात्मने ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा ओं आँ ह्रीं क्रौं डं टं ठं डं ढं णं वाक् पाणिपादपायुपस्थात्मने, आं मध्यमाभ्यां वषट्। ओं आँ ह्रीं कौं एं तं थं दं धं नं श्रोत्रस्त्वक्चक्षुजिह्वाप्राणात्मने ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ओं ह्रीं कों पं फं गं भं मनोबुद्धिचिन्तविज्ञानानन्दात्मने ओं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ओं आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शं षं हं वचनादागमन विसर्गानन्दात्मने अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

ओं आं ह्रीं क्रीं अं कं खं गं घं ङं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशोत्मने आँ हृदयाय नमः।

(इसी प्रकार अन्य अंगों में न्यास करना चाहिये)

ध्यानम्

आधार तु चतुर्दलारुणरुचिवासान्तवर्णावृतं।
स्वाधिष्ठानमनेकविद्युतनिभ वालान्तषट्पत्रकम्॥
रक्ताभं मणिपूरक दशदलैठद्यैः फकारान्तकैः,
पत्रैर्द्वादशभित्वनाहतपुरं हेम ठकारान्तकम्
मात्राभिः स्वरषोडशच्छदयुतं ज्योतिविशुद्धाम्बुज।
हं क्ष द्वयक्षरपद्पत्रयुगलं मुक्तामामाज्ञाम्बुज
तस्मादूर्ध्वगतं सदा विकसितं पद्मं सहस्रच्छद।
नित्यानन्दमयं सदाशिवमयं तत्वं पदं शाश्वतम्॥
शरत्पूर्णेन्दुशुभ्राँ सकललिपीमयीं लोलरक्तं त्रिनेत्राँ।
शुक्लालंकारभासाँ शशिमुकुट जटा-जूटायुताँप्रसन्नाम्॥
विद्यास्राकपूर्णकुम्भान् वरमपि दधतीं शुक्लपुष्पाम्बराढर्चा-
वाग्देवीं पद्मवक्त्राँ स्तनभरनमिताँ चिन्तयेत् साधकेन्द्रः॥

ध्यान के बाद मातृका वर्ण के शुरू में, औं ऐं श्रीं और अन्त में नमः हंस सोहं लगाकर चक्रदलों में न्यास करना चाहिये।

मूलाधार के अरुण आभा वाले चतुर्दल कमल में—दं शं षं सं।

स्वाधिष्टान के विद्युत प्रकाश वाते षट्दल कमल में—बं भं मं यं रं लं।

नाभि के मणिपूरक के रक्तवर्ण दश-दल कमल में—डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदय के अनाहत के सुवर्णवर्ण द्वादशदल कमल में—कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ।

कण्ठ के विशुद्ध के उज्वल षोडशदल कमल में—अं आँ इं उं ऊं ऋं लृं ऐं ओं औं अं अः ।

भौंहों के बीच आज्ञा के मुक्तावर्ण द्विदलकमल में—हं क्षं ।

अब सहस्र दल कमल में सारे मातृका में आने वाले वर्णों का अनुलोम और विलोम क्रम से न्यास करना चाहिये ।

यथा—अं आं इं ईं शं षं सं हं लं क्ष और विलोम क्षं लं हं सं............ईं इं आं अं

अथ बहिर्मातृका

ओं अस्य श्री अन्तर्मातृका महासरस्वतीं यन्त्रस्य ब्रह्मा-विष्णु महेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुः सामानि छन्दांसि वहिर्मातृका महासरस्वती मन्त्रस्य देवता हलो बीजानि स्वरा शक्तयः बिन्दवः कीलकानि वहिर्मातृका महासरस्वती प्रसाद सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास, प्राणायाम, करन्यास, एवं षडंगन्यास आदि अन्तर्मातृका न्यास की करना चाहिए ।

ध्यानम्

पञ्चशल्लिपिभिर्विभिन्न मुखदोपन्मध्यवक्षस्थलीं ।
भास्वन्मौलिचिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ॥
मुद्रामक्षगुणं सुधाठ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजैः ।
विभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥

बहिर्मातृका न्यासं करते समय हर मातृका वर्ण के शुरू में 'ओं' और अन्त में 'नमः' लगाना चाहिये ।

अं ललाटे — अनामा से ।
आँ मुखमण्डले — मध्यमा से ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इ दक्षनेत्रे	अँगूठा और अनामिका से।
ईं वामनेत्रे	,, ,,
उं दक्षकर्णे	,, ,,
ऊ वामकर्णे	,, ,,
ऋं दक्षनासायाम्	अँगूठा और कनिष्ठा से।
ॠं वामनासायाम्	,, ,,
लृं दक्षगण्डे	तर्जनी मध्यमा अनामा से।
लॄं वामगण्डे	,, ,, ,,
ए ऊर्ध्वगण्डे	मध्यमा से।
ऐं अधरोष्ठे	,,
ओं ऊर्ध्व दन्तपंक्तौ	अनामा से।
औं अधौ दन्तपंक्तौ	,,
थं जिह्वायां	मध्यमा से।
अः लम्बिकायां	,,
कं दक्ष बाहुमूले	मध्यमा अनामिका कनिष्ठका से।
ख दक्ष कूर्परे	,, ,, ,,
गं दक्षमणिवन्धे	,, ,, ,,
घं दक्षकरतले	,, ,, ,,
ङं दक्ष कराग्रे	,, ,, ,,
कं बाहुमूले	कनिष्ठामि का मध्यमा
छ कूर्परे	,, ,, ,,
जं वाम मणिबन्धे	,, ,, ,,
झ वाम करतले	,, ,, ,,
ञं वाम कराग्रे	,, ,, ,,
टं दक्षोरुमूले	,, ,, ,,
ठं दक्ष जानुनि	,, ,, ,,
डं गुल्फे	,, ,, ,,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ढं दक्ष पादतले	कनिष्ठा	अनामिका	मध्यमा
णं दक्ष पादाग्रे	"	"	"
तं वामोरुमूले	"	"	"
थं वाम जानुनि	"	"	"
दं वाम गुल्फे	"	"	"
धं वाम पाद तले	"	"	"
नं वाम पादाग्रे	"	"	"
पं दश पार्श्वे	"	"	"
फं वाम पार्श्वे	"	"	"
बं पृष्ठे	"	"	"

भं नाभौ अंगुष्ठ कनिष्ठा अनामा मध्यमा
मं जठरे अंगुष्ठ तर्जनी मध्यमा अना० कनि०
यं त्वगात्मने हृदि मध्यमा अनामिका
रं असृगात्मने दक्षांशे " "
लं मांसात्मने ककुदि " "
वं मेदात्मने वामांशे " "
शं अस्यात्मने हृदादि दक्ष करांगुल्यन्तम् ।
यं मज्जात्मने हृदादि वाम करांगुल्यम् ।
सं शुक्रात्मने नाभ्यादि दक्ष पादान्तम् ।
हं जीवात्मने नाभ्यादि वाम पादान्तम् ।
लं परमात्मने हृदादि कुक्षो ।
क्षं ज्ञानात्मने हृदादि कुक्षो ।

मूल मन्त्र न्यासः

विनियोग—

अस्य श्रीभुवनेश्वरी मन्त्रस्य शक्तिः ऋषि गायत्री छन्द श्रीभुवनेश्वरी देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्ति क्लीं कीलकं श्रीभुवनेश्वरी देवता सिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋष्यादि न्यासः

शिरसि शक्ति ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदि श्रीभुवनेश्वरी देवतायै नमः। गुह्ये ह्लीं बीजाय नमः। पादयो श्रीं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे क्लीं कीलकाय नमः।

करन्यासः

औ ह्लां अंगुष्ठाभ्यां वषट्। ओं ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ओं हं मध्यमाभ्यां वषट्। ओं अनामिकाभ्यां हुँ। ओं ह्ल कनिष्ठाकांभ्यां वौषट्। ओं ह्लः करतलकर-पृष्ठाभ्यां फट्।

षडांग न्यासः

ओं ह्लां हृदयाय नमः। ह्रीं ओं शिरसे स्वाहाः। ओं ह्लं शिखायै वषट्। ओ ह्ले कवचाय-हुं ह्लौं नेत्र-त्रयाय वौषठ्। ओं ह्लः अस्त्राय फट्।

बीजमन्त्र न्यासः

ओं हृल्लेखायै नमः मस्तके। ओं ऐं गगनगायै नमः मुखे। ओं ऊँ रक्तायै नमः हृदये। ओं ई करालि-कायै नमः गुह्ये। ओं औं महोच्छुष्मायै नमः पादयोः। ओं ऐं ऊं ईं औं औं हृल्लेखायै नमः सर्वांगे।

ओं हृल्लेखायै नमः ऊर्ध्वमुखे। ओं ऐ गगनगायै नमः पूर्वमुखे। ओं ऊं रक्तायै नमः दक्षिणमुखे। ओ ईं करालिकायै नमः उत्तरमुख। ओं औं महोच्छुष्मायै नमः पश्चिममुखे।

व्यापक न्यासः

इस तरह से न्यास करके तीन व्यापक न्यास करना चाहिए। यह शिर से पैर तक और पैरों से शिर तक करना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुवनेश्वरी कवच–

पातकं दहनं नाम कवचं सर्वकामदम् ।
शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव स्नेहात्प्रकाशितम् ।।१

शंकर बोले—हे पार्वती ! मैं तुम्हारे प्रति भुवनेश्वरी कवच कहता हूँ । उसका नाम पातक दहन' है । इस कवच से सभी कामनाओं की सिद्धि होती है । तुम्हारे प्रति स्नेह के वश होकर ही इसे प्रकट करता हूँ ।१।'

पातकं दहनस्यास्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च भुवनेशो प्रकीर्त्तिता ।।
धर्मार्थिंकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्कितः ।।२

'पातक दहन के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप् देवता भुवनेश्वरी और विनियोग धर्मार्थ काम मोक्ष आदि में है ।२।'

ऐं बींज मे शिरः पातु ह्रीं बीज वदनं मम ।
श्रीं बीज मे कटिदेशन्तु सर्वांगं भुवनेश्वरी ।।
दिक्षु चैव विदिक्ष्वीयं भुवनेशीं सदावतु ।।३

ऐं बीज मेरे मस्तक की, ह्रीं मुख की श्रीं कमर को ओर भुवनेश्वरी सर्वांग की रक्षा करें । दिशा विदिशा सभी में भुवनेश्वरी मेरी रक्षा करें ।३।'

अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः ।
तस्मात्सदा प्रयत्नेन पठेयुर्म्मानवा भुवि ।।

'इस कवच के पढ़ने से ही कुबेर तुरन्त धनाधिप हुए इसलिए प्रयत्नपूर्वक इसका सदा पाठ करना उचित है ।४।'

स्तव–

अथानन्दमयीं साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
ईडे सकल सम्पत्यै जगत्कारमम्बिकाम् ।।

'जो भगवती आनन्दमयी साक्षात् शब्द रूप वाली एवं ब्रह्म

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरूपा है जो जगन्माता और जगत्कारण रूपा है, उन देवी की सम्पत्ति लाभ के निमित्त स्तुति करता हूँ ।१।

आद्यामशेषजननीमरविन्दयोने-
विष्णोः शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम् ।।
सृष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणां
स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम् ।।२

हे माता ! तुम संसार की आद्या हो, ब्रह्माण्ड तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी तुम्हीं से प्रकट हुए हैं । त्रैलोक्य की रचयित्री, स्थित और विनाश करने वाली हो । तुम्हारी स्तुति के द्वारा मैं अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ ।२।'

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुताम्बरेण
होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाज् ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता
हेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि ।।३

'हे पार्वती ! जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश, अग्निहोत्र, सोम, सूर्य के रूप में जो देवी स्थित हैं तथा जिन्होंने कामदेव को भस्म किया था, उन भगवान् शंकर की भी त्रैलोक्य संहारिणी शक्ति तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न होती है ।३।'

त्रिस्रोतसः सकललोकसमर्च्चिताया ।
वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः ।
त्वत्पादपङ्कजपरागपवित्रतासु
शम्भोर्जटासु नियतं परिवर्तन यत् ।।४

'हे माता ! तुम्हारी चरण-रेणु से पवित्र हुई, शंकर की जटा में तीन स्रोत वाली भागीरथी सदा प्रवाहित रहती है इसलिये उनका सभी पूजन करते हैं और इसीलिए वह गंगाजी प्रधानता को प्राप्त हुई हैं ।४।'

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिपः कलानां

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नान्यामिद कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेकभीष्टे
त्वन्तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या ।।५

"जैसे कलावन्त चन्द्रमा कुमुदिनि को आनन्द देते हैं और किसी को नहीं अथवा सूर्य भी केवल कमल का ही आनन्द-वर्द्धन करते हैं अन्य किसी का नहीं करते । जिस प्रकार एक द्रव्य के आनन्द-वर्द्धन को एक-एक द्रव्य ही निर्दिष्ट हैं, वैसे ही इस सम्पूर्ण विश्व को एक तुम्हीं अपनी दृष्टि से आनन्द प्रदान करती हो ।५।'

आद्याप्यशेषजगतां नवयौवनासि
शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि ।
त्रय्याः द्रसूरपि तया न समीक्षितासि ।
ध्येयापि गौरि मनसौ न पथि स्थितासि ।।६

हे माता ! सबकी आद्या होकर भी तुम नवयुवती ही हो । पर्वत-राज की पुत्री होकर भी तुम अत्यन्त कोमलांगी हो । जो वेद तुम से प्रकट हुए हैं, वे तुम्हारा तत्व निरूपण करने में असमथ हैं । भगवती ! तुम ध्यान-गम्या होते हुए भी मन में अवस्थित नहीं हो पातीं ।६।

असाध्य जन्म मनुजेषु चिराछुरापं
तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्प्रियाणाम् ।
नाभ्यर्च्चयन्ति जगतां जनयित्री ये त्वां
निः श्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ।।७

'इस असाध्य मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर भी और इन्द्रियों के विभिन्न सामर्थ्य को पाकर भी जो मनुष्य तुम्हारी पूजा नहीं करते, हे माता ! वे मुक्ति की सीढ़ियों पर चढ़ भी जाय, तो वहाँ से पुनः गिर जाते हैं ।७।'

कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन
ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुजातगन्धैः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आराध्यन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वाँ
ते खल्वशेषभुवनादि भवं प्रथन्ते ॥८

'हे माता ! कर्पूर चूर्ण मिले ठण्डे जल में घिसे हुए चन्दन और श्रेष्ठ सुगन्ध वाले पुष्पों के द्वारा उत्कण्ठित मनोभाव से तुम्हारी आराधना करते हैं वे मनुष्य सब भुवनों के स्वामी होते हैं ।८।'

आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे ।
सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती ।
पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ॥९

हे माता ! तुम मूलाधार कमल में शयन करते हुए सर्पराज के समान विराजती हुई जगत की रचना करती हो और वहाँ से विद्युत रेखाओं के समान क्रमानुसार ऊर्ध्व स्थित पंच दल कमल को भेदकर सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य में स्थित परम शिव सहित मिलती हो ।९।

तन्निर्गतामृतरसैरभिषिच्य गात्रं
मार्गेण तेन विलयं पुनरप्यवाप्ता ।
येषा हृदि स्फुरति जातु न ते भवेयु-
र्मातर्महेश्वर कुटुम्बिनि गर्भभाजः ॥१०

'हे माता ! तुम सहस्रदल कमल से निकलते हुए सुधारस से देह को अभिषिक्त करती हुई सुषुम्ना के मार्ग में जाकर लीन हो जाती हो। जिस मनुष्य के हृदय पद्म में तुम्हारा उदय नहीं होता, वह मनुष्य बारम्बार गर्भ धारण कर दुःख उठाता है ।१०।

आलाम्बिकुन्तलभरामभिरामबक्त्रा-
मापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूत्रकलशालिखिताढ्यहस्तां
मातर्नमामि मनसा तव गौरिमूर्तिम् ॥११

'हे माता ! तुम्हारे केश लम्बे हैं, तुम्हारा मुख अत्यन्त रमणीक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे, उन्नत वक्ष, पतली कमर और चार भुजाओं से युक्त हो। उन भुजाओं में ज्ञानमुद्रा, जप माला, कलश, और पुस्तक सुशोभित हैं। हे देवी ! तुम्हारे गौरी स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं।११।'

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषटक-
मावध्य चेन्द्रियगण मनसिप्रसन्नं ।
पाशांकुशाभयवराढ्यकरा सुवक्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् ।।१२

हे भुवनेश्वरी ! योग का अवलम्बन करने वाले योगी कामादि वैरियों को जीत कर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक प्रफुल्लित मन से पांशाकुश, अभय वर युक्त तुम मनोहारिणी का दर्शन करते हैं।१२।'

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि
रवतितामृतघटैरभिषिच्यमाना ।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्तो
पद्मापि साभयकरा भवसि त्वमेव ।।१३

'हे जननि ! तप्त स्वर्ण के समान वर्णवाली, हाथों में पद्म और दो हाथों में अभय एवं वर मुद्रा धारिणी चार हाथी, जिनका जल पूर्ण घट से अभिषेक करते हैं, वह देवी रूपिणी लक्ष्मी तुम्हीं हो।१३।'

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षान्
न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि भवानिदुर्गे ।।१४

'हे भगवती ! सिंह पर आरोहण कर विभिन्न शस्त्रास्त्र युक्त आठ हाथों में सुशोभित दूर्वादल के समान उज्वल वर्ण वाली, देवताओं को भी जीत लेने वाली दुर्गा तुम्हीं हो।१४।'

आविर्निदाघजलशीकर शोभिवक्रां
गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रत्नांशुकामसितकान्तिमलंकृतान्त्वा
माद्यां पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मरामि ॥१५

श्रम बिन्दुओं के द्वारा जिनका मुख-मण्डल सुशोभित है, जिन्होंने चौंटली का हार धारण किया हुआ है, पत्रावली जिनके वस्त्र रूप हैं, उन्हीं श्याम वर्ण वाली आद्या पुलिंद तरुणी काली का मैं ध्यान करता हूँ ।१५।'

हसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरकृष्ट-
नूतौं रिवाप्तवचनैरनुगम्यमानौ ।
पद्माविवोर्ध्वमुखरूढसुजातनालौ
श्रीकण्ठपत्नि शिरसैव दधे तवांध्री ॥१६

हे नीलकण्ठप्रिये ! नूपुर के शब्द को सुनकर जैसे हंस दूर से खिंचे चले आते हैं वैसे ही सब शास्त्र तुम्हारे पद पद्मों का अनुगमन करते हैं। तुम्हारे वे पद पद्म सुन्दर नील कमल के समान सुशोभित हैं, जिन्हें मैं अपने शिर पर सदा धारण करता हूँ ।१६।

द्वाभ्यां समीक्षिततुमतृप्तिमितेन दृग्भ्या
मुत्पाद्यता त्रिनयने वृषकेतनेन ।
सान्द्रानुरागभवनेन निरीक्ष्यमाणे
जंघे उभे अपि भवानि तवानतोऽस्मि ॥१७

वृषकेतु भगवान शंकर अपने दो नेत्रों से तुम्हारे रूप का अवलोकन करते हुए तृप्ति को न प्राप्त होकर ही मानो तीसरे को प्रकट कर रूप दर्शन करते हैं अतः मैं तुम्हारे जानुओं को नमस्कार करता हूँ ।१७।

कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधारा
शोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौं किल दीर्घपाशौ
मातर्मम स्मृतिपथं न विलंघयेताम् ॥१८

'हे माता ! तुम्हारे दोनों हाथ देखने पर अनुमान होता है कि काम-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देव ने ही अपने शत्रु स्वरूप शंकर का कण्ठ पकड़ने के निमित्त दीर्घ पाश की रचना की हो। मैं तुम्हारे उन दोनों हाथों को कभी भी न भूलूँ।१८।'

नात्यायतं रचितकम्बुविलासचौर्य्ये
भूषाभरेण विविधेन विराजमानाम्।
कण्ठं मनोहरगुण गिरिराजकन्ये
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ॥१६

'हे पार्वती ! तुम विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो। तुम्हारा कण्ठ अत्यन्त मनोहर है। मैं उसका ध्यान करता हुआ कभी भी तृप्त न होऊँ।१६।'

अत्यायताक्षमभिजातललापट्टं
मन्दस्मितेन वरफुल्लकपोलरेखम्।
बिम्बाधर वन्दमुन्नतदीर्घ नासं
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः ॥२०

'हे जननि ! तुम्हारे मुख मण्डल पर सुन्दर और विस्तृत नयन सुशोभित हैं। तुम्हारा ललाट अत्यन्त रमणीय दृष्टिगत होता है। मृदु हास्य के कारण कपोल भी प्रफुल्लित हैं। बिम्ब के समान अधर और उन्नत तथा लम्बी नासिका शोभा पा रही है। जो तुम्हारे ऐसे मुख मण्डल का ध्यान करते हैं, उनका जन्म धन्य है।२०।'

श्रुतिसुरचितपाकं धीमतां स्तोत्रमेतत्।
पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ॥
न भवति पदमुच्चैः सम्पदां पादनम्रः।
क्षितिपमुकुटलक्ष्मी लक्षणानां चिराय ॥२१

'जो व्यक्ति मेधावी जनों द्वारा रचित इस सुन्दर स्तोत्र को आर्द्र अन्तरात्मा द्वारा नित्य पढ़ते हैं, सभी सम्प्रदायें उनकी आश्रित होती हैं और राजा भी उनके चरणों में शिर झुकाते हैं।२१।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या–

५–छिन्नमस्ता

भगवती छिन्नमस्ता के एकनिष्ठ साधकों में जहाँ योगी, ऋषि रहे हैं वहाँ असुरों की भी वह आराधिका रही हैं। योगियों पें गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ का नाम उल्लेखनीय है। ऋषियों में याज्ञवल्क्य का नाम सबसे ऊपर आता है। इन्होने जनक की सभा में शाकल्य का मस्तक इसी शक्ति से काटा था। भगवान परशुराम भी भगवती के उपासक थे। असुरों में हिरण्यकशिपु और वैरोचन का नाम आता है। जिन्होंने भगवती की साधना से महान् शक्तियाँ उपलब्ध की थीं। भगवान बुद्ध भी उसके उपासक बताये जाते हैं। 'देवी भगवती' की हयग्रीव विद्या और वृहदारण्यक' की मधु विद्या यही है। भगवती धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी प्रकार के फल प्रदान करती है। उसे जैसे भाव से पूजा जाये, वैसा ही फल प्राप्त होता है। इसलिए असुरों और ऋषियों दोनों की आराध्य रही हैं।

विपरिणमान विश्व का अधिष्ठाता चेतन कबन्ध शिव माना जाता है, उसकी महाशक्ति छिन्नमस्ता है।

छिन्नमस्ता सृष्टि प्रक्रिया से सम्वन्धित है। सूर्य जगत का मूल कारण है श्रुति कहती है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुश्च।

(यजुर्वेद)

सूर्य जगत का आत्मा है। उससे सृष्टि संचालित होती है। उसके अभाव से यह सब विश्व की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाये। इसी लिये इसे यज्ञ पुरुष कहा गया है। 'सूर्यो वा ज्योतिष्टोम, सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्।'

सूर्य की दो शक्तियाँ हैं। एक का उससे घनिष्ठता पूर्वक सम्पर्क रहता है और दूसरी उससे अलग होकर विश्व का निर्माण व पालन-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पोषण करती है। जो सूर्य से अपृथक रहती हैं, उसे वैदिक भाषा में 'ब्रह्मोदन' कहते हैं और जो पृथक होकर जगत की सृष्टि करती है, उसे 'प्रवर्ग्य' नाम दिया गया है। सूर्य अग्नि का महापिण्ड है। जो अग्नि सदैव उसका एक अङ्ग बनी रहती है, जो किरणों के माध्यम से चारों ओर वरसती है। वनस्पतियों व अन्य प्राणियों में प्रविष्ट होकर उसमें प्राण-शक्ति का सञ्चार करती है, वह प्रवर्ग्य कहलाती है। उन दोनों को वैदिक भापा में सूर्य पुरुप के दो मस्तक कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण ३।७ में सूर्य पुरुप को द्वेशीर्ये कहा गया है।

विश्व-निर्माण के लिए प्रवर्ज्य शक्ति आवश्यक है। यदि वह संकोच करे तो जगत का निर्माण खतरे में पड़ जाय। वह ऐसा नहीं करता। इसलिए उसे यज्ञ रूप कहा गया है। यह प्रर्वज्य मार्ग सूर्य से अलग होता रहता है, कटता रहता है, इसलिये कटा मस्तक की संज्ञा दी गई है। इसे ही 'छिन्न शीर्ष' कहते हैं, कहते हैं, छिन्नशीर्पो वै यज्ञः। इस छिन्न शीर्ष को 'कवन्ध' भी कहते हैं। इसकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' है।

महिमा—

श्री भैरव तन्त्र में छिन्नमस्तों की उपासना से लौकिक और पारलौकिक सिद्धियों की प्राप्त का वर्णन है—

प्रचण्डचण्डिकां वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण सदाशिवो भदेन्नरः॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनोधनवान् भवेत्।
कवित्वं दीर्घपाण्डित्यं लभते नात्र संशयः॥

अर्थात्—'प्रचण्ड चण्डिका श्री छिन्नमस्ता के सम्बन्ध में कहते हैं, जिनकी उपासना से सब काम फलप्रद होते हैं, साधक स्वयं, सदाशिव बन जाता है, अपुत्रों को पुत्र और धनहीन को धन प्राप्त होता है। कविता शक्ति और पाडित्य शक्ति का विकास होता है, इसमें कुछ भी 'संशय नहीं।'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'उमासहस्रम्' नामक काव्य में छिन्नमस्ता भगवती की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

तव छिन्नं शीर्षं विदुरखिलाधाश्यगमविदो ।
मनुष्याणामस्ते बहुलतपसा द्विदलिते ।।
सुषुम्नायां नाढ्यां तनुकरणसम्पर्करहिता वहिः ।
शक्तया युक्ता विगत चिरनिद्रा विलसनि ।।

अर्थात् 'आपके छिन्न शीर्ष को हे अखिलधात्रि ! आगम के ज्ञाता मनीषी लोग जानते हैं। मनुष्यों के अत्यधिक तप से जो विचलित होता है उसमें और सुषुम्ना नाड़ी में तदनुकरण के सम्पर्क से बाहर शक्ति से युक्त विगत चिर निन्द्रा विचलित होता है—चिर निद्रा से रहित होकर आप शोभा को प्राप्त होती हैं।

गोरक्ष-संहिता में योगीराज गोरखनाथ ने भगवती की वन्दना इस प्रकार की है—

नाभौ शुभ्रारविन्द तदुपरि विमम मण्डल चण्ड-
रश्मे । संसारस्यैकरूपां त्रिभुवनजननीं धर्मदात्रीं नरा-
णाम् । तस्मिन् मध्ये त्रिमार्गे त्रितयतनुधरां छिन्नमस्तां
प्रशस्तां । तां वन्दे ज्ञानरूपां मरणभयहरां योगिनीं योग
मुद्राम् ।। (गो० प० २।७६)

अर्थात् नाभि में स्फटिक वर्ण कमल पर अधिष्ठित पवित्र सूर्य मंडल का चिन्तन करता हुआ, जगत् की त्रिभुवन-जननी, धर्म-दात्री, दयामूर्ति, प्रशस्ता, ज्ञान रूपा, मरण भय का हरण करने वाली योगमुद्रा, योगिनी छिन्नमस्ता देवी को मैं वन्दना करता हूँ।

ध्यानम्

छिन्नमस्ता भगवती का ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालीढपदां सदैव दधती छिन्नं शिरः कतृकां ।
दिगवस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिवत्तीं मुद्रा ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नागाबद्धशिरोमणि त्रिनयनाँ हृद्यु त्पलालङ्कृता ।
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम् ।।
दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्री तथा खर्प्परं ।
हस्ताभ्याँ दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी ।।
देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धाराँ पिवन्ती मुदा ।
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः ।
प्रत्यालीढपदा कबन्धविगलद्रक्तं पिबन्ती मुदा ।
सैषा या प्रलये समस्त भुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी ।
शक्ति साहि परात्परा भगवती नाम्नां परा डाकिनी ।।
(शक्ति प्रमोद छिन्नमस्तातन्त्र)

अर्थात् 'प्रत्यलीड़ पद वाली छिन्न शिर और खड्ग धारिणी, दिगम्बरा, छिन्न कण्ठ से निकलते हुए रक्त का पान करती हुई, मस्तक में सर्प से बंधी हुई मणि, तीन नेत्र कमल माल से अलंकृत वक्षस्थल, जावाकुसुम के समान वर्ण वाली, दाहिने भाग में श्वेत वर्ण, मुक्त केशी कैंची और खर्पर धारिणी वर्णिनी देवी है। यह गले से निकलने वाली रक्त धारा का पान करती हुई, मस्तक में नाग से बंधी मणि वाली, बाँये भाग में भङ्ग और खर्पर धारण किये श्याम वर्ण की दूसरी देवी हैं, यह भी गले से निकले रुधिर को पीती है दाँये पाँव को आगे किए और बाँये पांव को पीछे किये स्थित है। प्रलय काल में यह सम्पूर्ण विश्व को भक्षण करने में समर्थ 'डाकिनी' नाम वाली है।'

उत्पत्ति की आलंकारिक कथा–

एक बार देवी अपनी सखियों—जया और विजया के साथ मन्दाकिनी नदी में स्नान के उद्देश्य से गयी। स्नान के पश्चात् उनमें कामाग्नि भड़क उठी। इससे उसका वर्ण कृष्ण हो गया। तभी सखियों ने भोजन की मांग की तो उन्हें कुछ समय बाद देने का आश्वासन दिया। वह क्षुधा से पीड़ित हो रहीं थी, अतः उन्होंने बार-बार माँगना शुरू किया और प्रार्थना की कि माता तो भूख लगने पर अपने बच्चों को

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवश्य भोजन देती हैं, अतः हमें भी मिलना चाहिए। भगवती ने कराग्र से अपना शिर काट डाला। उससे रक्त की तीन धारायें निकली। दो धारायें तो जया और विजया (जिन्हें डाकिन और वर्षिनी भी कहते हैं। के मुख में जाने लगी। तीसरी धारा भगवती अपने कटे हुए शिर से पीने लगीं। तभी से भगवती छिन्नमस्ता कहलाती हैं। इस तरह की और भी कथायें उपलब्ध होती हैं।

स्पष्टीकरण–

इस अलङ्कारिक कथा का सम्बन्ध योग साधना से है। योगशास्त्र में तीन सूक्ष्म वन्धनों का वर्णन आता है, जिन्हें यौगिक भाषा में ग्रन्थियों के नाम से अभिहित किया गया है। उनके नाम हैं—रुद्र ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, ब्रह्म ग्रन्थि। यह तीन ग्रन्थियाँ जब सुप्तावस्था में रहती हैं, तब तक जीव साधारण दीन हीन दशा में पड़ा रहता है, उसे अंशक्ति अज्ञान और अभाव के दुःख वने ही रहते हैं, परन्तु जब यह ग्रन्थियाँ खुलने लगती हैं, तो लौकिक व पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ उसके समक्ष नतमस्तक होकर उपस्थित हो जाती हैं, आत्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है क्षुद्रता महानता में परिवर्तित होने लगतीं हैं, द्वैत से अद्वैत की ओर मार्ग खुल जाता है।

रुद्र ग्रन्थि आज्ञा—चक्र में, ब्रह्म ग्रन्थि मूलाधार में व विष्णु ग्रन्थि मणिपूर में अवस्थित है। योगियों का मत है कि विष्णु और ब्रह्म ग्रन्थियों के खुलने पर भी यह अहङ्कार दूर न हो पाया तो रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है, इसलिए इसका खुलना अत्यन्त आवश्यक होता है। तभी आवागमन के चक्र से छुटकारा सम्भव है। योग शास्त्र के इस मार्ग का सबसे वड़ा बाधक काम तत्व को माना है। तभी भगवती को कामाग्नि से पीड़ित होकर कृष्ण वर्ण का होना प्रदर्शित किया गया है। भगवती के ध्यान में इसका आभास मिलता है।

अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीं।
रतिकामोपविष्टां च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिणः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विपरीतरतासक्तौ ध्यायेद्रतिमनो भुवौ ॥

अर्थात्—हड्डियों की माला को धारण करने वाली—नागों के यज्ञोपवीत वाली—रतिकाम में उपविष्टा देवी का मन्त्र के ज्ञाता सदा ध्यान किया करते हैं। विपरीत रति में समासक्त रति और कामदेव का ध्यान करना चाहिए।

योगियों का विश्वास है कि मणिपुर चक्र के बीच की नाड़ियों में काम का निवास रहता है। इसी पर छिन्नमस्ता भगवती का अधिष्ठान है। वह काम के निम्नगामी प्रवाह को रोकती है। उसकी दशा को मोड़ती है और ऊर्ध्वगामी बनती है। जब तक काम का प्रवाह नीचे की ओर होता रहता है, तभी तक रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है। तब वह ऊपर की ओर प्रवाहित होने लगता है, तव उसका मार्ग प्रशस्त होता है और साधक पूर्णता की ओर पग बढ़ाने की क्षमता वाला हो जाता है।

भगवती छिन्नमस्ता चाहती है कि काम तत्व को नियन्त्रण में करके मुक्ति मार्ग के तीन बन्धनों को खोलता हुआ साधक अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचे।

छिन्नमस्ता-पूजन-विधि-मन्त्र

विश्वसार और रुद्रयामल तन्त्रों में चिन्नमस्ता देवी का षोडशाक्षर इस प्रकार लिखा है—

श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा।

यह समस्त कार्यों में मंगल कारक माना जाता है।

क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा।

पत्नी को अनुकूल करने का मन्त्र है—

ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा।

पापों के नाश का मन्त्र है—

ऐं श्रीं क्लीं ह्रीं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा।

मुक्ति पथ प्रशस्त करने वाला मन्त्र है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—
ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं हुं फट्
औं ह्रीं ह्रीं वज्रवरोचनीये हुँ फट् स्वाहा ।
हूँ
हूँ स्वाहा
ॐ हूँ स्वाहा
उँ वज्रवैरोचनीये हुं हुँ फट् स्वाहा ।
श्रीं ह्रीं हुँ ऐं वज्रवैरोचनीये हूँ हूँ फट् स्वाहा ।
ह्रीं श्रीं हुं ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।
हुँ श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूँ हूँ फट् स्वाहा ।
ऐं श्रीं ह्रीं हुँ वज्रवैंरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।
वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।
ह्रीं श्रीं हुँ ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा श्रीं
हुँ श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा हुँ ।
ऐं श्रीं ह्रीं हुँ वज्रवैरोचिनीये हुँ हुँ फट् वा ऐं ।
ॐ श्रीं ह्रीं हुँ वज्रवैरोचनीये श्रीं हुँ हुँ फट् स्वाहा ।
उँ श्रीं ह्रीं हुँ ऐं वज्रवैरोचिनीये श्रों ह्रीं ऐं फट् स्वाहा ।

अथ बहिर्मातृकान्यासः

विनियोग—

अस्य श्री बहिर्मातृका मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः श्री मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि । स्वराः सत्कयोऽव्यक्तं कीलकं देहशुद्धिसिध्यर्थं विनियोगः ।

ऋष्यादि व्यासः

ओं ब्रह्मणे नमः शिरसि ।
ओं गायत्री छन्द से नमः मुखे ।
औं मातृका सरस्वती देवतायै नमः हृदिः
ओं हलभ्यो नमः गुह्ये ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं स्वरेभ्यो नमः पादयो।
औं अव्यक्तकीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यासः

ओं अं कं खं गं घं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ओं इं चं छं जं झं ञं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ओं उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।
ओं एं त थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुँ।
औं ओं पं फं वं भं औ।
ओं अं यं रं लं वं शं षं हं लं क्ष अः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।
कंठे धूम्रवर्णे षोणशदले विशुद्धे—ओं अ नमः।

ओं आं नमः ओं इं नमः। ओं ई नमः। ओं उं नमः। ओं ऊं नमः ओ ऋं नमः ओं ॠं नमः। ओं लृं-नमः ओं लॄं नमः। ओं एं नमः ओं ए नमः ओं ओं-नमः ओ औं नमः ओं अं नमः। ओं अः नमः।

हृदये रक्तवर्णे द्वादशदले अनाहते—औ कं नमः। ओं खे नमः। ओं गं नमः। ओं घं नमः। ओं ङं नमः। ओं चं नमः। ओं छं नमः। ओं जं नमः। ओं झ नमः ओं ञं नमः। ओ टं नमः। ओं ठं नमः।

नाभौ मेघवर्णे दशदले मणिपूरे—ओं डं नमः। ओं ढं नमः। ओं णं नमः। ओं तं नमः। ओं थं नमः ओं दं नमः। ओं धं नमः। ओं नं नमः। औ पं नमः। ओं फं नमः।

लिङ्गमूले विद्युद्वर्णे षटदले स्वाधिष्ठाने ओं ब नमः ओं भ नमः। ओं मं नमः। ओं वं नसः। ओं रं नमः। ओं ल नमः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुवर्णे चतुर्दले मूलाधारे—ओं वं नमः ओं शं नमः ओं षं नमः। ओं सं नमः।

भ्रूमध्ये श्वेतवर्णे द्विदले आज्ञाचक्रे—ह्रों हं तमः ओं क्षं नमः।

अव शरीर के बाहरी अङ्गों में मातृका वर्णों का न्यास करता पहले बाह्यमातृका सरस्वती का ध्यान किया जाय। यथा—

पञ्चाशल्लिपिर्विभक्तिमुखदोः पन्मध्यवक्षस्थलां।
भास्वन्मौलिनिबद्धशकलानापीनतुङ्गस्तनीम्॥
मुद्रामक्षगुण सुधाढचकलशं विद्यां च हस्त म्बुजै-
विभ्राणा दिदशप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये।

इस प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

ओं अं नमः शिरसि। ओं आं नमः मुख वृत्ते। ओं इं नमः दक्ष नेत्रे। ओं ईं नमः वाम नेत्रे। ओं उं नमः दक्ष कर्णे। ओं ऊं नमः बाम कर्णे। ओं ऋं

नमः दक्ष नासायाम्। ओं ॠं नमः वाम नासायाम्। ओं लृं नमः दक्ष गण्डे। औं लृ नमः वाम गण्डे। ओं ऐं नमः ऊर्ध्वं ओष्ठे। ओं ऐं नमः अधौओष्ठे। ओं ओं ओं नमः ऊर्ध्वं दन पंक्तो। ओं औं नमः अधौ दन्तपंक्तौ। ओं अं नमः ब्रह्मरन्ध्रे। ओ अः नमः मुखे।

ओं कं नमः दक्ष बाहुमूले। ओं खं नमः दक्ष कूर्परे। ओं गं नमः दक्ष णिवन्ने ओं घं नमूः दक्ष अंगुलिमूले। ओं ङं नमः दक्ष कराग्रे। ओं चं नमः वाम बाहुमले। ओं छं नमः वाम कूर्परे। ओ जं नमः वाम मणिबन्धे ओं झं नमः वामः अंगुलिमूले ओं ञं नमः वाम कराग्रे। ओं टं नमः दक्षोरु मूले। ओ ठं नमः दक्ष जानुनि ओं डं नमः गुल्फे। ओं ढ नमः दक्षं पादतले। णं नमः दक्ष पादाग्रे। ओं तं नमः वामोरु मूले। ओं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थं नमः वाम जानुनि । ओं दं नमः वाम गुल्फे । ओं धं नमः वाम पादतले । ओं नं नमः वामः पादग्रे । ओं पं नमः दक्ष पार्श्वे । ओं फ नमः वामः पार्श्वे । ओं ब नमः पृष्ठे । ओं भं नमः नाभौ । ओं मं नमः जठरे । ओं यं त्वगात्मने नमः हृदि । ओं रं नमः दक्षांशे । ओं ल नमः ककुदि । ओं वं नमः वामांशे । ओं नमः हृदादि दश करांगुल्यन्तम् ओं षं नमः हृदादि नाम करांगुल्यन्तम् । ओं सं नमः नाश्यादि वाम पादान्तम् । ओं लं नमः हृदादि कुक्षौ । ओं क्षं नमः हृदादि मुखे ।

वीज न्यास

श्रीं मुखे ह्लीं, दक्ष नासापुटे हूँ, वामनासापुटे ऐं दक्ष नेत्रे क्लीं, वाम नेत्रे श्रीं ह्लीं क्लीं दक्षकर्णे एँ वाम कर्णे हूँ नाभौं की हृदये कौं शिरसि ।

ध्यानम्

नाभि में इस तरह ध्यान करना चाहिये—

स्व नाभौ नीरज ध्यायेदर्धं विकसितंसित ।
तत्पद्मकोषमध्ये मण्डल-चण्रोचिषः ॥
जपाकुसुमसंङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभं ।
रजः सत्वतमो रेखायोनिमण्डलमण्डितम् ॥
मध्ये तु तां महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ॥
प्रसारिता मुखी भीमां लेलिहानाग्रजिह्वकां ।
पिबन्तीं रौधरीं धारा निजकण्ठविनिर्गतां ॥
विकीर्णकेशपाशाञ्च नानापुष्पसमन्विताम् ।
दक्षिणे च करे कर्त्री मुण्डमालविभूषिताम् ॥
दिगम्वरा महाघोरां प्रत्यालीढपदस्थिताम् ।
अस्थिमालाधरां देवि नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रतिकामोपविष्टां च सदा ध्यायति मंत्रिण: ।
सदा षोडशवर्षीया पीनोन्नतपयोधराम् ।

छिन्नमस्ता के दायें ओर स्थित वर्णिनी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करे ।

वर्णिनीं लौहितां सौम्याम् मुण्डकेशीं दिगम्बरां ।
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।।
नागयज्ञोंपवीतङ्गी कत्रिभपरहस्तकाम् ।।
मदा द्वादशवर्षीयां मुण्डमालाविभूषिताम् ।।

फिर बाँयीं ओर स्थित डाकिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये ।

डाकिनीं वामपार्श्वे तु कल्पान्तदहनोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयना दन्तपंक्तिवलीचिनीम् ।।
दष्ट्रा करालवदनाँ पीनोन्नतपयोधिराम् ।
महादेवीं महाघोराँ मुक्तकेशी दिगम्बराम् ।।
लेलिहानमहाजिह्वाँ मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्ताँ सदाभीषणरूपिणीम् ।
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
नाभौ शुद्धारविन्दं तदुपरि कमलमण्डलं चण्डरश्मे: ।
संसारस्यैकसारां त्रिभुवनजननीं धर्मकामोदयाढ्याँ ।।
तस्मिन् मध्ये त्रिकोणे त्रितयतनुधरां छिनस्तां प्रशस्ताँ ।
ताँ वन्दे ज्ञानरूपाँ निखिलभयहर: योगिनाँ योगमुद्रा ।।

छिन्नमस्ता कवच

हुँ बीजात्मिका देवी मुण्डकर्तृधरापरा ।
हृदय पातु सा देवी वर्णिनी डाकिनींयुता ।१

वर्णिनी डाकिनी युक्त मुण्डकर्ता को धारण करने वाली हुँ । बीजात्मिका देवी मेरे हृदय की रक्षा करे ।' ।१।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्री ह्रीं हुं ऐं चैव देवी पूर्वस्यां पातु सर्वदा ।
सर्वाङ्ग में सदा पातु छिन्नमस्ता महाबला ॥२

'श्री, ह्रीं हुं ऐं बीजात्मका देवी पूर्व दिशा में तथा महावला छिन्नमस्ता मेरे देह के सम्पूर्ण अङ्गों की रक्षा करें ।२।

वज्रवैरोचनीये हुं फट् बीजसमन्विता ।
उत्तरस्यां तथाग्नौ च वारुणे नैर्ऋतेऽवतु ॥३

'वज्र वैरोचनीये हुं फट्, इस बीज से समन्विता देवी उत्तर' आग्नेय आग्नेय वारुण और नैऋत्य इन दिशाओं में मेरी रक्षा करने वाली हों ।, ।३।

इन्द्राक्षी भैरवी चैवासितांगीं च संहारिणी ।
सर्वदा पातु मां देवी चान्यान्यासु हि दिक्षु वै ।४

'इन्द्राक्षी, भैरवी, असितांगी और संहारिणी देवी सब दिशाओं में मेरी रक्षा करे ।४।'

६—भैरवी

दक्षिणमूर्ति काल भैरव की महाशक्ति भैरव है । काल भैरव की विशेषता उसके नाम से ही स्पष्ट है । वे विनाश करते हैं । जिस तरह छिन्नमस्ता का सम्बन्ध महाप्रलय से है, उसी तरह काम भैरव नित्य प्रलय का अधिष्ठाता है, यह हर समय वस्तुओं का नाश करता रहता है । अतः 'यम' नाम पड़ा । मय को दक्षिण दिशा का लोकपाल माना जाता है क्योंकि यमाग्नि इसी दिशा में अवस्थित रहती है । इसीलिए इसका नाम दक्षिणजामूर्ति पड़ा । इनकी महाशक्ति त्रिपुरा भैरवी है । यह तीनों भुवनों के हर समय विनाश में संलग्न रहती है । 'त्रिपुर सुन्दरी' का कार्य उनकी रक्षा करना है ।

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमा शिरोमालिकां ।
रक्तालिप्तपयोधरां जपपटीं विद्यामभीतिंवरम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रयं ।
देवीं वद्धहिमांशुरत्नमुकुटा वन्दे समन्दस्मिताम् ॥

अर्थात्—'उदय होने वाले हजारों सूत्रों के समान अरुण कान्ति वाली क्षौमाम्वर को धारण किये मुण्डमाला पहने हैं। उनके पयोधर रक्त से लिप्त हैं त्रिनेत्रा हैं, हिमांशुबद्ध मुकुट को धारण किए हुए हैं, हाथ में जपपटी विद्या, वर और अभय मुद्रा है।'

त्रिपुर भैरवी प्रतिणक्ष विनाश ही करती रहती है, सारे विश्व में यह प्रक्रिया चल रही है। परन्तु साथ ही साथ निर्माण की शक्तियाँ भी अपना कार्य सुचारु रूप से कर रहीं हैं। पिंड और ब्रह्माण्ड दोनों में विनाश और निर्माण के दोनों विरोधी कार्य हर क्षण होते रहते हैं। हमारे शरीर में भी परमाणुओं के विनाश का कार्य निरन्तर चलता रहता है परन्तु निर्माण कार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि विनाश का अनुभव नहीं होने पाता। जब तक निर्माण विनाश पर अपना प्रभुत्व जमाए रहता है, तब तक, स्वास्थ्य सुदृढ़ बना रहता है, परन्तु जब विनाश की गति बढ़ जाती है और निर्माण कार्य शिथिल हो जाता है, उस स्थिति में तो शरीर रोगी, निर्बल और विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। जब निर्माण कार्य बिल्कुल वन्द हो जाता है, तभी मृत्यु हो जाती है। यदि हमें जीवित रहना है तो निर्माण की गति को बनाए रखना होना, वैसे ही उपायों को अपनाना होगा, स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना होगा। विनाश के साधनों को रोकना होगा, सिगरेट, बीड़ी, शराब मांस जैसे तामसिक भोजन विनाश के परमाणुओं के सहायक सिद्ध होते हैं। मिठाई, चाट-पकौड़ी, तले पदार्थ, रबड़ी आदि राजसिक पदार्थ भी पेट को खराब करते हैं और नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति कारण बनते हैं। अश्लील कहानी, उपन्यास व चलचित्रों से काम-तत्व का जागरण होता है भोग की लिप्सा बढती है, वीर्य का क्षय होता है यह विनाश के सशक्त साधन हैं—क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मस्तिष्क की नसें जलती है। इन पर ही सारे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर रहता है। विकृत विचारों से स्वास्थ्य भी विकृत होता है।

यह तत्व त्रिपुर भैरवी के कार्यों में हाथ बटाते हैं। विनाश से बचने के लिए इनके कुप्रभावों से बचना होगा अपने निर्माण की गति-विधियो को तीव्र करना होगा तभी शरीर को स्थिर रखना संभव होता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में साधक को यदि नित्य होने वाले विनाश का ध्यान रहे तो वह पापों, बुराइयों कुप्रवृत्तियों से बचा रहेगा। आत्मिक उन्नति चाहने वाले के लिए यह ध्यान आवश्यक है।

।। भैरवी पूजन विधि ।।

भैरवी के अनेक भेद हैं जैसे त्रिपुर भैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेश भैरवी, सकल सिद्धदा भैरवी, भय विध्वसिती भैरवी, चैतन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, षटकूटा भैरवी नित्या भैरवी। इनके विधान में कुछ-कुछ अन्तर है।

त्रिपुर भैरवी का मन्त्र है—'हस्रौं हस्कलरीं हस्रौः'

ध्यान इस प्रकार—

पद्ममष्टदलोपेतं नवयोनिमय कर्णिकम्।
चतुर्द्वार- समायुक्तं भूगृह विलिखेत्ततः।।

जव योनि मय कर्णिका अङ्कित कर उनके बाहर अष्टदल कमल और उससे भी बाहर चतुर्द्वार और भू ग्रह बनावे। यह भैरवी पूजा मन्त्र है।

दीक्षां प्राप्य जपेन्मंत्रं दश लक्षं जितेन्द्रियः।
पुष्पैर्द्वादश सहस्राणि जुहुयाद् व्रह्मवृक्षजैः।।

जितेन्द्रिय रहता हुआ दीक्षा प्राप्त साधक दश लाख मन्त्र जपे और ढाक के फूलों द्वारा बाहर हजार आहुतियाँ दे।'

भैरवी कवचस्यास्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च भैरवी भयनाशिनी।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनयोगः प्रकीर्त्तितः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द, अनुष्टुप् देवता भय-नाशिनी भैरवी और विनीयोग धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति में है ।१।

हसरैं मे शिरः पातु भैरवी भयानाशिनी ।
हसकलरी नेत्रञ्च हसरौश्च ललाटकम् ।
कुमारी सर्वांगात्रे च वाराही उत्तरे तथा ।।
पूर्व्वे च वैष्णवी देवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।
दिग्विदिक्षु सर्वत्रैव भैरवी सर्वदावतु ।।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद्देविभैरवीम् ।
कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ।

हसरैं मेरे मस्तक की, हसकलरीं नेत्रों की, हसरौ ललाट की ओर कुमारी मेरे गोत्र की रक्षा करे। उत्तर में बाराही पूर्व में वैष्णवी, दक्षिण में इन्द्राणी तथा सभी दिशा विदिशा में भैरवी मेरी रक्षा करे। इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मन्त्र का जप करता है, वह सौ करोड़ कल्प में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।' ।२।

७—धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवर्णा चंचला दुष्टा दोर्घा क मलिनाम्बरा ।
विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा वि ला द्वज ।।
कार्कध्वजरथारूढ़ा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ।।
प्रवृद्धघोणा तु भृश कुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासाछिवा नित्यं भयदा कलहास्पदा ।।

(शाक्त-प्रमोद-धूमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चलता, दुष्टा, दीर्घ तथा मलिन अम्बर वाली विधवा रूप में निवास करने वाली, काल-ध्वज वाले रथ पर आरूढ़

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लम्बे पयोधर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली: काँपते हाथ लम्बी नासिका, कुटिल स्वभाव, कुटिल नेत्र, भूख-प्यास से पीड़ित, नित्य भय-प्रद और कलह रूपिणी है।

धूमावती विधवा है। विधवा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है दुःख और दरिद्रता उसे हर समय घेरे रहते हैं। वह अपने को निःसहाय समझती हैं। निराशा उसके अङ्ग-अङ्ग से टपकती है। वह जीवन कों एक बोझ सा समझती है। मंगल पदार्थों का उपयोग उसके लिए वर्जित माना जाता है। यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो सामाजिक आलोचना की बौछार उस पर होने लगती है। वह अमंगल की प्रतिमा ही दृष्टिगोचर होती है। इसलिए विश्व अमंगला स्थिति की द्योतक धूमावती है जिसे 'अलक्ष्मी' भी कहा जाता है। वह दरिद्रता का रूप हैं। वह निर्ऋति रूपा है निर्ऋति दरिद्रता, कलह, क्लेश और रोगादि का अधिष्ठत्री है। शास्त्रकारों का मत है कि चतुर्मास में इसका प्रभुत्व रहता है जवकि देव प्राण (आरोग्य और ऐन्द्र) निर्बल हो जाते और आसुर प्राण (आप्य) सबल रहते हैं। यह काल अषाढ शुक्ला एका-दशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता है। यही कारण है कि निर्ऋति के साम्राज्य काल मे विवाहादि कोई भीं शुभ कार्य नहीं किया जाता है निर्ऋति की अन्तिम तिथि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे धार्मिक जगत् में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। क्योंकि निर्ऋति नारकीय कार्यों की सञ्चालिका हैं। इसी रोग को निर्ऋति (दरिद्रता) के जाने के दूसरे दिन लक्ष्मी का अवतरण होता है और दीपावली उत्सव मनाया जाता है।

विधि

धूमावती देवी का मन्त्र इस प्रकार है—

धूं धूं धूमावती स्वाहा

धूमावती स्तव

भद्रकाली महाकाली डमरूवाद्यकारिणीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्फारितनयना चैवटकटंकितहासिनी ।।
धूमावतीं जगत्कर्त्री शूर्पहस्ता तथैव च ।
अष्टनामात्मकं स्त्रोत्र यः पठेद्‌भक्तिसंयुतः ।।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात्सत्यं सत्य हि पार्वति ।।

भद्रकाली, महाकाली डमरू बजाने वाली, विस्फारित नयन वाली, किटकिटा कर हँसने वाली, संसार की रचयित्री धूमावती हाथ में सूप धारण किए हुए हैं, उनका यह आठ नाम वाला स्तोत्र पाठ करने से सर्वार्थ सिद्ध होता है।

धूमावती कवच

धूमावती मुखं पातु धूं धूं स्वाहास्वरूपिणी ।
ललाटे विजया पातु मालिनी नित्यसुन्दरी ।।१

घूं धूं स्वाहा स्वरूप वाली धूमावती मेरे मुख की तथा नित्य सुन्दरी मालिनी और विजया मेरे ललाट की रक्षा करें।

कल्याणी हृदयपातु हसरीं नाभिदेशके ।
सर्वाअंग पातुदेवेशी निष्कला भग-मालिना ।।२

'कल्याणी मेरे हृदय की हसरीं नाभिदेशकी और निष्कला भग-मालिनी देवी मेरे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें।

सुपुण्यं कवचं दिव्यं यः पथेद्‌भक्ति संयुतः ।
सौभाग्यमयतं प्राप्य जांते देवीतुरं ययौ ।।३

"यह कवच अत्यन्त पुण्यमय एवं दिव्य है। भक्तिपूर्वक इसका पाठ करने पर साधन इस लोक में सर्व सौभाग्य को प्राप्त करता हुआ अन्त में भगवती के लोक को प्राप्त होता है।'

८—बगलामुखी

एक वक्त्र महारुद की महाशक्ति 'बगलामुखी'। वैदिक शब्द बल्गा है। उसका विकृत आगमोक्त शब्द 'बगला है। अतः 'बल्गामुखी' को बगलामुखी, कहा जाता है। इसका सम्बन्ध प्राणी के अथवा सूत्र से

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। जिसके सहयोग से मारण, मोहन, उच्छाटन आदि के अभिचार प्रयोग किये जा सकते हैं। पुराण कथाओं के अनुसार देवता इसी के द्वारा कृत्या प्रयोग किया करते थे, नतने शत्रु-पक्षपर वे सूक्ष्म प्रहार करते थे।

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिर्वामेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्याँ द्विभुजां नमामि।

(शक्तिप्रमोद-बगलामुखी तन्त्र)

अर्थात् "शत्रु के हृदय हर आरूढ़, बाँये हाथ से शत्रु की जिह्वा को खींचकर दाँये हाथ से गदा का आक्रमण करने वाली पीताम्वर धारण किये हुए द्विभुजा बगला है। उसे नमस्कार करता हूँ।'

'मध्ये सुधाब्धि मणिमण्डपरत्नवेदी सिंहासनोप
रिगतां परिपीतवर्णाम्। पीतम्बराभरणमाल्यं विभूषि-
ताङ्गीं देवीं नमामि धृतमुद्‌गरवैरि- जिह्वाम्॥'

अर्थात् 'सुता समुद्र के बीच अवस्थित मणि मण्डप पर रत्नवेदी है, उस पर रत्न सिंहासन पर पीतवर्ण के और पीत वर्ण के आभूषण माला से विभूषित अंगों वाली बगला है, उसके एक हस्त में शत्रु जिह्वा और दूसरे में मुद्‌गर है, उस बगला देवी को नमस्कार करता हूँ।

कृत्या प्रयोग आदि का माध्यम प्राणी का 'अथर्वा सूत्र' है जिसे विकसित और सक्रिय करके काम में लाया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से यह काक और कुत्ते में अधिक विकसित मिलता है। हमें विश्वास नहीं होता है कि हमारे घर में आने वाले की पूर्व सूचना काक दे देता है। राजकीय नियन्त्रण में एक विशेष उद्‌देश्य से पोषित कुत्तों के चमत्कार तो प्रायः देखने में आते हैं जब अनेक व्यक्तियों में छिपे चोर को वह पहचान लेते हैं। जिस मार्ग में चोर जाता है उसे सूँघते हुए भी चोर के गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं यह उसकी विकसित 'अथर्वा शक्ति' का ही परिणाम है। कई बार ऐसा होता है कि सैकडों मील दूर अपने किसी परिजन के दुःख से हम आक्रान्त हो जाते हैं यह 'अथर्वा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्र' के माध्यम से होता है। इसे इस तरह की वायरलेस टेलीग्राफी भी कह सकते हैं। वह सूक्ष्म होने के कारण दृष्टि में नहीं आ सकता। अनुभव ही किया जा सकता है इसी के सहयोग से मारण प्रयोग किये जा सकते हैं।

बगला पूजन विधि

मन्त्र

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां मुख पदं स्वम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ।

बगला-गायत्री मंत्र एव विनियोग—

मन्त्र

ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्रायै विद्महे। स्तम्भनवाणायै धीमिहि तन्नो बगला प्रचोद्यात।

विनियोग

ॐ अस्या श्रीबगलागायत्रीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि:, गायत्रीछन्द: बगलानाम्नी चिन्मयशक्तिरूपिणी गायत्री देवता, ओं बीजं ह्लीं शक्ति विद्महे कीलक गायत्रींजपे विनियोग:।

संध्या विधि

आचमन मन्त्र—

ओं आत्मतत्वाय स्वाहा। ओं विद्यातत्वाय स्वाहा। ओं शिवतत्वाय स्वाहा।

शिखा-बन्धन मन्त्र

ॐ मणिधारिणी वज्रिणी मपाप्रनिसरे रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहा।

मूल मन्त्र के तिलक करके इसी से तीन बार प्राणायाम करे फिर निम्न सँकल्प करके विनियोग पढ़े।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संकल्प

देशकालौ संकीर्त्य ओमद्य श्रीबगलामुखीप्रतीये प्रातः संध्यामहं करिष्ये ।'

विनियोग

'ओमस्य श्रीबगलामुखीमहामन्त्रस्य नारद ऋषिः वृहतीच्छन्दः श्रीबगलामुखी देवता ह्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः मम सकलकामनासिद्धयर्थे जपे विनियोगः,

ऋष्यादिन्यासः

नरनऋषिये नमः शिरसि । बृहतीच्छन्दसे नमः मुखे । वगलामुखीदेवतायै नमः । हृदि । ह्लीं बीजाय नमः गुह्मे ।

स्वाहाशक्तये नमः पादयोः ।

करन्यासः

ओं ह्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । वगलामुखि तर्जनीभ्यां नमः सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां नमः । वाचं मुखं स्तम्भय अनामिकाभ्यां नमः । जिह्वां कीलय कीलय कनिष्ठकाभ्यां नमः बुद्धि विनाशाय ह्लीं ओं करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः

अङ्गन्यासः

ओं ह्लीं हृदयाय नमः वगलामुखि शिरसे स्वाहा । सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् । वाच मुख पढं स्तम्भय कवचाय हुम् । जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट् । बुद्धि विनाशय ह्लीं ओं अस्त्राय फट् ।

प्रातः काल ध्यान

उद्यदादित्यसंकाशं पुस्तकाक्षकरा स्मरेत् ।
कृष्णाजिनधरां ब्राह्मीं ध्यायेत्ताराङ्कितताम्बरे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्यान्ह का ध्यान

शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ।
त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलं च नृकरोटिकाम् ।।
सूर्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायेद् देत्री समभ्यसेत् ।।

सायंकाल ध्यान

श्यामवर्णा छतूर्बाहु णंखचक्रलसत्काराम् ।
गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम् ।
सायाह्ने वरदां देवीं गायत्री स्मरेत् हृदि ?

मार्जन

मूल मन्त्र के उच्चारण से तीन वार इष्टदेव के मस्तक पर दो वार भुजाओं पर तीन वार हृदय पर, तीन वार नाभि में और दो बार पैरों पर जल छिड़कते हुए मार्जन करे ।

कवच

ओं अस्य श्रीवगलामुखीकवचस्य नारदऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीबगलामुखी देवता लं बीजं ईं शक्तिः ऐं
कीलकम् पुरुषार्थ–चतुष्टयप्राप्तये जपे विनियोगः ।
शिरो मे बगला पातु हृदयैकाक्षरी पराः ।
औं ह्लीं ओं मे ललाटे च वगला वैरिनाशिनी ।।१
गदाहस्ता सदा पातु मुखं मे मोक्षदायिनी ।
वैजिह्वा धरा पातु कण्ठं मे बगलामुखीं ।।२
उदर–नाभिदेश च पातु नित्यं परात्परा ।
परात्परतरा पातु मन गुह्यं सुरेश्वरी ।।३
हस्तौ चैव तथा पातु पार्वती परिहातु मे ।
विवादे विषमे घोरे संग्रामे रिपुसंकटे ।।४
पीताम्बरधरा पातु सर्वाङ्ग शिवनर्तकी ।
श्रीविद्या समया पातु मातङ्गी पूजिता शिवा ।।५
पातु पुत्रं सुता चैव कलत्रं कालिका मम ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रातरं पातु नित्यं मे पितरं मूलिनी मदा ॥६
रन्ध्रे पि वंगलादेव्याः कवचं मन्ममुखोदितम् ।
नैवं देयतमुख्याय सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥७
पठनाद् धारणदस्य पूजनाद् वाञ्छितं लभेत् ।
इदं कवचज्ञात्वा यो जपेद् बगलामुखीम् ॥८
पिवन्ति शोणितं तस्य योगिन्यः प्राप्य सादराः ।
वश्ये चाकर्षणे चैव मारणे मोहने तथा ॥९
महाभये विपत्तौ च पठेद्वा पाठयेत्तु यः ।
तस्मै सर्वार्थसिद्धिः स्याद् भक्तियुक्तस्य पार्वति ॥१०

अन्तर्मातृकान्यासः

अस्य अन्तर्मातृकान्यासमन्त्रस्य ब्रह्माऋृषिः गायत्री छन्दः मातृका सरस्वती देवता हलो बीजनि स्वराः शक्तः अव्यक्तं कीलकं श्रीवालात्रिपुरागंत्वेन मम शरीरशुद्धयर्थे अन्तर्मातुकान्यासे विनियोगः ।

९—मातंगी

गुप्त साधना तन्त्र में मातंगी भगवती की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई—

अस्यविज्ञानमात्रेणपनुर्जन्मनविद्यते ।
कामतुल्यश्चनारीणांरिपूणांशमनोपमः ॥
कुवेरइवदित्ताढयोधरणीसहशक्षमः ॥

अर्थात् जिस व्यक्ति ने इस महाविद्या का विज्ञान समझ लिया, उनका पुनर्जन्म नहीं होता, वह स्त्रियों के समीप कामदेव के समान दृष्टि वाला होता है शत्रुओं के समक्ष यमराज की तरह, कुबेर की तरह धनवान होकर, पृथ्वी की तरह क्षमाशील बन जाता है ।

उद्यादित्यसंकाशांनयनत्रयशोभिताम् ।
भवतानांवरदांदेवींमातंगींतान्नसंशयः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् 'उन मातंगी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ जिनके शरीर की कान्ति उदय होने वाले सूर्य की तरह उज्ज्वल हैं वह भक्तों को वरदाता है और तीन नेत्रों से शोभित है।'

सौदामिनीसमाभासांनानाडकारसंयुताम् ।
इन्द्राविदेवतासेव्यांमातंगीं तां नमाम्यहम् ।।

अर्थात्—उन मातंगीदेवी को मैं नमस्कार करता हूँ जो बिजली के समान प्रभा वाली, अनेकों प्रकार के अलंकारों से संयुक्त और इन्द्रादि देवता भी जिनकी सेवा में रत रहते हैं।'

दिङ्मुखेदशचन्द्राढ्यांसुधावर्षणकारिणीम् ।
देववृन्दसमायुक्तांमातंगी तां नसाम्यहम ।।

'उन मातंगी देवी को नमस्कार करता हूँ दशों दिशाएँ जिनके शरीर के समान हैं, जो अपने चन्द्रवत् मुख से विश्व में अमृत की वर्षा करती हैं और जो देव-वन्दित हैं।'

पूजन-विधि

मन्त्र—

औं ह्लीं क्लीं हूँ मातंग्य फट् स्वाहा !

विराट् छन्दोमहेश निमातंगीदेवतास्मृता ।
धर्म्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।

'हे महेशानि ! इध मन्त्र का छन्द विराट् है और देवता मातंगी है। धर्म, अर्थ, काम मोक्ष इसका विनियोग है अर्थात् इससे प्राप्त होते हैं।'

ध्यान

श्यामां शुभांशुभालां त्रिनयनकमलां रत्नसिंहासनस्था ।
नीलाम्भोजांशुकान्ति निशिचरनिकराण्यदावाग्निरूपां ।।
पाशं खड्ग चतुर्भिवंरकमलकरै खेटकवाङ्कुशञ्च ।।
मातङ्गीमावहन्वीमभिमतफलदां मोदिनीं चिन्तयामि ।

अर्थात् 'श्याम वर्ण वाली, मस्तक पर चन्द्र को ग्रहण करने वाली त्रिनेत्रां, रत्न जड़ित सिंहासन पर स्थित नील वर्ण के कमल की कान्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाली, राक्षस-रूप वन को जलाने में दावानल रूपा, चार भुजाओं में पाश, खड्ग, खेटक और अंकुश वाली, भक्तों की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली और असुरों को मोहित करने वाली मातंगी का ध्यान करता हूँ।

मातंगी, मातंग शिव की महाशक्ति है।

मातङ्गी यन्त्र

षट्कोणाष्टदल पद्मं लिखेद्यन्त्रं मनोहरम् ॥

षट्कोण बनाकर उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे और षट्कोण में देवी का मूल मन्त्र लिखे। इस प्रकार मातंगी यन्त्र प्रस्तुत होता है।

मातङ्गी कवच

त्रैलोक्यरक्षणस्यास्यदत्रिणामूर्त्तिसंज्ञकः।
ऋषिश्छन्दोविराटदेविमातंगी देवतास्मृता।
धर्मार्थिकाममोक्षेषुविनियोगः प्रकीर्त्तितः।

इस कवच से त्रिलोकी की रक्षा होती है। इस कवच के ऋषि दक्षिणामूर्ति हैं, छन्द विराट है, मातंगी देवी देवता हैं और धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इसका विनियोग है।

कवच इस प्रकार है—

ओंबीजम्मेशिरः पातु ह्रीं बीजम्मेललाटकम्।
क्लीं बीजं चक्षुषोः पातुनांसायाम्परिक्षतु ॥
माकारंवदनम्पातु तकारकण्ठकेऽगतु।
ङग्यैकारं स्कन्धदेशचफकारम्बाहुयुग्मकम् ॥
टकारं हृदयम्पातुस्वकारंस्तनयुग्मकम्।
पृष्ठदेशन्तथानाभिञ्जठर लिंगदेशकम् ॥
पापद्वन्द्वंचसर्वांगहाकारम्परिरन्क्षत।
सार्द्धदशाक्षरीविद्यासर्वांग परिरक्षतु ॥
इन्द्रीमाम्पातपूर्वेचवह्नि कोणेऽलोवतु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यमो मां दक्षिणे पातुनैर्ऋत्यानिर्ऋतिश्वमाम् ।
पश्चिमे वरुणः पातुवायव्यापवनोऽवतु ।।
कुबेरोदिशिकैवेर्यामीईशानकोणके ।
खर्ध्वंब्रह्मा सदापातु अधश्चानन्त एव च ।।
रक्षाहीनन्तुयत्स्थानं वर्जितंकंवचेन तु ।
तत्सर्वरक्ष मे देवि मातंगि सर्वसिद्धिदे ।।

कवच की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

त्रिसन्ध्यंयः पठेन्नित्य स साक्षाच्छंकरः स्वयम् ।।
पुष्पांजलाष्टकन्दत्वामूलेन वपठेत्सकृत् ।
शतवर्ष सहस्राणपूजायाः फलमाप्नुयात् ।।
भूर्जेविलख्यांगुलिकांस्वर्णस्थाधारयेद्यदि ।
सर्वसिद्धियुतः सोऽपिसर्वसिद्धियोयुतः ।।
ब्रह्मास्त्रादिनिशास्त्राणितत्गात्र प्राप्य पार्वति ।
माल्यानिकुसुमाः येन भवन्त्येव न संशयः ।।

"इस कवच का नित्य तीन संध्याओं में पाठ करने वाला साधक साक्षात शिव स्वरूप हो जाता है। मूल मन्त्र से आठ बार पुष्पाञ्जलि देकर एक बार कवच का पाठ करने वाला हजार वर्ष की पूजा करने का फल प्राप्त करता है। भोज पत्र पर लिखकर सोने में मढ़वा कर पहनने वाला साधक तपस्या से सब तरह की सिद्धियों के अनुकूल बन कर सिद्धि सम्पन्न बन जाता है। ब्रह्मास्त्र जैसे अस्त्रों के लगाने पर भी वह शरीर पर फूलों की माला जैसे सुकोमल लगते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।"

हवन

पट् सहस्र मन्त्र जप करके दशांश हवन करने को कहा है—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मवृक्षोद्भवैः काष्ठै होमात्सर्वसमृद्धिदः ।
तर्पणंचाभिषेकंचदशांशमाचरेत्सुधीः ॥

"ढाक की समिधाओं से हवन करना चाहिए । इससे सर्वसिद्धि को प्राप्त होता है । हवन का दसवाँ भाग तर्पण और तर्पण का दशवाँ भाग अभिषेक करना चाहिए ।"

पूजन विधि

'मन्त्र महोदधि' में 'मातंगी' की पूजा विधि इस प्रकार दी हैं—

श्रीमातंगेश्वरिपदं सवशूलीनलांतशम् ।
करिवह्निर्प्रियामंत्रोद्वात्रिशद्वणवानयम् ।१
मातंगोमुनिरस्योक्तोनुष्टुप्छंदस्तुदेवता ।
मातंगोसर्वजनतावशीकरणवत्परा ।२
चतुर्भिः षट्भिरगैश्चषडष्टनयतैरपि ।
मन्त्रोस्यवर्णेरगानिन्यस्यदेवीं विचिंतयेत् ।३
घनश्यामलांगीरितांरत्नपीठे शुकस्योदित श्रृण्वतीं
रक्तवस्त्राम् । सुरापानमत्तां सरोजस्थितां श्रीमजेवल्लकीं
वादयन्तीमातंगीम् ।४
जपोयुतसहस्रं तुहोमः पुष्पैर्मधूकजैवः ।
मध्वक्तैः पूजेयेत्पीठेक्ष्वयमाणविधानतः ।५
त्रिकोणाष्टदलद्वद्वकलास्रवतुरस्रकम् ।
पीठंकृत्वायजेत्तस्मिन्पीठशक्तीर्नवेष्टदाः ।६
विभूतिरुन्नतिः कान्ति सृष्टिः कीर्तिश्चसन्नतिः ।
व्यष्टिरुत्कृष्टि ऋद्धीचमातंग्यताः समीरिताः ।७
सर्वशक्तिकभस्यांतेलासनायहृदैतिकः ।
तारमायावाग्रमाद्यः पीठमन्त्रः कलार्णकः ।८
विश्राण्यासनमेतेनपाद्यादीनिप्रकल्पयेत् ।
मूलेनपुष्प पूजांते कुर्यादावरणार्चनम् ।९
त्रिकोणेष्वर्चयेत्तिस्रोररिप्रीतिमनोभवः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केसरेषुषडंगानिमातृश्चदलमध्ययाः ।।१०
द्वितीयेष्टदलेपूज्याअसितांगादिभैरवाः ।
षोडशाख्येतवामाख्याज्येष्ठारौद्रोप्रशांतिका ।।११
श्रद्धामाहेश्वरीचापिक्रियाशक्तिश्चसप्तमो ।
सुलक्ष्मीः सृष्टिमोहिन्यौप्रथमथाश्वासिनीतथा ।।१२
विद्युल्लताचचिच्छक्तिसुन्दरीनंदयासह ।
नंनबुद्धिः षोडशीतुपूजनीयाः प्रयत्नतः ।।१३
चतुरस्रे चतुर्दिक्षु मांतगीसामहादिका ।
महालक्ष्मीस्तथासिद्धि पुनर्वहलचादिकोणतः ।।१४
दुर्गाविदुकक्षेत्रेशादिग्धवास्ततः ।
वज्राद्याः स्युरित्थंसिर्द्धि सिद्धिर्मनोभवेत् ।।१५
ध्रुवभवानोवाग्बीजं रमामादौप्रयोजयेत् ।
सर्वावरणदेवानां मातंगीपदमन्ततः ।।१६
मल्लिकाकुसुमर्होमाद्भोगोराज्यं चविल्वजैः ।
पत्रैः फलैर्वविश्यास्याज्जनताब्रह्मज्ञेक्षजैः ।।१७
रोगनाशोमृताखडैर्निभैः श्रीस्तण्डुलैरपि ।
आकृष्टिर्लवणैर्विद्यात्तगरंर्वेतसैर्जलम् ।।१८
लवणनिम्बतैलाक्तै शत्रुनाशोंधसाशनम् ।
निशाचूर्णयुतैर्लोणैर्होमात्स्यात्स्तं भगनृणाम् ।।१९
रक्तचन्दनकर्पूरमांसीकुंकुमरीचनाः ।
चन्दनागुरुकर्पूरैर्गन्धाष्टककुदीरितम् ।२०
एतद्धोमाज्जगद्वश्यं जायतेमंत्रिणेध्रुवम् ।
एतत्पिष्टशतप्त्वातितकेनजगत्प्रियः ।।२१
कदलीफहोमेनसर्वेष्ठं समवाप्नुयात् ।
किंबहूक्तेनमातंगीपूजिताकामदानृणाम् ।।२२

"ओम् ह्रीं ऐं नमो भगवती उच्छिष्ट चाण्डालि श्रीमांतगेश्वरी सर्व जन वशंकरि स्वाहा" यह वत्तीस वर्ण वाला मन्त्र है। इसकी मातंगी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवता है। इस मन्त्र के चार छः आठ और दो वर्णों का अङ्ग न्यास करे और देवी का ध्यान करे ॥१-३॥

ध्यान—मेघ के समान श्याम अङ्गवाली, रत्न निर्मित पीठ पर विराजमान, शुक्र की कथित वाणी को श्रवण करती हुई, रक्त वस्त्र धारण करने वाली, मदिरा पान में उन्मत्त, वल्लाकों का वाहन करने वाली और कमल पर स्थित श्री मातंगी का भजन करता हूँ ॥१॥ दस हजार इस मन्त्र का जप और सहस्र मधूक के पुष्प मधु से अक्त करके होम करे ॥४-५॥

पीठ पर त्रिकोण, दो अष्ट दलादि पर इष्टदा-विभूति आदि नव शक्तियों का "ओम् ह्नीं ऐं सर्व शक्ति कमलासनाय नमः" इस पीठ मन्त्र से भजन करे। पाद्यासनादि होकर मूल मन्त्र से आवरण का अर्चन करे। त्रिकोण में रति-प्रीति और मनोभव की पूजा करनी चाहिए। केसरों में छः अङ्ग, दलों में मातृका तथा द्वितीय अष्ठ दलों में असितागादि का पूजन करे। षोडस नाम वाले में वामा ज्येष्ठा आदि का पूजन करे ॥६-११॥

चतुरस्र में चारों दिशाओं में महामातंगी आदि का पूजन करे। अग्नि आदि कोणों में विघ्नेश दुर्गा वटुक आदि का तथा दिगीश और उसके वज्रादि आयुधों के पूजन करने से मन्त्र की सिद्धि हो जाती है। मल्लिका पुष्पों के होम से भोग की प्राप्ति, विल्व दलों से राज्य, विल्व के फलों से भी राज्य प्राप्ति, ब्रह्म वृक्ष के पुष्पों से जलवश्यता, गिलोय के टुकड़ों से रोग का नाश, निम्ब श्रीलक्ष्मी, तण्डुली से आकर्षण लवण से विद्या, तार अथवा तेल से जल, निम्ब तेलौक्त लवक्ष से शत्रु नाश, हरिद्रा-चूर्ण से युक्त लोण से नरस्तम्भन और चन्दन, गूगल-कपूर आदि गन्धाष्टक के होम से समस्त जगत् वश्य होता है। इसे पीसकर तिलक से जगत का प्रिय होता है। कदली फल का होम करने से सर्व कामनायें पूर्ण होती हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१०—कमला

धूमावती और कमला दो विरोधी शक्तियाँ हैं। धूमावती अलक्ष्मी है, कमला लक्ष्मी है। वह दरिद्रा है, यह समृद्धि और ऐश्वर्य की देवी है। धूमावती का सम्बन्ध ज्येष्ठा नक्षत्र से है जिसमें उत्पन्न व्यक्ति दरिद्रता के चंगुल में फँसा रहता है। इसे अवरोहिणि भी कहते हैं क्योंकि कमला का रोहिणी नक्षत्र से सम्बन्ध है, जिसमें उत्पन्न व्यक्ति ऐश्वर्यशाली होता है।

कमला का माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

कमला च भवेद्देवी कमला सर्वदेवता।
कमला पार्वती साक्षात् कमला सर्वकारणम्।
यस्याः पूजनमात्रेण त्रैलोक्य पूजनं भवेत्।
कमला च महादेवी त्रिधामूर्ति व्यवस्थिता।
परा चैवापराचैव तृतीया च परापरा।

केवल कमला की पूजा करने से सब देवताओं की, यहाँ तक कि त्रिभुवन की पूजा हो जाती है। कमला साक्षात पार्वती है और सबका कारण हैं। वह परा, अपरा और परापर इन त्रिमूर्तियों से व्यवस्थित होती है।'

कमला पूजानाच्चैव कोटि पूजाफलं लभेत्।
हन्ति विघ्नान्पूजिता तथा शत्रुं महोत्कटम्।
व्याधयः सर्वारिष्टानि पलायन्ते न संशय।

अर्थात् 'कमला की पूजा से कोटि गुण फल लाभ होता है, सर्व विघ्नों और महातीव्र शत्रुओं का नाश होता है, इसमें कुछ संशय नहीं।

कमला-पूजन-विधि

कमला सदाशिव पुरुष की महाशक्ति है। इसका मन्त्र 'श्री' है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

कान्त्या काञ्चनसन्निभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटै रासिच्यमाना श्रियम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभ्राणा वरमब्जयुग्ममभ्यं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बलिता वन्दऽरविन्दस्थिताम् ।

(शक्ति प्रमोद कमला तन्त्र)

अर्थात् 'सुवर्ण के समान कान्ति वाली, हिमगिरि के समान श्वेत वर्ण वाले चार हस्तियों के द्वारा शुण्ड से ग्रहण किए हुए सुवर्ण कलशों से स्नात चार भुजाओं में वर, अभय और कमल द्वय और किरीट ग्रहण किए हुए क्षौम वस्त्र से आवृत कमला का स्मरण करता हूँ ।'

द्वादश लक्ष मन्त्र जप से पुरश्चरण करे और मधु शर्करा मिश्रित द्वादश सहस्र कमल और तिलों से हवन करे ।

॥ समाप्त ॥

—×—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

— * —

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र-राज, बीज मन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आध्यात्मिक उत्थान के लिए कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी को अनुभव करते हुए विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा साहित्य निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय बरेली से मँगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके चार अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष ३३००० साधकों द्वारा १५०० करोड़ मन्त्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार रहस्य, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली नामक १) रु० मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक से अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत :

चमनलाल गौतम

विश्व ओंकार परिवार

स्वामीकुटीर, प्रेमनगर, बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)

From Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रेष्ठतम मन्त्र साहित्य

मन्त्र–तन्त्र साहित्य

मन्त्र शक्ति से रोग निवारण
मन्त्र शक्ति से विपत्ति निवारण
मन्त्र शक्ति से कामना सिद्धि
मन्त्र शक्ति के अद्‌भुत चमत्कार
शिवसिद्धि
भैरव सिद्धि
दुर्गा सिद्धि
मानस मन्त्र सिद्धि
शाबर मन्त्र सिद्धि
गणेश सिद्धि
हनुमत सिद्धि
बगलामुखी सिद्धि
काली सिद्धि
महामृत्युंजय साधना (भा. टी.)
नामजप सिद्धि
तन्त्र महाविज्ञान २ खण्ड
तन्त्र विज्ञान
तन्त्र रहस्य
शारदा तिलक
मन्त्र महासिद्धि
लक्ष्मी सिद्धि
दत्तात्रेय तन्त्र (भा. टी.)
उड्डीश तन्त्र (भा. टी.)
रुद्रयामल तन्त्र (भा. टी.)

गायत्री व ओंकार साहित्य

गायत्री पुराण (भाषा)
गायत्री रहस्य
गायत्री महाविद्या
गायत्री सिद्धि
गायत्री तन्त्र
महामन्त्र–गायत्री
गायत्री साधना के चमत्कार
सरल गायत्री साधना
गायत्री रत्नावली
स्त्रियाँ गायत्री उपासना क्यों करें
गायत्री सहस्रनाम
ओंकार सिद्धि
हिन्दू एकता का प्रतीक–ओंकार
ओंकार का अर्थ चिन्तन
ओंकार है स्वर्ग का द्वार
ओंकार शक्ति के चमत्कार
भगवान शिव और ओंकार साधना
भगवान राम और ओंकार साधना
भगवान कृष्ण और ओंकार साधना
राष्ट्रीय एकता का प्रतीक ओंकार
श्रेष्ठतम उपासना–ओंकार
प्राचीनतम गुरुमंत्र–ओंकार
विश्व धर्म–ओंकार
ओंकार साधना का अधिकार
त्रिदेवों का प्रतीक–ओंकार
ओंकार और विद्यार्थियों की समस्यायें
ओंकार हवन विधि
ओंकार लेखन साधना

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर) बरेली–२४३ ००३ (उ. प्र.)
फोन (०५८१) ४७४८४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal